महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
(A Central University Established by Parliament by Act No.3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम (80 क्रेडिट)
प्रथम सेमेस्टर

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शिवसिंह बघेल
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अमोद गुर्जर
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादन मंडल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड-1	खंड- 2	खंड– 3	खंड-4
श्री अनुराग कुमार पाण्डेय	श्री शिवाजी जोगदंड	श्री शिवाजी जोगदंड	श्री गजानन निलामे

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
अनुभाग अधिकारी, दू.शि. निदेशालय

श्री महेन्द्र प्रसाद
संपादकीय सहायक, दू.शि. निदेशालय

आवरण पृष्ठ
सुश्री मेघा आचार्य

सुश्री शिल्पा एवं श्री प्रवेश कुमार
सहायक, दू.शि. निदेशालय

सुश्री मेघा आचार्य
प्रूफ रीडर, दू.शि. निदेशालय

श्री हरीश चंद्र शाह
तकनीकी सहायक, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा
टंकक, दू.शि. निदेशालय

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 – महिला एवं बाल विकास**	03
	इकाई - 1 भारतीय परिदृश्य में स्त्रियां एवं उनकी समस्यएं	04-14
	इकाई - 2 स्त्री आंदोलन एवं सशक्तिकरण नीतियां	15-26
	इकाई - 3 भारतीय परिदृश्य में बाल विकास	27-35
	इकाई – 4 बाल विकास नीतियां – राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय	36-43
2	**खंड - 2 – समुदाय विकास**	44
	इकाई - 1 जनजातीय विकास	45-64
	इकाई - 2 ग्रामीण विकास	65-84
	इकाई - 3 शहरी विकास	85-97
3	**खंड - 3 – वंचित वर्गों का विकास**	98
	इकाई - 1 अनुसूचित जाति	99-112
	इकाई - 2 अन्य पिछडा वर्ग	113-127
	इकाई - 3 विशेष योग्यजन	128-143
	इकाई - 4 तृतीय पंथी जन	144-158
4	**खंड - 4 – अन्य क्षेत्र**	159
	इकाई - 1 अपराधशास्त्र एवं सुधारात्मक सेवाएं	160-179
	इकाई - 2 चिकित्सीय एवं मनोचिकित्सीय सेवाएं	180-198
	इकाई - 3 वृद्धावस्था सेवाएं	199-215
	इकाई - 4 पर्यावरण विकास एवं आपदा प्रबंधन	216-237
	इकाई - 5 युवा विकास	238-259

ज्ञान शांति मैत्री

MSW 03 समाज कार्य के क्षेत्र

खंड परिचय

प्रिय विद्यार्थियों,

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम (प्रथम सत्र) के प्रश्नपत्र **MSW 03 समाज कार्य के क्षेत्र** में आपका स्वागत है। इस प्रश्नपत्र को चार खंडों में विभाजित किया गया है।

पहले खंड में महिला एवं बाल विकास पर प्रकाश डाला गया है। भारतीय परिदृश्यमें स्त्रियां एवं उनकी समस्याएं, स्त्री आंदोलन एवं विभिन्न सशक्तिकरण नीतियों को विस्तार से बताया गया है। भारत में बाल विकास की अवधारणा को बताते हुए विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय नीतियों को रेखांकित किया गया है।

दूसरे खंड में समुदाय विकास की अवधारणा के अंतर्गत जनजातीय विकास, ग्रामीण विकास एवं शहरी विकास को समझाया गया है।

तीसरे खंड में वंचित वर्गों के विकास और विभिन्न कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, विशेष योग्य जन एवं तृतीय पंथ जन के विकास हेतु कार्रवाई की गई है?

चौथे खंड में समाज कार्य के नए उभरते क्षेत्रों पर प्रकाश डाला गया है। इनमें अपराधशास्त्र एवं सुधारात्मक सेवाएं, चिकित्सीय एवं मनोचिकित्सीय सेवाएं, वृद्धावस्था सेवाएं, पर्यावरण विकास एवं आपदा प्रबंधन तथा युवा विकास शामिल है।

खंड - 1

महिला एवं बाल विकास

इकाई 1

भारतीय परिदृश्य में स्त्रियाँ एवं उनकी समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 ऐतिहासिक परिदृश्य में स्त्रियों की प्रस्थिति

1.3 स्वतंत्रता से पूर्व भारत में स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति का कारण

1.4 स्त्रियों की प्रमुख समस्याएँ

1.5 स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार हेतु किए गए प्रमुख प्रयास

1.6 सारांश

1.7 बोध प्रश्न

1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- ऐतिहासिक भारत में स्त्रियों की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- स्वतंत्रता से पूर्व भारत में स्त्रियोंके हीन दशा के लिए उत्तरदायी कारणों को रेखांकित कर सकेंगे।
- स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु किए गए प्रमुख प्रयत्नों के बारे में जानकारी प्राप्तकर सकेंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

1.1 प्रस्तावना

हिंदू धर्म में स्त्रियों को आदि शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। वेदों और उपनिषदों में महिलाओं से संबंधित अनेक विचार प्रस्तुत किए गए हैं जिनमें उन्हें श्रेष्ठ दर्शाया गया है। गौतम बुद्ध ने भी स्त्रियों को सर्वोपरि माना है। धीरे-धीरे समय परिवर्तित हुआ और मध्यकालीन युग में महिलाओं की प्रस्थिति में पूर्णरूपेण परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन ने महिलाओं की पूरी छवि को ही बदलकर रख दिया।

भारत प्राचीन समय से ही अपनी सांस्कृतिक विरासत, परंपरा, सभ्यता, धर्म और भौगोलिक विशेषताओं के बहुप्रसिद्ध देश के रूप में जाना जाता है। वास्तव में भारत नाना प्रकार की प्रथाओं व रूढ़ियों का देश है।

यहाँ पर व्यक्ति से व्यक्ति के संबंध से परे परंपराओं कोज़्यादा महत्व दिया जाता है और महिलाओं को दोयम दर्जे का माना जाता है।

1.2 ऐतिहासिक परिदृश्य में स्त्रियों की प्रस्थिति (Status)

यदि भारत में महिलाओं की स्थिति के बारे में कहा जाए तो वैदिक काल और उत्तरवैदिक काल में उनकी स्थिति तुलनात्मक रूप से अच्छी रही, परंतु आगे चलकर उनकी स्थिति बदतर हो गई।

वैदिक काल

वैदिक काल में स्त्री और पुरुष की स्थिति में समानता थी। इस समय लड़कियों का भी उपनयन संस्कार किया जाता था और लड़कों के ही समान उन्हें भी ब्रह्मचर्य आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। कुछ विद्वानों का मानना है कि सह-शिक्षा का प्रचलन भी इस काल में था। इस काल में महिलाओं को स्वयं की इच्छानुसार जीवन-साथी का चुनाव करने का अधिकार प्राप्त था, साथ ही विधवाओं को भी यह अधिकार प्राप्त था अथवा 'नियोग' द्वारा संतान उत्पन्न कर सकती थी। धार्मिक कर्मकांडों की संपन्नता के लिए पत्नी का उपस्थित होना अनिवार्य था। स्त्रियों की रक्षा करना पुरुषों का धर्म माना जाता था और उनका अपमान करना पाप की श्रेणी में रखा जाता था। परिवार का मुखिया ही संपत्ति का संरक्षक होता था और अन्य सभी सदस्य चाहे वे पुरुष हों अथवा स्त्री, का संपत्ति पर अधिकार नहीं था। इस काल में पुत्री के बजाय पुत्र को अधिक महत्व दिया जाता था, हालांकि यह धार्मिक दायित्वों की पूर्ति तक ही सीमित था।

उत्तर-वैदिक काल

इस काल में जैन व बौद्ध धर्म का प्रभाव परिलक्षित हुआ और इन धर्मों में भी स्त्रियों को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा गया है। धर्म में ह्रास होने से महिलाओं की स्थिति में भी गिरावट आनी शुरू हो गई। कुछ महिलाएँ धर्म के प्रचार-प्रसार में भी संलग्न थीं। मनुस्मृति ने महिलाओं पर प्रतिबंध लगाए। उन्हें वेदों के पठन और यज्ञों को करने से रोक दिया गया। विधवा विवाह का निषेध कर दिया गया और लड़की के रजस्वला होने के पूर्व ही विवाह को प्राथमिकता दी जाने लगी। स्त्रियों के लिए एकमात्र कार्य परिवार की सेवा और पति की आज्ञा का पालन करना रह गया। इस काल में ही उनके उपनयन संस्कार की व्यवस्था को भी समाप्त कर दिया गया।

धर्मशास्त्रीय काल

तीसरी शताब्दी से 11वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक के काल को धर्मशास्त्र काल की संज्ञा दी जाती है। इस समय वेदों के स्थान पर मनुस्मृति के आधार पर मनुष्य के व्यवहारों व विचारों का निर्धारण किया जाने लगा। स्त्रियाँ परतंत्र, असहाय व निर्बल के रूप में मान्यता पाने लगी। उनके लिए संस्कारों में एक मात्र संस्कार विवाह को माना गया, उन्हें संपत्ति के अधिकार से वंचित रखा गया। लड़की की विवाह की उम्र

10-12 वर्ष मानी गई और जीवन साथी के चुनाव में उनकी इच्छा को नगण्य कर दिया गया। इस काल में बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन आरंभ हुआ और विधुरों को भी 10-12 वर्ष की कन्या के साथ विवाह करने की स्वतंत्रता थी। इस काल में उपपत्नी प्रथा का भी बोलबाला रहा। मोटे तौर पर कहा जाए तो इस काल ने स्त्रियों को निम्न प्रस्थिति प्रदान करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है।

मध्य काल

मुगल शासकों के काल को मध्य काल कहा जाता है। भारतीय समाज को मुगल शासन ने काफ़ी प्रभावित किया। इस काल में धर्म और संस्कृति की आड़ में स्त्रियों पर अनेक निषेध लगाए गए और उनपर कई निर्योग्यताएँ थोप दी गईं । इस काल में बालविवाह, पर्दा प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर निषेध, सती प्रथा आदि प्रकार की कुप्रथाओं का चलन अपने चरम पर था और स्त्रियों को हीनता की पराकाष्ठा के रूप में परिभाषित किया जाने लगा। स्त्रियाँ पूर्णरूपेण परतंत्र हो चुकी थीं। जन्म से मृत्यु तक एक स्त्री किसी न किसी पुरुष के अधीन रहती थी। हालांकि संपत्ति के अधिकार में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए, जिन स्त्रियों के कोई भाई नहीं हैं, उनका पिता की संपत्ति पर अधिकार होता था। एक ओर जहाँ स्त्रियों पर इतने प्रतिबंध लगाए जा रहे थे, वहीं दूसरी ओर पुरुष को पत्नी के जीवित रहने पर भी दूसरा विवाह अथवा तीसरा विवाह करने का अधिकार दिया जाने लगा।

ब्रिटिश काल

18वीं शताब्दी से आज़ादी तक के काल को ब्रिटिश काल के रूप में संदर्भित किया जाता है। इस काल में भी स्त्रियों की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुए। उनकी निर्योग्यताओं को अभी भी उसी रूप में परिभाषित किया जा रहा था। बाल विवाह और पर्दा प्रथा के प्रचलन का प्रभाव उनकी शिक्षा पर परिलक्षित होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय स्त्रियों की साक्षरता 6 प्रतिशत से भी कम थी। स्त्रियों का मुख्य कार्य संतानोत्पत्ति और परिवार की सेवा करना ही रह गया तथा सारे अधिकार पुरुषों के अधीन थे। महिलाओं का संपूर्ण जीवन घर की चहारदीवारी के अंदर व्यतीत होता था।

1.3 स्वतंत्रता से पूर्व भारत में स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति (Status) का कारण

स्वतंत्रता से पूर्व भारत में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट को निम्नलिखित कारणों के आधार पर समझा जा सकता है–

1. **बाल विवाह- कम उम्र में विवाह के प्रावधान ने स्त्रियों की स्थिति में गिरावट लाने का काम किया। आरंभ में किए जाने वाले संस्कार उपनयन का स्थान बाद में विवाह संस्कार ने ले लिया और स्त्रियों को उपनयन संस्कार से वंचित कर दिया गया। बाल विवाह के कारण लड़कियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था भी समाप्त होने लगी। इसके कारण उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाया और वे पुरुषों की दासी मात्र बनकर ही रहने को**

विवश हो गईं। उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य पति की सेवा,परिवार की देखभाल व संतानोत्पत्ति करना ही रह गया।

2. **वैवाहिक कुरीतियाँ-** कुलीन विवाह को प्राथमिकता देना भी महिलाओं की निम्न स्थिति के लिए उत्तरदायी है। ऊँचे कुल के लड़के की बढ़ती माँग के कारण उच्च कुल के लोगों द्वारा अधिकाधिक दहेज की माँग की जाने लगी। इसके कारण स्त्री के माता-पिता को आर्थिक व मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा दहेज की बढ़ती राशि के कारण स्त्रियों को एक बोझ के रूप में देखा जाने लगा है। प्रत्येक हिंदू जाति का अंतर्विवाही होने के कारण जीवन साथी के विकल्प अत्यंत सीमित हो गए हैं और इस कारण जीवन साथी के चयन में स्त्रियों की इच्छा-अनिच्छा को महत्व नहीं दिया जाता है। पति चरित्रहीन/अत्याचारी/नशेबाज अथवा व्यभिचारी ही क्यों न हो स्त्री को उसकी पूजा परमेश्वर के रूप में करनी पड़ती और उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता था। महिलाओं के लिए विधवा पुनर्विवाह पर रोक और पुरुषों के लिए बहुपत्नी विवाह के प्रचलन ने भी उनकी स्थिति को दोयम दर्जा प्रदान किया।
3. **कन्यादान का आदर्श-** प्रारंभिक काल में ब्रह्म विवाह के तहत पिता अपनी पुत्री को वस्त्र, आभूषण आदि से सुशोभित कर दान के रूप में वर को देता था। तब उत्तम वर की तलाश करना कन्यादान का प्रमुख महत्व था। धीरे-धीरे समय बदलने के साथ ही महिलाओं की स्थिति और उनके प्रति धारणा आदि में भी बदलाव आने लगा। अब स्त्रियों को एक वस्तु के रूप में समझा जाने लगा और यह धारणा प्रचलित हो गई कि जो वस्तु एक बार दान में दी जा चुकी है, उसे न तो वापस लिया जा सकता है और न ही उसका दोबारा दान किया जा सकता है। जिसे उसे दान के रूप में दिया गया है वह जैसा चाहे उसका उपभोग कर सकता है और अब उस पर केवल दान प्राप्तकर्ता का ही अधिकार है।
4. **स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा-** स्त्रियों के काम को घर की चहारदीवारी में कैद कर देने के कारण उनकी शिक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था। शिक्षा के अभाव के कारण उनकी चेतना का विकास नहीं हो पाया और वे अपने अधिकारों के प्रति सजग और जागरूक नहीं रह पाई, जिसके कारण एक-एक करके उनके सभी अधिकार छिनते चले गए। उनका अधिकार क्षेत्र केवल पुरुषों तक ही सिमट कर रह गया।
5. **संयुक्त परिवार व्यवस्था-** संयुक्त परिवार व्यवस्था भी कहीं न कहीं महिलाओं की निम्न प्रस्थिति ज़िम्मेदार थी। इन परिवारों में सारे अधिकार पुरुष के पास निहित रहते थे और महिलाओं को उनकी कृपा दृष्टि के अंतर्गत जीवन व्यतीत करना पड़ता था। हालांकि संयुक्त परिवार व्यवस्था में सभी सदस्यों को परिवार की वयोवृद्ध स्त्री की आज्ञा का पालन और उनकी सेवा करने को महत्व दिया जाता था।

6. **पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता-** महिलाओं के संपत्ति पर अधिकार को समाप्त कर देने के कारण उनकी पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता स्वाभाविक दशा थी। आर्थिक दृष्टि से किसी भी काम को करना महिलाओं के लिए उपेक्षित समझा जाता था, जिसके कारण आर्थिक क्षेत्र में धीरे-धीरे पुरुषों का एकाधिकार स्थापित होता चला गया।
7. **आक्रांता संकट-** सैनिक आक्रमणों ने महिलाओं को और भी कैद की गहराईयों में धकेलने का काम किया। हिंदू धर्म की रक्षा के उद्देश्य से सामाजिक नियमों को और भी कठोरता प्रदान की जाने लगी। इस दशा ने बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा व विधवा पुनर्विवाह पर निषेध आदि कुरीतियों को महत्व दिया। ऐसी स्थिति में स्त्रियों को घर से बाहर निकालने की अनुमति नहीं थी और उनकी शिक्षा के बारे में विचार करना तो बहुत दूर की बात थी।

इन कारणों के अलावा कुछ आधुनिक कारणों की भी विवेचना यहाँ प्रस्तुत की जा सकती है। आधुनिक संदर्भ में महिलाओं के लिए राज्य द्वारा चलाए जा रहे महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम के प्रयासों में निहित कमियों के कारण सुधार संतोषजनक नहीं हो पर रहे हैं। यदि व्यक्तिगत क़ानूनों की बात करें तो आज भी महिलाओं को समानता के अधिकार नहीं प्राप्त हो पाए हैं। उदारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति ने भी आज महिलाओं को उपभोग की वस्तु से इतर किसी अन्य छवि के रूप में परिभाषित नहीं किया है।

1.4 स्त्रियों की प्रमुख समस्याएँ एवं प्रभाव

यहाँ स्त्रियों की प्रमुख समस्याओं को संक्षेप में रखने का प्रयास किया जा रहा है।स्त्रियों से संबंधित समस्याओं के बढ़ने और घटने के अलग–अलग प्रभाव देखे जा सकते है। इसे हम निम्न रूप में समझ सकते हैं –

ज्ञान शांति मैत्री

			बढा है / घटा है		प्रभाव धनात्मक है या ऋणात्मक
1.	शिक्षा का अभाव /और निरक्षरता	-	बढी या कम हुई है	-	धनात्मक / सकारात्मक
2.	बाल विवाह	-	घटा है	-	धनात्मक / सकारात्मक
3.	दहेज	-	बढा है	-	ऋणात्मक / नकारात्मक
4.	आर्थिक निर्भरता	-	निर्भरता घटी है	-	धनात्मक / सकारात्मक
5.	विविध अधिकारों से वंचित	-	अधिकार सम्पन्न हुई है यानी वंचित कम हुए	-	धनात्मक / सकारात्मक
6.	निर्णय लेने की क्षमता का अभाव	-	निर्णय मे सहभागिता	-	धनात्मक / सकारात्मक

			आई है		
7.	सार्वजनिक जीवन में न्यून सहभागिता	-	सहभागिता बढी है	-	धनात्मक / सकारात्मक
8.	घरेलू हिंसा	-	घटा है	-	धनात्मक / सकारात्मक
9.	घर व कार्यस्थलों पर यौन शोषण	-	घटा है	-	धनात्मक / सकारात्मक
10.	बालिका शिशु हत्या व भ्रूण हत्या	-	घटा है	-	धनात्मक / सकारात्मक
11.	समाज का उनके प्रति दोयम मानदंड	-	घटा है	-	धनात्मक / सकारात्मक
12.	रूढ़िवादिता, अंधविश्वास के कारण स्त्रियों के प्रति हीनता का दृष्टिकोण	-	घटा है	-	धनात्मक / सकारात्मक
13.	संवैधानिक व कानूनी प्रावधानों के बारे में जानकारी का न होना	-	जानकारी बढी है	-	धनात्मक / सकारात्मक

क्षेत्र स्थान, प्रजाति और परिस्थिति विशेष में इनमे से कुछ समस्या नही हो सकती है या कुछ दूसरे तरह की समस्या देखी जा सकती है।

हम देख सकते हैं कि समाज पर इसका कैसा प्रभाव है? अपने क्षेत्र में इस प्रक्रिया का अभ्यास कर सकते है।

1.5 स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार हेतु किए गए प्रमुख प्रयास

19 वीं शताब्दी से ही स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु प्रयास किए जाने लगे थे। महिलाओं को लेकर किए जाने वाले भेदभावपूर्ण नज़रिए में बदलाव को आगे भी महत्व दिया गया। इन सुधारों को मूल रूप से तीन भागों में वर्गीकृत करके देखा जा सकता है–

1. **समाज सुधारकों द्वारा किए गए प्रयास-** स्त्रियों की स्थिति में सुधार का सर्वप्रथम प्रयास राजाराम मोहन राय द्वारा किया गया। इनके द्वारा 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की गई और इनके प्रयास के कारण ही 1829 में सती प्रथा उन्मूलन कानून की व्यवस्था की गई। इनके द्वारा बाल विवाह के निषेध और विधवा पुनर्विवाह के प्रचलन के लिए बहुत प्रयास किए गए। स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदू समाज को वैदिक संस्कृति की ओर लौटने का आह्वान किया। इन्होंने बाल विवाह पर रोक, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना और पर्दा प्रथा को समाप्त करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किए। ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा बहुपत्नी विवाह और विधवा पुनर्विवाह निषेध की कटु आलोचना की और उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप सन 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम को नियोजित किया गया। इन्होंने स्त्री शिक्षा को भी महत्व दिया और कहा कि महिलाओं की जागृति के लिए आवश्यक है कि वे शिक्षित हों केशवचंद्र सेन के प्रयत्नों के फलस्वरूप सन 1872 में विशेष विवाह अधिनियम को क्रियान्वित किया गया और इसके द्वारा

ज्ञान शांति मैत्री

विधवा पुनर्विवाह और अंतर्जातीय विवाह को मान्यता प्रदान की गई। साथ ही इसके द्वारा एक विवाह को भी अनिवार्य स्वरूप प्रदान किया गया। इस शताब्दी के मध्य में स्त्री शिक्षा को बढ़ावा दिए जाने के रूप में कई प्राथमिक स्कूलों की स्थापना की गई और सन 1902 में विभिन्न शिक्षण संस्थानों में लड़कियों की संख्या 2,56,000 हो गई। कई स्त्रियाँ शिक्षा के कारण जागरूक हुई और नौकरियों में शामिल हो गई । इसी दौरान कई महिलाएँ भी आगे आई और महिलाओं के हितों को लेकर आवाज बुलंद की, यथा- प. रमाबाई, मैडम कामा, तोरुदत्त, स्वर्णकुमारी देवी आदि। इनके अलावा महात्मा गांधी ने स्त्रियों को राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदारी हेतु प्रेरित किया और उन्हें स्वयं की शक्ति को पहचानने का मौका दिया, जिससे वे प्रगति के मार्ग पर उन्मुख हुई । उन्होंने बाल विवाह और कुलीन विवाह का विरोध किया तथा विधवा पुनर्विवाह और अंतर्जातीय विवाह का पुरज़ोर समर्थन किया।

2. **महिला संगठनों द्वारा किए गए प्रयास-** 20 वीं शताब्दी की शुरुआत में ही स्त्रियों को उचित स्थान दिलाने के प्रयोजन से स्त्री आंदोलन का प्रादुर्भाव होता है। एनी बेसेंट, मारग्रेट नोबल व मारग्रेट कुशनस ऐसी पश्चिमी महिलाएँ थीं, जिन्होंने भारत में स्त्री आंदोलन को मजबूत स्थिति पर काबिज होने के लिए उपयुक्त दशाएँ उपलब्ध कराई। मद्रास में सन 1917 में भारतीय महिला समिति की स्थापना की गई। अनेक महिला संगठनों के प्रयास के पश्चात अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना की गई और पूना में सन 1927 में इसका पहला अधिवेशन आयोजित किया गया। इस संगठन ने स्त्री शिक्षा को विशेष महत्व दिया और इसके प्रचार-प्रसार हेतु अनेक प्रयास किए। बाद में इसने बाल विवाह, बहुपत्नी विवाह, दहेज आदि प्रकार की कुप्रथाओं का विरोध किया और स्त्रियों के लिए पुरुषों के ही समान संपत्ति पर अधिकार व वयस्क मताधिकार की माँग की। इस संगठन के अतिरिक्त विश्वविद्यालय महिला संघ, भारतीय ईसाई महिला मंडल, अखिल भारतीय स्त्री शिक्षा संस्था, कस्तूरबा गांधी स्मारक ट्रस्ट आदि संगठन भी स्थापित किए गए, जिन्होंने महिलाओं पर लगे निषेध और असमानता के व्यवहार का विरोध किया तथा उनके लिए समतापूर्ण समाज की व्यवस्था करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए।
3. **संवैधानिक प्रयास-** स्वतंत्र भारत की सबसे बड़ी समस्या तत्कालीन परिवर्तनशील समाज को सुव्यवस्थित रखना था, जिसके कारण संविधान में समाज की लगभग सभी समस्याओं को शामिल किया गया। इन समस्याओं में महिला समाज की समस्या भी शामिल थी। इस कारण से संविधान में न केवल उनको विशेषाधिकार प्रदान किए गए, अपितु राज्य के नीति-निदेशक तत्वों को भी इसे सम्मिलित किया गया। स्त्रियों की प्रमुख समस्याओं के उन्मूलन से संबंधित कुछ अनुच्छेदों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-
    - **अनुच्छेद 14** में स्त्रियों को 'विधि के समक्ष समानता' और 'विधियों का समान संरक्षण' दिया गया है।

- **अनुच्छेद 15 (1)** के माध्यम से धर्म, जाति, जन्म स्थान अथवा लिंग आधारित भेदभाव पर निषेध लगाया गया है।
- **अनुच्छेद 15 (3)** में स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु विशेष उपबंधों की व्यवस्था कीगई।
- **अनुच्छेद 16 (1)** के माध्यम से लिंग आधारित भेदभाव को सरकारी नियोजनों में प्रतिबंधित रखने का प्रावधान किया गया है।
- **अनुच्छेद 19** के माध्यम से स्त्रियों को समान रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करने का प्रावधान रखा गया।
- **अनुच्छेद 21** स्त्रियों के प्राण व दैहिक स्वाधीनता से वंचित न रखे जाने से संबंधित है।
- **अनुच्छेद 23** में मानव तस्करी, बलात श्रम के उन्मूलन संबंधी प्रावधान बनाए गए हैं।
- **अनुच्छेद 39** में स्त्रियों को समान रूप से आजीविका के साधन उपलब्ध कराने पर ज़ोर दिया गया है।
- **अनुच्छेद 39 (घ)** स्त्री कामगारों के स्वास्थ्य के दुरुपयोग को रोकने से संबंधित है।
- **अनुच्छेद 39 (ड़)** के माध्यम से स्त्री कामगारों को दिए गए कार्य का उनकी क्षमता के अनुरूप होने संबंधी प्रावधान किए गए हैं।
- **अनुच्छेद 40** में 73 वें और 74 वें संशोधन के पश्चात पंचायती राज व्यवस्थाओं में स्त्रियों को 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था करने का प्रावधान है।
- **अनुच्छेद 42** में स्त्रियों के लिए प्रसूति संबंधी मदद के प्रबंध किए गए हैं।
- **अनुच्छेद 44** में समान आचार संहिता के कानून को शामिल किया गया है।
- **अनुच्छेद 47** स्त्रियों के लिए उचित पोषाहार, जीवन स्तर व लोक स्वास्थ्य में सुधार के उपबंध से संबंधित है।
- **अनुच्छेद 51** में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक कर्तव्य होना चाहिए कि वह उन प्रथाओं, परंपराओं को त्याग देंजो स्त्रियों के सम्मान को बाधित करें।
- **अनुच्छेद 51 (क)** सभी के मौलिक कर्तव्यों से संबंधित है।

अनुच्छेदों के अलावा कुछ क़ानूनों की भी व्यवस्था की गई जो महिलाओं को उनके अधिकार दिला सके और उनके प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार को प्रतिबंधित कर सकें। कुछ प्रमुख प्रावधान निम्ननुसार हैं–

- **हिंदू विवाह अधिनियम 1955** के माध्यम से स्त्रियों को उत्तराधिकार संबंधी अधिकार प्रदान किए गए।
- **हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956** में स्त्रियों को विवाह के क्षेत्र में समानता के अधिकार प्रदान किया गया।
- **हिंदू अवयस्कता और संरक्षण अधिनियम 1956** में बच्चों के संरक्षण में माता को अधिकार प्रदान किया गया है।
- **प्रसूति सुविधा अधिनियम 1961** में किसी भी संस्थान में स्त्री को 80 दिन काम कर लेने के पश्चात प्रसव अथवा गर्भपात हेतु निर्धारित अवकाश व अन्य चिकित्सीय सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रावधान शामिल किया गया है।
- **दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961** में दहेज और घरेलू उत्पीड़न पर प्रतिबंध लगाया गया है।
- **बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 1976** अवयस्क बालक व बालिकाओं के वैवाहिक निषेध से संबंधित है।
- **समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976** के माध्यम से स्त्रियों को पुरुषों के समान ही वेतन दिए जाने का प्रावधान बनाया गया है। एक निर्णय में सर्वोच्च न्यायलय (SC) ने कहा है कि equal pay for equal work is not fundatmental right but a Constitutional goal.
- **वेश्यावृत्ति निवारण अधिनियम, 1986** में स्त्रियों से वेश्यावृत्ति कराने वालों के विरुद्ध दंडात्मक कार्यवाई करने का प्रावधान है।
- **स्त्री अशिष्ट निरूपण निषेध अधिनियम, 1986** में स्त्रियों के सम्मान को ठेस पहुँचाने वाले विज्ञापनों व अन्य प्रदर्शनों पर प्रतिबंध लगाया गया है।
- **सती निषेध अधिनियम, 1987** विधवा स्त्री के सती निषेध से संबंधित है।
- **प्रसव और निदान तकनीक, 1994** में भ्रूण के लिंग की चिकित्सीय जाँच पर प्रतिबंध लगाया गया।

ज्ञान शांति मैत्री

- **बागान श्रम अधिनियम, 1951** के माध्यम से स्त्री कामगारों को संतानों को दूध पिलाने हेतु अवकाश देने का प्रावधान कियागया है।
- **घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2006** में शारीरिक हिंसा, आर्थिक हिंसा, यौनिक हिंसा, मौखिक हिंसा को घरेलू हिंसा के रूप में विश्लेषित किया गया है और इसपर निषेध लगाया गया है।

सरकार की विभिन्न योजनाओं द्वारा भी स्त्रीसशक्तिकरण के प्रयास हुए है। गैर सरकारी संगठनों ने भी उल्लेखनीय पहल की है। पंचायत स्तर पर सीटों को आरक्षित कर कई राज्यों में आधा प्रतिनिधित्व दिया गया है। सम्पत्ति में महिलाओं को समान अधिकार दिया गया ।[87]

1.6 सारांश

स्त्रियाँ समाज के आधे हिस्से का प्रतिनिधित्व करती हैं और यदि उनकी स्थिति पर विचार किया जाए, तो सदैव से उन्हें दोयम दर्जे की मान्यता दी गई है तथा उनके साथ भेदभाव किया गया है। इस इकाई में स्त्रियों की ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्थिति पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वैदिक काल, उत्तर-वैदिक काल, धर्मशास्त्रीय काल, मध्य काल और ब्रिटिश काल शामिल है। साथ ही स्वतंत्रता से पूर्व के भारत में उनकी हीन दशा के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारणों के बारे में बोध कराने का प्रयास किया गया है। स्त्रियों की प्रमुख समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंत में स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु किए गए प्रमुख प्रयासों के बारे में भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

1.7 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: ऐतिहासिक भारत में महिलाओं की स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

प्रश्न 2: भारत में स्वतंत्रता से पूर्व स्त्रियों की हीन स्थिति के लिए उत्तरदायी कारणों का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 3: महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु किए गए प्रयासों के बारे में बृहत विवेचन प्रस्तुत कीजिए।

1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

देसाई, न. (1957). *वुमन इन माडर्न इंडिया* बॉम्बे: वोरा एंड कंपनी

अल्टेकर, ए.एस. (1962). *द पोजीशन ऑफ वुमेन इन हिंदू सिविलाइजेशन*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास

देसाई, न. एवं कृष्णराज, म. (1987). *वुमन एंड सोसाइटी इन इंडिया* दिल्ली: अजंता

देसाई, न. एवं पटेल, व. (1985). *इंडियन वुमेन चेंग एंड चेलेंज इन द इंटरनेशनल डिकेड* बॉम्बे: पोपुलर प्रकाशन

आहूजा, र. (1992). *राइट्स ऑफ वुमन: ए फेमिनिस्ट पर्सपेक्टिव*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन

मिश्र, स. (1996). *भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति*. दिल्ली: शारदा पब्लिशिंग हाउस

आहूजा, र. (1995). *भारतीय सामाजिक व्यवस्था*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन

परमार, श. (2015). *नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार.* नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड

पाण्डेय, त. एवं पाण्डेय, अ. (2011). *समाज कार्य*. लखनऊ: भारत बुक सेंटर

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 2

स्त्री आंदोलन एवं सशक्तिकरण नीतियाँ

इकाई की रूपरेखा

2.0	उद्देश्य
2.1	प्रस्तावना
2.2	भारत में नारीवाद का इतिहास
2.3	स्वतंत्र भारत के प्रमुखस्त्री आंदोलन
2.4	महिला सशक्तिकरण व सशक्तिकरण नीतियाँ
2.5	सारांश
2.6	बोध प्रश्न
2.7	संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- भारत में नारीवाद के इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- स्वतंत्र भारत के प्रमुख स्त्री आंदोलनों को रेखांकित कर सकेंगे।
- महिला सशक्तिकरण की अवधारणा एवं नीतियों का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

समाज में स्त्रियों को दोहरी दृष्टि से देखने के कारण विद्वानों, नारीवादियों और कुछ आलोचकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ, जिसके कारण समाज में महिला की दयनीय व निम्न स्थिति में सुधार करने के उद्देश्य से कुछ प्रयास किए गए। इस इकाई के माध्यम से उन्हीं प्रयासों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

2.2 भारत में नारीवाद का इतिहास

मध्यकालीन युग में महिलाओं की स्थिति में काफ़ी गिरावट आईऔर उन्हें अनेक यातनाओं और निषेधों से गुजरना पड़ा। इस परिस्थिति ने 19वीं शताब्दी की शुरुआत से ही कुछ समाज सुधारकों को अपनी ओर

आकर्षित किया। महिलाओं की स्थिति में सुधार की पहल पुरुष समाज सुधारकों द्वारा की गई। भारत में नारीवाद के इतिहास को मुख्य रूप से निम्नलिखित लहरों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **पहली नारीवादी लहर (1850-1915)**
2. **दूसरी नारीवादी लहर(1915-1947)**
3. **तीसरी नारीवादी लहर (1947 से लेकर आज तक)**

पहली नारीवादी लहर

भारत में पहली नारीवादी लहर समाज में विद्यमान अंधविश्वासों, पौराणिक परंपराओं, सती प्रथा, बाल विवाह, देवदासी प्रथा जैसी कुरीतियों को समाप्त करने के उद्देश्य पर केंद्रित थी। इस लहर में शिक्षित नेताओं, विचारकों और समाजसेवियों द्वारा महिलाओं की तत्कालीन स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया गया। उनके द्वारा कई प्रकार के कानून का नियोजन किया गया, कुछ पारित क़ानूनों का संशोधन किया गया और समाज में चेतना जागृत करने का काम किया गया। पुरुषों द्वारा कई सुधारवादी आंदोलन चलाये गए और महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु अन्य समूहों को भी संगठित किया गया। पुरुष समाज सुधारकों में प्रमुख हैं- राजाराम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, डॉ. धोंडो, केशव कर्वे, स्वामी विवेकानंद, सैयद अहमद खान, बदरुद्दीन तैयब जी आदि। इस सुधार के लिए अनेक संगठन, यथा- आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि ने भी उल्लेखनीय प्रयास किए। इन सुधारों की ओर समाज के सभी वर्गों और समूहों का ध्यान खींचने के लिए कई पत्र-पत्रिकाओं में निबंधों, संपादकीय आदि का लेखन शुरू किया गया, कई कुरीतियों और अंधविश्वासों का खुले तौर पर विरोध किया गया।

1818 में राजाराम मोहन राय ने अपनी पुस्तिका के माध्यम से सती प्रथा और बहुविवाह के विरोध में आवाज बुलंद की। इसके साथ ही उन्होंने महिलाओं की हीन दशा और आर्थिक निर्भरता को समाप्त करने के लिए संपत्ति के अधिकार पर भी आवाज उठाई। 1828 में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की और इस संगठन के माध्यम से उन्होंने सती प्रथा के विरोध में आंदोलन किया। उनके प्रयासों के कारण ही 1829 में सती प्रथा निषेध अधिनियम पारित हो पाया। उन्होंने महिलाओं की स्थिति में सुधार करने की दृष्टि से संपत्ति के अधिकार, बाल विवाह निषेध, स्त्री शिक्षा आदि पहलुओं की वकालत की। ब्रह्म समाज अंतर्जातीय विवाह को भी मान्यता देता है। इसने महिलाओं के लिए बोधिनी पत्रिका का संपादन किया। इस संगठन के प्रयासों के परिणामस्वरूप ही नागरिक विवाह कानून, 1872 पारित किया गया, जिसमें अंतर्जातीय विवाह और तलाक को कानूनी रूप से मान्यता प्रदान कीगई। साथ ही विवाह की आयु महिला के लिए 14 वर्ष और पुरुष के लिए 18 वर्ष निर्धारित की गई।

एम.जी. रानाडे और भंडारकर द्वारा 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना की गई और यह संगठन स्त्री शिक्षा पर विशेष ज़ोर देता था। इंडियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस की स्थापना1887 में होती है और इसने भी महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किए। ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयासों के

फलस्वरूप 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम लागू हुआ। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से विधवा पुनर्विवाह, बहुपत्नी विवाह का विरोध और स्त्री शिक्षा पर ज़ोर दिया। जब उन्होंने पहली बार एक विधवा का पुनर्विवाह कराया था, तब उन्होंने इसके समर्थन में आवेदन पत्र पर 21,000 लोगों के हस्ताक्षर करवाए थे। दयानंद सरस्वती द्वारा 1875 में आर्य समाज की स्थापना की गई, जो बाल विवाह, पर्दा प्रथा, जाति प्रथा, सती प्रथा के विरोध से संबंधित संगठन था। केशव कर्वे द्वारा1916 में पुणे में पहला महिला विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। 1917-18 के दौरान उनके द्वारा कर्वे प्राथमिक स्कूल शिक्षक और बालिकाओं के लिए ट्रेनिंग कॉलेज की स्थापना भी कीगई। स्वामी विवेकानंद द्वारा 1897 में रामकृष्ण मिशन और रामकृष्ण मठ की स्थापना की गई। उनका मानना था कि भारत में मूल रूप से दो बुराईयाँ पाई जाती हैं–

- भारतीय समाज में महिलाओं का पराधीन होना
- हिंदू समाज में असमानता और जाति व्यवस्था

उनका मानना था कि समग्र विकास के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उसमें महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाए। सैयद अहमद खान, जो पहले मुस्लिम समाज सुधारक माने जाते हैंने स्त्री शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है। बदरुद्दीन तैयब जी ने पर्दा प्रथा को समाप्त करने के प्रयास की सराहना की।

1910 के दशक के अंत में और 1920 के दशक की शुरुआत में नारीवादी आंदोलनों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को साफ तौर पर परिलक्षित किया जा सकता है।1920 के दशक के अंत तक श्रमिक आंदोलनों में भी महिलाएँ शामिल होने लगीं। लहौर के एक सम्मेलन में महिला श्रमिकों ने कई मांगें रखी, यथा–जिन कारखानों में महिला कामगारों की संख्या अधिक है, वहाँ पालनागृह, नर्सरी, प्रसूतिगृह आदि की व्यवस्था होनी चाहिए (इस माँग को बाद में मंजूरी दे दी गई)। अन्य रोज़गारों में भी, यथा– शिक्षिका, नर्स, सफाई करने वाली, खाद्य पदार्थ व हस्तकला उद्योग, भोजन पकाने वाली आदि में भी स्त्रियों की भूमिका को महत्व दिया जाने लगा।

दूसरी नारीवादी लहर

हालांकि पहली नारीवादी लहर ने महिलाओं को उनकी समस्याओं और उनके प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार के प्रति चेतना अवश्य पैदा की, तथापि महिलाओं को जागृत करने और स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी की दृष्टि से यह लहर काफ़ी महत्वपूर्ण थी। इस लहर ने एक ओर जहाँ महिलाओं के जीवन को क्रांतिपूर्ण तरीके से बदल दिया, वहीं दूसरी ओर कई महिला संगठनों की स्थापना भी की गई जिनमें से प्रमुख निम्न उल्लेखित हैं–

- भारतीय महिला संघ (1917)
- भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद (1925)
- अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (1927)

कुछ राष्ट्रीय नेताओं के सहयोग से प्रगतिशील महिला आंदोलन ने1929 में शारदा एक्ट (बाल विवाह नियंत्रण अधिनियम) के नियोजन में भूमिका निभाई। 1930 के दशक में विवाह और संपत्ति से संबंधित हिंदू महिलाओं के लिए कुछ कानून पारित किए गए। इसके अलावा कुछ अन्य कानून भी पास किए गए

- मुस्लिम पर्सनल लॉ
- विनियोग अधिनियम, 1937
- मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1939

तत्कालीन समय के कुछ प्रमुख स्थानीय महिला संगठन निम्न थे-

- तमिल मथार संगम (1906, मद्रास)
- तमिल महिला संगठन
- गुजरात स्त्री मंडल(1908, अहमदाबाद)
- बंग महिला समाज (1909)
- भारत का स्त्री महामंडल (1910)
- नारी समिति (1910)

कुछ प्रमुख स्थानीय संप्रादाय समूह निम्नवत थे-

- फारसी महिलाओं के लिए स्त्री जारथोशटी मंडल (1903, बॉम्बे)
- मुस्लिम महिलाओं का सम्मेलन अंजुमन-ए-ख्वातीन-ए-इस्लाम
- युवा महिलाओं के क्रिश्चियन एसोसिएशन(1914,YWCA)

प्रमुख महिला समाज सुधारक हैं-सावित्री ज्योतिबा फुले, ताराबाई शिंदे, पंडिता रमाबाई, स्वर्णकुमारी देवी, सिस्टर निवेदिता, सरोजिनी नायडू, एनी बेसेंट, कमला नेहरू, रोकैया सखावत हुसैन, डॉ. मुथु लक्ष्मी रेड्डी, दीदी सुब्बुलक्ष्मी, अरुणा आसफ अली, कमला देवी, विजय लक्ष्मी पंडित आदि।

भीमराव अंबेडकर द्वारा महिलाओं के उत्थान के लिए अथक प्रयास किए गए और उनका मानना था कि किसी भी समाज की उन्नति का मापदंड पुरुष नहीं है स्त्रियाँ होती हैं। उन्होंने 28 जुलाई, 1928 को मुंबई विधान परिषद में कारखानों व अन्य स्थानों पर 'मज़दूर महिलाओं को प्रसूति अवकाश सुविधा प्रदान करने के बिल' पर सहमति जताई। 1928 में साइमन कमीशन के समक्ष उन्होंने 21 वर्ष के ऊपर के सभी नागरिकों को (चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष) मतदान के अधिकार दिए जाने की वकालत की। उन्होंने संविधान के माध्यम से कई प्रावधानों व क़ानूनों को पारित किया, जो महिलाओं के प्रति समतापूर्ण दृष्टि

ज्ञान शांति मैत्री

का प्रतिनिधित्व करते हैं। पिछली इकाई में प्रावधानों व क़ानूनों पर चर्चा की जा चुकी है अतः यहाँ पुनः चर्चा करना उचित नहीं होगा।

महात्मा गांधी द्वारा सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, छुआछूत व विधवाओं के शोषण का पुरज़ोर विरोध किया गया। उन्होंने सदैव महिला मुक्ति और महिला विकास को महत्व दिया है। गांधी जी ने महिलाओं की भागीदारी से अनेक आंदोलनों को संपन्न किया,यथा– नमक आंदोलन, अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन तथा किसान एवं श्रमिक आंदोलन। महिलाओं की जागृति के संबंध में गांधी जी द्वारा महत्वपूर्ण काम किए गए।

तीसरी नारीवादी लहर

इसके आरंभ को तेलंगाना में हुए महिला संघर्ष से संदर्भित किया जा सकता है। वहाँ 1948 में महिलाओं ने मार-पीट, जमीदारों, निजामों आदि द्वारा किए जाने वाले उत्पीड़न का आक्रामक विरोध किया। इस आंदोलन में भागीदार महिलाओं में कामरेड स्वराज्यम, अखला कमाला देवी, जुमालुन्निसा बेगम, इलमा, चकली, सरोजिनी, प्रमिला आदि प्रमुख हैं। इनके द्वारा कुछ महिला संगठनों की स्थापना भी की गई, यथा– आंध्र महिला सभा, आंध्र युवती मंडल और महिला संघम।1950 के दशक में चलाए गए भूदान आंदोलन में भी बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी देखी जा सकती है।1970 में महाराष्ट्र के ग्रामीण इलाकों में मूल्यवृद्धि के विरोध में चलाए गए आंदोलन में 'यूनाइटेड विमेन्स एंटी प्राइस राइज़ फ्रंट' की स्थापना की गई। इस आंदोलन में थाली और बेलन का प्रयोग घोषणा चित्र के रूप में किया गया। इस विरोध में हजारों की संख्या में गृहणियाँ सम्मिलित हुईं।1975 में मार्क्सवादी, लेनिनवादी समूह 'स्त्री जागृति समिति' अथवा स्वचेतन नारीवादियों द्वारा मुंबई में 'अन्नपूर्णा महिला मंडल' की स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य गृहणियों की सुरक्षा व्यवस्था करना था। अखिल भारतीय जनवादी महिला संगठन (AIDWA) महिला केंद्रित संगठन है और यह जनतंत्र, समानता और महिलाओं के उद्धार की दिशा में काम करता है। यह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की महिला शाखा है। राष्ट्रीय स्तर पर इस संगठन को 1981 में स्थापित किया गया। यह संगठन स्त्री शिक्षा, रोज़गार, महिलाओं के अधिकार आदि केलिए काम करता है और साथ ही बाल अधिकार, जातिवाद, सांप्रदायिकता व आपदा सहायता के कार्यों में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। इसके क्षेत्रीय संगठनों में पश्चिम बंगाल गणतांत्रिक महिला समिति, त्रिपुरा में गणतांत्रिक महिला समिति और महाराष्ट्र में जनवादी महिला संगठन प्रमुख हैं।

माओवादियों द्वारा 1986 में आदिवासी महिला संगठन की स्थापना की गई और इसकी शाखा क्रांतिकारी आदिवासी महिला संगठन है, जो भारत में प्रतिबंधित है। यह संगठन भारत के सर्वोच्च पाँच संगठनों में से एक है और इसके पंजीकृत सदस्यों की संख्या 90,000 के आस-पास है। इस संगठन का प्रयोजन बलात विवाह, महिलाओं के अपहरण, बहुपत्नीत्व आदि जैसे गंभीर मुद्दों का विरोध करना है। 1975 के बाद से भारत में अनेक महिला संगठन बने, जिनका मुख्य उद्देश्य महिला के उत्पीड़न के विरुद्ध

उठाना था और उन संगठनों ने शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन करके महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु सरकार पर दबाव बनाए।

2.3 स्वतंत्र भारत के प्रमुख स्त्री आंदोलन

भारत में नारीवादी आंदोलनों के इतिहास में उतनी स्पष्टता परिलक्षित नहीं होती है जितनी कि स्वतंत्र भारत में हुए नारीवादी आंदोलनों में दिखती है।ये आंदोलन महिला केंद्रित थे और उन्होंने महिलाओं के विरुद्ध हो रहे शोषण के विरोध में खुले तौर पर आवाज बुलंद की। यहाँ कुछ प्रमुख आंदोलनों का विवरण संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है-

स्वाक्षजी महिला संघ (Self Employed Women Association)

इस समिति की स्थापना 1972 में महिलाओं द्वारा कार्यरत एक ट्रेड यूनियन के रूप में हुई। इस आंदोलन से परिवार में कार्यरत महिलाओं की सहायता की गई। वे उन्हें विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण,यथा- सिलाई, कढ़ाई, कटाई, टंकण, प्रेस आदि देते थे। इसे महिलाओं के लिए स्वरोज़गार उपलब्ध कराने वालेएक संगठन के रूप में समझा जा सकता है। सेवा के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं-

- मज़दूरोंके लिए रोज़गार की व्यवस्था
- आय सुरक्षा
- खाद्य सुरक्षा
- सामाजिक सुरक्षा
- महिलाओं के लिए आत्मनिर्भरता

नव निर्माण आंदोलन

इस आंदोलन का आरंभ गुजरात में1974 में हुआ और यह एक सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन था। यह आंदोलन असंतुष्ट विद्यार्थियों और मध्यवर्ग द्वारा चलाया गया था, जिसमें महंगाई, भ्रष्टाचार और कालाबाज़ारी के विरोध में आवाज उठाई गई। इस आंदोलन में हजारों की संख्या में मध्यवर्गीय महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी की।

चिपको आंदोलन

चिपको आंदोलन की शुरुआत सन् 1973 में उत्तराखंड के चमौली ग्राम (तब उत्तर प्रदेश था) में हुई थी। इस आंदोलन में किसानों ने सूखे वृक्षों की कटाई का शांत और अहिंसक विरोध किया था। यह आंदोलन तब शुरू होता है जब वन विभाग ने कृषि उपकरण बनाने वाले एक स्थानीय संगठन'दसौली ग्राम स्वराज्य संघ' को एक वृक्ष देने से मना कर दिया और वन विभाग ने एक निजी कंपनी को वृक्ष दे दिया। इस घटना से आक्रोशित होकर उक्त संघ के नेतृत्व में सभी ग्रामीण लकड़ी से भरे ट्रकों के आगे लेट गए और लकड़ी के गोदाम में आग लगा दी। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य व्यवसाय केलिए हो रही वनों की कटाई पर रोक लगाना था और इसे रोकने के लिए बाद में महिलाएँ पेड़ों से चिपक कर खड़ी हो गईं । पेड़ों

की नीलामी के प्रति स्थानीय महिला गौरा देवी व अन्य महिलाओं द्वारा विरोध किया गया, परंतु ठेकेदार और सरकार पर इस विरोध का कोई असर नज़र नहीं आया। बाद में एक नेता चंडी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में इस प्रयास ने एक प्रभावकारी आंदोलन का रूप ले लिया। फलतः महिलाएँ पेड़ों से चिपक कर खड़ी हो गई और वे कहने लगी कि *पहले हमें काटो फिर इन पेड़ों को भी काट लेना*। इस आंदोलन के प्रमुख नेता सी.पी. भट्ट, सुंदरलाल बहुगुणा और गौरा देवी थीं। यह आंदोलन महिलाओं द्वारा पर्यावरण के संरक्षण को लेकर किया गया था।

नर्मदा बचाओ आंदोलन

यह आंदोलन मेधा पाटेकर के नेतृत्व में किसानों, आदिवासियों, पर्यावरणवेत्ताओं व मानवाधिकार के सक्रिय कार्यकर्ताओं की सहायता से कार्यान्वित किया गया था। इस आंदोलन में बड़ी संख्या में आदिवासी और दलित महिलाओं ने अपनी भूमि को लेकर संघर्ष किया। नर्मदा घाटी परियोजना भारत के तीन प्रमुख राज्यों गुजरात, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र से संबंधित परियोजना है। सन् 1987 से नर्मदा नदी पर तैयार की जा रही नर्मदा घाटी परियोजना (जिसमें दो महापरियोजनाएं सम्मिलित हैं- प्रथम, गुजरात में सरदार सरोवर परियोजना और द्वितीय, मध्य प्रदेश में नर्मदा सागर परियोजना) सबसे बड़ी बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजना है, जो सिंचाई, उत्पादन, बिजली, पेयजल आपूर्ति, बाढ़ व सूखे की संभावनाओं पर प्रतिबंध लगाने के प्रयोजन से नियोजित है। अनुमानतः इस जलाशय में 37,000 हेक्टेयर भूमि जलमग्न हो जाएगी और इस जलमग्न भूमि में 11,000 हेक्टेयर वन सम्मिलित हैं। साथ ही इससे 248 गाँव में निवासरत लगभग एक लाख लोग विस्थापित हो जाएँगे। इन भयप्रद परिणामों की प्रतिध्वनि के रूप में सर्वप्रथम स्थानीय लोगों द्वारा इसका विरोध प्रदर्शन किया गया और यह विरोध प्रमुख रूप से पुनर्वास से संबंधित था। उसके बाद स्थानीय स्वयंसेवी संगठनों द्वारा इसे एक जन आंदोलन के रूप में संगठित किया गया और विस्थापन, पुनर्वास, आजीविका, संस्कृति आदि प्रकार की समस्याओं को उठाया गया।

पुरोगामी महिला संगठन

इस संगठन का निर्माण दलित महिलाओं और देवदासियों को केंद्र में रखकर 1975 में किया गया। इसी वर्ष महाराष्ट्र में महिला समता सैनिक दल और स्त्री मुक्ति संगठन का निर्माण किया गया, जो दलित महिलाओं के शोषण से संबंधित था। 1970 से 1980 के दशक में अनेक पार्टी आधारित संगठनों का निर्माण किया गया, वे निम्नानुसार हैं-

- समाजवादी महिलाओं की महिला दक्षता समिति (1977)
- ऑल इंडिया डेमोक्रेटिक विमेन्स एसोसिएशन (1978)
- भारतीय जनता पार्टी की दुर्गावहिनी
- महिला कांग्रेस

गुलाबी गैंग

1980 में संपत पल और अन्य महिलाओं द्वारा अपने पतियों द्वारा किए गए हिंसात्मक व्यवहार के खिलाफ गुलाबी गैंग शुरू किया गया था। इनका पहचान चिन्ह गुलाबी साड़ी थी। यह समूह बुंदेलखंड में सक्रिय रूप से प्रभावी रहा। कुछ दिनों के संघर्ष और सदस्यों की संख्या में वृद्धि होने के साथ ही उन्होंने सदस्यों को लाठी प्रशिक्षण भी दिया।

2.4 महिला सशक्तिकरण व सशक्तिकरण नीतियाँ

महिला सशक्तिकरण एक बहुआयामी व बहुमुखी नीति है, जो महिला उन्मुखी होती है। इसका अभिप्राय एक ऐसी शक्ति से है, जो महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व कानूनी रूप से विचार-विमर्श करने हेतु मार्ग प्रशस्त कर सके। महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य है- हीनता की संरचना, कानून, अधिकार, संपत्ति, आधिपत्य के स्वरूप व अन्य सभी गतिविधियाँ, जो पुरुष के स्वामित्व को बनाए रखने में उपयोगी होती हैं, उन सभी में पूर्णरूपेण परिवर्तन करना। इस नीति के अंतर्गत सशक्तिकरण की प्रक्रिया के तहत महिलाओं में संगठन निर्माण व चेतना जागृति पर फोकस किया गया है और इसके संवर्धन के लिए सरकार द्वारा सामाजिक व आर्थिक सेवाएँ उपलब्ध कराई जाएँगी। सरकारी परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण का मूल प्रयोजन महिलाओं को स्वयं की समस्याओं के प्रति जागरूक करना तथा उसके आधार पर उन्हें संगठित करना, जहाँ वे अपनी दशाओं के बारे में चिंतन-मनन कर सकें व साथ ही साथ संगठित होकर पुरुषों की सत्ता को चुनौती और स्वयं के विकास में योगदान दे सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा कई कार्यक्रम चलाए गए, यथा- महिला विकास कार्यक्रम (1984), चेतना जागरण कार्यक्रम (1986), महिला समाख्या (1989) आदि। इन कार्यक्रमों में प्रमुखतया तीन बातों पर ज़ोर दिया गया–

1. लिंग आधारित संबंधों के दमनात्मक ढाँचे को उजागर करना।
2. लिंग आधारीत असमान संबंधों को चुनौती देना।
3. सामाजिक संबंधों में महिलाओं की भागीदारी से ही उनके स्वयं के पक्ष में परिवर्तन लाना।

सरकार द्वारा महिलाओं की शिक्षा के लिए अनेक कार्यक्रम व नीतियों का नियोजन किया है, जो निम्नवत हैं–

- माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952-53
- राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति, 1958-59
- हंसा मेहता कमेटी ऑन वुमेन एजुकेशन, 1962
- हंसा मेहता समिति, 1954-65
- फुलरेनु गुहा समिति, 1974
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

- जनार्दन रेड्डी समिति, 1992
- कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना, 1997
- मौलाना आजाद राष्ट्रीय छात्रवृत्ति, 2003
- कस्तूरबा गांधी विद्यालय योजना, 2004
- बालिका शिक्षा प्रोत्साहन योजना, 2005-06
- महिला समाख्या कार्यक्रम (विशेष अवासीय विद्यालय योजना), 2005-06
- इकलौती कन्या छात्रवृत्ति योजना, 2006-08

सरकार द्वारा महिलाओं के स्वास्थ्य सेसंबंधितकई योजनाएँ चलायी जा रही हैं, प्रमुख निम्न हैं–

- स्वास्थ्य सखी योजना, 1997
- राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना, 1997
- पोषाहार मिशन योजना, 2001
- जीवन भारती महिला सुरक्षा योजना, 2003
- जननी सुरक्षा योजना, 2003
- राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, 2005
- भारत निर्माण योजना, 2006

सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण से संबंधित अनेक कार्यक्रम संचालित किए गए हैं प्रमुख निम्नानुसार हैं–

- काम के बदले अनाज योजना, 1977
- अंत्योदय कार्यक्रम, 1978
- समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, 1980
- ग्रामीण क्षेत्रों में महिला व बाल विकास कार्यक्रम, 1982
- ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद, 1986
- महिलाओं हेतु प्रशिक्षण और रोज़गार कार्यक्रम,1987
- कुटीर ज्योति योजना, 1988-89
- स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना, 1999
- अंत्योदय योजना, 2000

ज्ञान शांति मैत्री

- किशोरी शक्ति योजना, 2001
- महिला स्वयं सिद्ध योजना, 2001
- संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना, 2001
- राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना, 2005
- भारत निर्माण योजना, 2005-06

राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति (2001) के उद्देश्यों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. महिलाओं के पूर्ण विकास के लिए यह अवश्य है कि सकारात्मक सामाजिक व आर्थिक नीतियों की सहायता से एक परिदृश्य का निर्माण किया जाय, जिससे वे स्वयं की क्षमता व कुशलता से अवगत हो सकें।
2. सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी व निर्णय क्षमता को समान अवसर दिया जाना।
3. सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक व नागरिक क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा सभी मानवाधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रता का पुरुषों ही भाँति कानूनी व व्यवहारी उपयोग करना।
4. स्वास्थ्य देखरेख, पेशेवर स्वास्थ्य व सुरक्षा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, करियर व व्यावसायिक मार्गदर्शन, रोज़गार, समान वेतन आदि में समान अवसर उपलब्ध करना।
5. कानूनी व्यवस्था को सुदृढ़ करना, जिसका प्रयोजन लिंग संबंधी भेदभाव का उन्मूलन करना हो।
6. पुरुष व महिला दोनों की सक्रिय भागीदारी द्वारा सामाजिक धारणाओं व सामुदायिक व्यवहारों में परिवर्तन लाना।
7. विकास की प्रक्रिया में लैंगिक दृष्टिकोण का नियोजन करना।
8. महिला बालिका के साथ होने वाले भेदभाव का उन्मूलन करना।
9. सिविल सोसाइटी के साथ विशेषकर महिला संगठनों के साथ साझेदारी का निर्माण करना व उसके सशक्तिकरण की दिशा में कार्य करना।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के सहयोग से सरकार ने महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास में समता प्रदान के प्रमुख उद्देश्यों को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति, 2001 की घोषणा की गई, जिसके प्रमुख तथ्य निम्न उल्लेखित हैं–

1. वर्तमान कानून में संशोधन से महिला की आवश्यकताओं के प्रति संवेदना व घरेलू हिंसा के उन्मूलन हेतु नवीन क़ानूनों की निर्मिति और अपराधियों के लिए उचित दंड का प्रावधान किया जाए।
2. लिंग आधारित भेदभाव उन्मूलन के लिए समुदाय, धार्मिक नेताओं आदि की सामूहिक भागीदारी व पहल पर विवाह, तलाक, अभिभावकता जैसे व्यक्तिगत क़ानूनों में बदलाव किया जाए।

3. बाल शोषण, बाल विवाह, बाल वेश्यावृत्ति, बालिका व्यापार, प्रसव-पूर्व लिंग निर्धारण, भ्रूण हत्या के उन्मूलन हेतु कठोर क़ानूनों की व्यवस्था कीजाएगी।
4. महिलाओं को पुरुषों के समान संपत्ति के अधिकार संबंधित क़ानूनों में परिवर्तन किया जाए।
5. सभी निर्णय निकायों की निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता निश्चित की जाए।
6. समय-समय पर उन तंत्रों की प्रगति का मूल्यांकन करना, जो महिलाओं को मुख्य धारा सेजोड़ने का प्रयत्न करते हैं। इससे समन्वय तथा प्रबंधन तंत्र का निर्माण होगा।
7. केंद्रीय तथा राज्य स्तरों पर वर्तमान संस्थागत तंत्रों को मजबूती प्रदान की जाएगी, जिनसे महिला उत्थान की उम्मीद है।
8. महिला उत्थान के लिए परियोजनाओं में सहायता हेतु निजी क्षेत्रों में पूंजी केनिवेश का प्रयास किया जाएगा।
9. निर्धन महिलाओं के लिए आर्थिक सहायता कार्यक्रमों का नियोजन किया जाए।
10. वैश्वीकरण से पैदा नकारात्मक तथा सामाजिक व आर्थिक प्रभावों के खिलाफ महिलाओं को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने की योजना है।
11. स्त्री शिक्षा के स्तर में संवर्धन और अनुकूल शिक्षा प्रणाली की निर्मिति में विशिष्ट नियम क्रियान्वित किए जाएंगे। बालिका विवाह व विवाह का पंजीकरण, महिला स्वास्थ्य, पोषाहार को अनिवार्य बनाया जाएगा।
12. ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों की आवास नीतियों व योजनाओं में महिला परिप्रेक्ष्य को शामिल किया जाएगा।
13. पर्यावरण संरक्षण व बहाली कार्यक्रम आदि में भी महिलाओं को शामिल किया जाएगा।
14. विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महिलाओं को प्रोत्साहित किया जाएगा।
15. अभिनिर्धारण विभाग नीति के नियोजन हेतु वर्तमान विधायी संरचना की समीक्षा की जाएगी और अतिरिक्त विधायी कार्य किए जाएंगे।
16. पंचायती राज संस्थाओं व स्थानीय स्वशासन को व्यवस्थित रूप से शामिल किया जाएगा।

2.5 सारांश

इस इकाई में भारत में महिला उत्थान संबंधी प्रमुख गतिविधियों को सम्मिलित किया गया है जिन्हें तीन लहरों को माध्यम से प्रस्तुत किया गया है- पहली नारीवादी लहर, दूसरी नारीवादी लहर और तीसरी नारीवादी लहर। इसके बाद भारत के प्रमुख नारीवादी आंदोलनों के बारे में वृहत चर्चा प्रस्तुत की गई है। अंततः महिला सशक्तिकरण की संकल्पना और नीतियों व कार्यक्रमों के बारे में भी विवरण प्रस्तुत किया गया है।

2.6 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: भारत में नारीवाद के इतिहास का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 2: स्वतंत्र भारत के प्रमुख नारीवादी आंदोलनों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3: महिला सशक्तिकरण क्या है? स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 4: राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति (2001) व राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति (2001) की घोषणाओं केबारे में उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 5: टिप्पणी कीजिए-

1- नवनिर्माण आंदोलन 2- गुलाबी गैंग

2-

2.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

तपन, बी. (2008). *ह्यूमन, राइट्स, जेंडर एंड इन्वायर्मेंट.* नई दिल्ली: विवा पब्लिकेशन्स

शर्मा, ओ.पी. (2002). *समकालीन महिला लेखन.* दिल्ली: पूजा प्रकाशन एवं वामा पब्लिशर्स

परमार, श. (2015). *नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार.* नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड

सिंह, उ.प. एवं गर्ग, र.क. (2012). *महिला सशक्तिकरण: विभिन्न आयाम.* नई दिल्ली: अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

शर्मा, र. (2012). *महिला सशक्तिकरण.* नई दिल्ली: नेहा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

कुमार, व. (2009). *वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तिकरण.* नई दिल्ली: रीगल पब्लिकेशन्स

शर्मा, ई. एवं अग्रवाल, श. (2011). *महिला सशक्तिकरण के नवीन आयाम: सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में.* नई दिल्ली: नेहा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3

भारतीय परिदृश्य में बाल विकास

इकाई की रूपरेखा

3.0	उद्देश्य
3.1	प्रस्तावना
3.2	बाल विकास
3.3	भारत में बालकों की समस्याएँ
3.4	बाल कल्याण कार्य
3.5	पिछड़े बालकों से संबंधित आवश्यक कल्याणकारी कार्य
3.6	सारांश
3.7	बोध प्रश्न
3.8	संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

ज्ञान शांति मैत्री

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- बाल विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भारत में बालकों की समस्या को रेखांकित कर पाएंगे।
- बाल कल्याण कार्य का वर्णन कर सकेंगे।
- पिछड़े बालकों से संबंधित आवश्यक कल्याणकारी कार्य की व्याख्या कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारत के संविधान में इस बात का उल्लेख किया गया है कि सरकार देश के सभी नागरिकों को समान रूप से महत्व देगी। बालक भी इस परिधि से बाहर नहीं हैं और उनके प्रति सरकार की कुछ जिम्मेदारियाँ हैं जिनका वहन करना सरकार द्वारा आवश्यक है। प्रत्येक राष्ट्र में बालकों से संबंधित अनेक समस्याएँ विद्यमान रहती हैं, यथा- पौष्टिक आहार, स्वास्थ्य, शिक्षा, समुचित देखरेख, प्रशिक्षण आदि। इन

समस्याओं के उन्मूलन हेतु कुछ प्रयत्नशील कार्य किए जाते हैं,इन कार्यों को ही बाल कल्याण कार्य की संज्ञा दी जाती है। इससे संबंधित विस्तृत चर्चा इस इकाई में प्रस्तुत की गई है।

3.2 बाल विकास

सामान्य तौर पर बच्चे के जन्म से लेकर किशोरावस्था के अंत तक होने वाले जैविक व मनोवैज्ञानिक विकास व परिवर्तन को बाल विकास कहा जाता है। इसमें बालक अधिक निर्भरता से अधिक स्वायत्तता की ओर अग्रसरित होते हैं। बाल विकास से संबंधित विद्वानों द्वारा अलग-अलग सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं और उससे संबंधित चरणों का उल्लेख भी किया गया है, यथा- पियाजे का नैतिक विकास सिद्धांत, वाल्बी का लगाव का सिद्धांत, एरिक्सन के मनोसामाजिक चरण, वाटसन का व्यवहार संबंधी सिद्धांत आदि। मूल रूप से आयु संबंधी विकास अवधियों और अंतरालों को निम्नप्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है–

- नवजात (0 से 1 माह)
- शिशु (1 माह से 1 वर्ष)
- नन्हा बच्चा (1 वर्ष से 3 वर्ष)
- प्रीस्कूली बच्चा (3 वर्ष से 6 वर्ष)
- स्कूली बच्चा (6 वर्ष से 13 वर्ष)
- किशोर/किशोरी (13 वर्ष से 20 वर्ष)

बालक का विकास समाज के लिए आवश्यक होता है, क्योंकि यह वह शक्ति होती है, जो समाज को आगे की दिशा में बढ़ाने में सहायता करती है। विकास के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि बालक के सामाजिक, शैक्षणिक, भावात्मक व संज्ञानात्मक विकास को महत्व दिया जाए।

3.3 भारत मे बालको की समस्या

बालक एक ऐसा दुर्बल समूह होता है, जो सामान्यतः दूसरों पर निर्भर रहता है। इस कारण से उन्हें अनेकों छोटी-बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें से कुछ समस्याएँ तो सभी बालकों केलिए सामान्य होती हैं, परंतु कुछ समस्याएँ विशिष्ट होती हैं जो किसी विशेष बालक से संबंधित होती हैं। बालकों की समस्याओं को विद्वानों द्वारा कुछ श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, जो इस प्रकार है–

1. **सामान्य बालकों की समस्याएँ-** भारत में सामान्य तौर पर बालकों को निम्नप्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं–

- शिक्षा की समस्या
- स्वास्थ्य संबंधी समस्या
- पौष्टिक व समुचित आहार की समस्या
- उचित देखरेख न हो पाना
- मनोरंजन की समस्या

निर्धनता के कारण देश में अधिकांश बालकों को पर्याप्त मात्रा में आहार उपलब्ध नहीं हो पाता है और यदि आहार उपलब्ध भी हो जाता है तो उसमें उचित मात्रा में पोषाहार की कमी होती है। वहीं दूसरी ओर चिकित्सीय सुविधाओं की कमी के कारण पोषण की कमी को टीकाकरण से भी दूर कर पाना दुष्कर है। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा होने के बावजूद भी लगभग 50 प्रतिशत बालक प्रारंभिक अवस्था में ही विद्यालय को त्याग देते हैं। साथ ही अभिभावक की अज्ञानता के कारण बालक की समुचित देखभाल नहीं हो पाती है।

2. **अनाथ बालकों की समस्याएँ-** प्राकृतिक आपदाओं, महामारी, दुर्घटना, सांप्रदायिक दंगों आदि के कारण बालक अनाथ हो जाते हैं और साथ ही कई बालक अपने माता-पिता व परिजनों से बिछड़ जाने के कारण भी इस श्रेणी में शामिल हो जाते हैं। सामान्य तौर पर समाज द्वारा इन बालकों को स्वीकार नहीं किया जाता है और उन बालकों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, , जिनमें प्रमुख निम्न हैं–
   - संरक्षण की समस्या
   - पुनर्वास की समस्या
   - संस्थागत देखरेख से संबंधित समस्या
   - शिक्षा की समस्या
   - स्वास्थ्य व चिकित्सीय समस्या

ज्ञान शांति मैत्री

3. **विकलांग बालकों की समस्याएँ-** विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, भारत में लगभग 9 करोड़ विकलांग हैं और इनकी संख्या में निरंतर 50 लाख प्रतिवर्ष की दर से बढ़ोतरी हो रही है। इन बालकों की समस्याएँ अत्यंत जटिल प्रकार की होती हैं, प्रमुख निम्न हैं–
   - स्वास्थ्य व उपचार की समस्या
   - पुनर्वसन की समस्या

- संस्थागत देखरेख की समस्या
- विशिष्ट शिक्षा व प्रशिक्षण की समस्या
- मनोरंजन व आर्थिक सुरक्षा की समस्या

4. **बाल श्रमिकों की समस्याएँ-** 14 वर्ष से कम उम्र के बालक इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। बाल श्रम एक सामाजिक बुराई है और इस धारणा को मान्यता देने के बावजूद भारत में विभिन्न उद्योगों, होटलों, दुकानों, व्यवसायों, घरेलू कार्यों आदि में बालक काम करते हैं। इनसे संबंधित प्रमुख समस्याएँ निम्नवत हैं–
    - मज़दूरीकम, कार्य अधिक
    - निरंतर काम करने की मजबूरी
    - अवकाश की कमी
    - काम की कठिन दशाएँ
    - शारीरिक प्रताड़ना

5. **बाल अपराधियों की समस्याएँ-** पारिवारिक विघटन, अनाथ बालकों की संख्या में वृद्धि निर्धनता उन्मूलन के प्रभावों की विफलता, अनैतिकता में वृद्धि आदि प्रकार के कारणों से बालकों केअपराध की ओर उन्मुख होने से बाल अपराध में वृद्धि हुई। बाल अपराधियों की समस्याएँ निम्न होती हैं-
    - सुधार की समस्या
    - पुनर्वास की समस्या
    - देखभाल की समस्या
    - शिक्षा व प्रशिक्षण संबंधी समस्या

3.4 बाल कल्याण कार्य

भारत में बाल कल्याण कार्यों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- केंद्र व राज्य सरकार द्वारा किए गए प्रयत्न
- स्वयंसेवी संगठनों द्वारा किए गए प्रयत्न

केंद्र व राज्य सरकार द्वारा किए गए प्रयत्न

ज्ञान शांति मैत्री

स्वतंत्र भारत में बाल कल्याण के कई प्रयास किए गए, जिनमें पंचवर्षीय योजनाएँ और कई कार्यक्रम शामिल हैं। बालक (6 वर्ष की आयु से कम) भारत की जनसंख्या का लगभग 16 प्रतिशत हैं (1991 की जनगणना के अनुसार)। इस दृष्टि से भी बाल कल्याण के लिए सरकार के कुछ दायित्व बनते हैं और इनके निर्वहन हेतु कुछ प्रावधान किए जाते हैं। केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा किए गए प्रमुख प्रयत्न संक्षेपमें प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

1. **बालकों के लिए राष्ट्रीय नीति-** बालकों के लिए सरकार द्वारा 1974 में राष्ट्रीय नीति का नियोजन किया गया, जिसका प्रयोजन बालकों के सामाजिक, शारीरिक व मानसिक विकास के लिए जन्म से पूर्व और जन्म के पश्चात तथा वृद्धि के दौरान आवश्यक सुविधाएँ मुहैया कराना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु तत्कालीन प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय बाल परिषद का गठन किया गया और इसके बाद कई राज्यों में भी इस प्रकार की परिषदों का गठन किया गया। इसके अलावा बाल कल्याण की दृष्टि से कई कार्यक्रमों को भी कार्यान्वित किया गया। इनमें से 2 अक्टूबर, 1975 को लागू किए गए 'समन्वित बाल विकास कार्यक्रम' का उल्लेख विशेष रुप से किया जाता है।
2. **संवैधानिक प्रावधान-** बालकों के हित के लिए संवैधानिक रूप से सरकार द्वारा कई प्रावधान किए गए हैं। सरकार द्वारा बाल श्रम व बलात श्रम पर प्रतिबंध लगाया गया है। संविधान द्वारा बाल शोषण व संरक्षण से संबंधित सुरक्षा प्रदान की गई है।14 वर्ष तक की आयु के बालकों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान किए जाने का प्रावधान भी किया गया है।
3. **सामान्य व विशिष्ट श्रेणी के बालकों का कल्याण-** सरकार द्वारा सामान्य व विशिष्ट श्रेणी दोनों से संबंधित कल्याणकारी प्रावधान किए गए हैं।1953 में केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड का गठन किया गया और इसे 1969 को स्वायत्त अस्तित्व दे दिया गया। सरकार द्वारा समाज कल्याण मंत्रालय के तहत 'पोषण एवं बाल विकास ब्यूरो' को स्थापित किया गया, जिसका मूल उद्देश्य बाल कल्याण से संबंधित नीतियों को नियोजित करना और बाल कल्याण कार्यक्रमों को समन्वित रूप से कार्यान्वित करना है। दिव्यांगो से संबंधित नीतियों और कार्यक्रमों के बारे में सुझाव देने के लिए'राष्ट्रीय विकलांग कल्याण परिषद' का निर्माण किया गया। इसके अलावा निजी व सार्वजनिक अंशदान प्राप्ति हेतु 'राष्ट्रीय विकलांग कल्याण निधि' का गठन किया गया। नेत्रहीनों के लिए समेकित सेवाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से देहरादून में एक राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना की गई। इसके अंतर्गत नेत्रहीन बालकों की शिक्षा के संवर्धन की दृष्टि से विद्यालयों की स्थापना की गई है। मुंबई में'अली यावर जंग राष्ट्रीय संस्थान' का गठन किया गया, जो श्रणव-दोष से पीड़ितों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर समेकित सेवाएँ उपलब्ध कराने के उद्देश्य से संबंधित है। केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा अनाथ बालकों के लिए स्थापित अनाथालयों व शिशु-सदनों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इसके अलावा स्वयं सेवी संगठनों को भी इसके द्वारा वित्तीय सहायता उपलब्ध की जाती है।

स्वयंसेवी संगठनों द्वारा किए गए प्रयास भारत में बाल विकास के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संगठन अधिकाधिक संख्या में हैं। ये संगठन बालकों की समस्याओं का गहराई से अध्ययन करते हैं और बाल हित की दृष्टि से अनेक कार्यों का संपादन करते हैं, यथा–

- कानून लागू करवाने में व उसे परिवर्धित कराने में
- बाल विकास योजनाओं में सहभागिता
- अवकाश गृहों का संचालन
- नेत्रहीनों के विद्यालय, मूक-बधिरों से संबंधित विद्यालय व दिव्यांगों के व्यावसायिक प्रशिक्षण का संचालन
- बालकों को भोजन व मनोरंजन संबंधी वस्तुएँ वितरित करना
- बालकों की समस्याओं के निवारण में

3.5 पिछड़े बालकों से संबंधित आवश्यक कल्याणकारी कार्य

कुछ बालक ऐसे होते हैं, जिनका विकास सामान्य बालकों की अपेक्षा मंद होता है और वे सामान्य की अपेक्षा कम प्रगतिशील होते हैं। **सिरिलबर्ट** के अनुसार, *"पिछड़ा बालक वह है, जो अपने विद्यालय जीवन के दौरान अपनी निचली कक्षा के उस कार्य को न कर सके, जो उसकी आयु के बालकों के सामान्य कार्य हैं।"* सामान्य तौर पर, जो बालक संपूर्ण कक्षा के औसत बालकों की अपेक्षाकृत धीमी गति से आगे बढ़ते हैं उन्हें पिछड़े बालकों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इन बालकों की स्थिति व स्वरूप के आधार पर उन्हें निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. मंद बुद्धि वाले पिछड़ेबालक
2. शारीरिक दोष वाले पिछड़े बालक
3. ज्ञानेंद्रिय दोष वाले पिछड़े बालक
4. पर्यावरण के कारण पिछड़े बालक

अनेक मनवैज्ञानिकों का मानना है कि यदि मानसिक रूप से अस्वस्थ बालकों को समुचित शिक्षा सुविधा उपलब्ध कराई जाए तो उनका भी विकास संभव है। इससे संबंधित अनेक अध्ययन भीहुए हैं, जो इस बात को पुष्ट करते हैं। पिछड़े बालकों के बारे में संज्ञान करने की प्रमुख विधियाँ निम्नवत हैं-

- बुद्धि परीक्षण के परिणाम
- निष्पत्ति परीक्षण के परिणाम
- पिछली कक्षाओं के परिणाम
- शिक्षकों के मत

उक्त विधियों की सहायता से पिछड़े बालकों की पहचान की जा सकती है और उनके लिए विशिष्ट प्रावधान करने से उनके विकास को महत्व दिया जा सकता है।

विशिष्ट विद्यालय

इन बालकों के लिए विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए और इस ओर सरकार द्वारा भी उल्लेखनीय कदम उठाए जा रहे हैं। विशिष्ट विद्यालय विशिष्ट बालकों के विकास के लिए लाभप्रद सिद्ध होते हैं। इन विद्यालयों में यदि आवास संबंधी सुविधाएं उपलब्ध हों तो यह उन बालकों के लिए और भी उपयोगी होगा।

विशिष्ट कक्षाओं की व्यवस्था

सामान्य कक्षाओं से इन बालकों की समस्याओं को दूर नहीं किया जा सकता है इसलिए यह अति आवश्यक है कि पृथक और विशिष्ट प्रकार की कक्षाओं की व्यवस्था की जाए। इन कक्षाओं में सामान्य पाठ्यक्रम पढ़ने के साथ-साथ उनसे संबंधित कुछ शारीरिक व क्रियात्मक कार्य भी कराएं जाए। साथ ही बालकों पर विशेष ध्यान दिए जाने के कारण वे स्वयं को सुरक्षित महसूस करेंगे और बेहतर निष्पादन करेंगे। इन कक्षाओं के संचालन में निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है

- कक्षा विशेष में एक ही प्रकार के बालक शामिल हों।
- कक्षा में बालकों की संख्या कम हो।
- अलग-अलग विषयों के लिए अलग-अलग कक्षाओं की व्यवस्था की जाए।
- कालांशों की अवधि तुलनात्मक रूप से न्यून हो।
- अनुभवी व प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था की जाए और उनकी शिक्षण गति धीमी हो।

विशिष्ट पाठ्यक्रम

विशिष्ट विद्यालय और कक्षाओं की व्यवस्था के साथसाथ यह भी आवश्यक है कि उनके लिए पाठ्यक्रम भी विशिष्ट प्रकार के हों। इस प्रकार के विशिष्ट पाठ्यक्रम व विधियों की व्यवस्था की जा रही है, जो नेत्रहीन, मूक-बधिर व मंद बुद्धि बालकों के विकास में उपयोगी हों। मंदबुद्धि बालकों के लिए हस्तकला की शिक्षा पर ज़ोर देना चाहिए, यथा- पेंटिंग, कताई-बुनाई, सिलाई-बुनाई आदि।

विशिष्ट शिक्षण विधियों का उपयोग

ज्ञान शांति मैत्री

पिछड़े बालकों को सामान्य शिक्षण विधियों के माध्यम से पढ़ने पर ज़्यादा लाभ नहीं प्राप्त होता। इसके स्थान पर उन्हें विशिष्ट शिक्षण विधियों के माध्यम से शिक्षा दिए जाने की आवश्यकता होती है। इसके लिए निम्न विधियों को उपयोग में लाया जा सकता है–

1. शिक्षण प्रक्रिया मंद गति से की जाए और इस प्रक्रिया में पुनरावृत्ति के अवसर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों।
2. सहायक सामग्री के उपयोग से शिक्षक को अध्यापन कार्य को सरल बनाना चाहिए।
3. यह ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है कि बालक तथ्यों को याद करके सीखें।
4. शिक्षक द्वारा व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध कराया जाए।
5. मूर्त-अमूर्त ज्ञान को सरल बनाकर बालकों को तथ्यों के बारे में अवगत कराएं।
6. कक्ष कार्य, गृह कार्य, अभ्यास कार्य आदि पर ज़ोर दें।

विशिष्ट अध्यापक

उक्त सभी तत्वों के सही ढंग से नियोजन के लिए आवश्यक है कि बालकों के लिए विशिष्ट प्रकार के शिक्षकों की व्यवस्था की जाए। इन अध्यापकों में निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए–

1. इन अध्यापकों को बाल मनोविज्ञान के बारे में व्यावहारिक ज्ञान होना आवश्यक है।
2. बालकों की शैक्षिक प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक प्रशिक्षित व पूर्ण रूप से योग्य हों।
3. इन शिक्षकों का बालकों के प्रति व्यवहार भेदभाव रहित होना चाहिए।
4. बालकों के प्रति वे स्नेही रवैया रखें।

ज्ञान शांति मैत्री

3.6 सारांश

इस इकाई में बाल विकास और भारत में बालकों की समस्याओं के बारे में वर्णन प्रस्तुत किया गया है। बालकों का शोषण किया जा रहा है और उनसे बलात श्रम कराया जा रहा है और इस कारण से कई बालक आपराधिक गतिविधियों में संलिप्त हो जाते हैं। इन सभी समस्याओं के उन्मूलन हेतु अनेक बाल कल्याण कार्य किए जाते हैं। इस इकाई के अंत में पिछड़े बालकों के बारे में भी चर्चा की गई है और साथ ही उनकी शिक्षा के बारे में भी विचार प्रस्तुत किया गया है।

3.7 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: बाल विकास क्या है? स्पष्ट कीजिए। साथ ही भारत में बालकों की समस्या का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 2: बाल कल्याण कार्य के बारे में वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

प्रश्न 3: पिछड़े बालकों की शिक्षा पर प्रकाश डालिए।

3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

हरलॉक, ई.बी. (2011). *चाइल्ड डेवलपमेंट*. नई दिल्ली: टाटा मैगरा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड

बर्क, एल.ई. (2013). *चाइल्ड डेवलपमेंट*.नई दिल्ली: पीएचआई

सिंह, बी.के. (2005) *चाइल्ड डेवलपमेंट इन इंडिया*. नई दिल्ली: अध्ययन पब्लिशर्स

बाजपई, अ. (2003). *चाइल्ड राइट्स इन इंडिया: लॉ, पॉलिसी एंड प्रैक्टिस*. यूके: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

चोपड़ा, ग. (2015). *चाइल्ड राइट्स इन इंडिया: चैलेंजेज़ एंड सोशल एक्शन*. न्यूयॉर्क: स्प्रिंगर पब्लिशिंग

मुरजनी, ज. (2010). *बाल विकास*. जयपुर: आविष्कार पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीबूटर्स

शर्मा, प. (2013). *बाल विकास: समस्या एवं समाधान*. वाराणसी: ग्रीन लीफ पब्लिकेशन

बयाती, ज. (2006). *बाल विकास: समस्या एवं समाधान*. नई दिल्ली: हिंदी बुक सेंटर

यादव, र.प. (2008). *बाल श्रम: समस्या एवं समाधान*. जयपुर: पॉइंटर पब्लिशर्स

दशोरा, म.क. (2006). *बाल श्रमिक समस्याएँ एवं समाधान*. नई दिल्ली: हिमांशु पब्लिकेशन्स

चौबे, एस.पी. (2004). *बाल विकास मनोविज्ञान के मूल तत्व*. नई दिल्ली: कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी

पाण्डेय, त. एवं पाण्डेय, अ. (2011). *समाज कार्य*. लखनऊ: भारत बुक सेंटर

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 4

बाल विकास नीतियाँ- राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय

इकाई की रूपरेखा

4.0	उद्देश्य
4.1	प्रस्तावना
4.2	राष्ट्रीय बाल नीति (2013)
4.3	बाल यौन अपराध संरक्षण अधिनियम (2012)
4.4	एकीकृत बाल विकास सेवा योजना
4.5	एकीकृत बाल सुरक्षा योजना
4.6	पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा से संबंधित कार्यक्रम
4.7	राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना
4.8	किशोरी बालिका योजना
4.9	विश्व खाद्य कार्यक्रम परियोजना
4.10	अंतरराष्ट्रीय सहयोग
4.11	सारांश
4.12	बोध प्रश्न
4.13	संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

ज्ञान शांति मैत्री

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- बाल नीतियों व अधिनियमों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- बाल कार्यक्रमों व योजनाओं का वर्णन कर सकेंगे।
- बाल विकास से संबंधित अंतरराष्ट्रीय सहयोग को प्रदर्शित कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

बाल विकास सरकार की ज़िम्मेदारी और आवश्यकता भी है। इन नन्हें नागरिकों के विकास के बिना देश का विकास संभव नहीं है। जैसा कि पिछली इकाई में यह बताया गया कि पूरी जनसंख्या का एक-चौथाई हिस्सा ये बालक ही हैं, अतः इनके संवर्धन के बिना विकास की कवायद करना निरर्थक प्रतीत होता है। इस क्षेत्र में सरकार द्वारा अनेक प्रयास किए गए हैं। इस इकाई में इन्हीं प्रयासों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा और साथ ही कुछ अंतरराष्ट्रीय प्रयासों की चर्चा भी की जाएगी।

4.2 राष्ट्रीय बाल नीति (2013)

26 अप्रैल 2013 को भारत सरकार द्वारा बालकों के लिए एक राष्ट्रीय नीति का नियोजन किया गया है। यह नीति 18 वर्ष की आयु से कम आयु से संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा की प्रतिबद्धता को स्पष्ट करती है। इस नीति में बचपन को जीवन का अटूट अंश माना गया है और यह अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। किसी भी बालक के किशोर होने तक का पूरा कार्यकाल बचपन/बाल्याकाल में ही संपन्न होता है और यही मनुष्य को नैतिकता व अन्य गुणों के बारे में संज्ञानात्मक व्यवहार कीअभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसलिए बालकों के विकास और उनकी सुरक्षा के लिए दीर्घकालिक, बहुआयामी व समावेशी परिप्रेक्ष्य रखना आवश्यक है। यहाँ इस नीति के प्रमुख निर्देशों का उल्लेख किया जा रहा है-

1. प्रत्येक बालक को जीवन जीने का, विकास, सुरक्षा व सहभागिता का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।
2. बिना किसी भेदभाव के सभी बालकों को समान अधिकार दिया जाना चाहिए।
3. बालकों से संबंधित सभी कार्यों व निर्णयों में बालकों के हितों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
4. बालकों के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से अनुकूल पारिवारिक वातावरण होना चाहिए।

इस नीति को प्रभावी तरीके से कार्यान्वित किए जाने के प्रयोजन से एक राष्ट्रीय कार्ययोजना का निर्माण किया जाएगा और कार्यान्वयन की प्रगति का निरीक्षण करने के लिए एक राष्ट्रीय समन्वय और कार्यसमूह का गठन भी किया जाएगा।

4.3 बाल यौन अपराध संरक्षण अधिनियम (2012)

यह अधिनियम बालकों के शोषण के मसलों से निपटने के प्रयोजन से नियोजित किया गया। यह कानून नियमों सहित 14 नवंबर 2012 को पारित किया गया। इस कानून द्वारा 18 वर्ष से कम की आयु को बालक के रूप में परिभाषित किया गया है और इसमें बालक व बालिका के रूप में लैंगिक भेदभाव नहीं किया गया है अर्थात यह समान रूप से दोनों पर लागू होता है। इसमें अपराध की गंभीरता के अनुसार दंड दिए जाने का प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त अदालत के फैसले पर जुर्माने का प्रावधान भी है। यदि अपराध किसी सुरक्षा बल के सदस्य, पुलिस अधिकारी अथवा सरकारी कर्मचारी द्वारा किया जाता

है तो वह ज़्यादा 'गंभीर' माना जाएगा। इस प्रकार के अपराधों की सुनवाई के लिए विशेष प्रकार की अदालत की व्यवस्था की गई है, ताकि किसी भी परिस्थिति में बालकों के हितों की रक्षा की जा सके। इन अपराधों की त्वरित सुनवाई का प्रावधान किया गया है। यौन शोषण से संबंधित गंभीर अपराधों को सार्वजनिक तौर पर उजागर करने का अधिकार मीडिया को विशेष अदालत की अनुमति के बगैर नहीं है और मीडिया द्वारा इस प्रावधान का उल्लंघन करने पर 6 माह से 1 वर्ष की सजा हो सकती है।
केंद्र व राज्य सरकारों को यह दायित्व दिया गया है कि बालकों, संरक्षकों, अभिभावकों व सामान्य जनता को इसके प्रावधानों के बारे में जागरूक करें और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु टेलीविज़न, रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं आदि के माध्यम से इन प्रावधानों का प्रचार-प्रसार किया जाए। इस कानून के कार्यान्वयन का निरीक्षण अधिकार राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग और राज्य स्तरीय बाल अधिकार संरक्षण आयोगों को प्रदान किया गया है।

4.4 एकीकृत बाल विकास सेवा योजना (ICDS)

इस योजना का क्रियान्वयन राष्ट्रीय बाल नीति (1974) के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 2 अक्टूबर 1975 में किया गया था। निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस योजना को लागू किया गया है-

1. 6 वर्ष से कम आयु के बालकों तथा गर्भवती व स्तनपान कराने वाली माताओं के स्वास्थ्य में सुधार और पौष्टिक आहार की व्यवस्था।
2. पोषण और स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा के माध्यम से बालकों व माताओं के स्वास्थ्य को व्यवस्थित रखना।
3. बालकों के समुचित शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक विकास की आधारशिला निर्मित करना।
4. बाल मृत्यु दर, अस्वस्थता, कुपोषण और स्कूल छोड़ने वाले बालकों के दर को न्यूनतम करना।
5. बाल विकास के संवर्धन हेतु विभिन्न विभागों के मध्य नीति व कार्यान्वयन में कारगर समन्वय स्थापित करना।

यह योजना 6 वर्ष से कम आयु के बालकों तथा गर्भवती व स्तनपान करने वाली माताओं को 6 सेवाएँ मुहैया कराती है, जो निम्न हैं–

- अनुपूरक पोषण
- पोषण व स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा
- स्कूली शिक्षा से पहले गैर-औपचारिक शिक्षा
- प्रतिरक्षण
- स्वास्थ्य जाँच

- संदर्भ सेवाएँ

इस योजना के प्रभावी तरीके से कार्यान्वयन की दृष्टि से सरकार द्वारा 4 सितंबर 2012 इसके सुदृढ़ीकरण और पुनर्गठन के प्रस्ताव को पारित किया, इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

1. 3 वर्ष से कम आयु के बालकों और गर्भवती व स्तनपान कराने वाली माताओं पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।
2. अत्यधिक कुपोषित बालकों की देखरेख व पोषण आदि के लिए सुदृढ़ीकरण और पुनर्गठन की व्यवस्था।
3. 3 वर्ष से कम आयु वाले बालकों पर ध्यान आकृष्ट करने तथा देश के अत्यधिक बोझ वाले 200 जिलों में गर्भवती व स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए परिवार से बेहतर देखरेख व पोषण संबंधी सलाह हेतु संपर्क कार्यकर्ताओं की व्यवस्था।
4. बालकों की देखरेख और शिक्षा को महत्व देना।
5. विदेशी सशक्त संस्थागत और कार्यक्रम अभिसरण संस्थाओं खासकर जिला, ब्लॉक और ग्रामीण स्तर पर का निर्माण करना।
6. सामुदायिक भागीदारी हेतु स्थानीय स्तर पर योजनाओं में लचीली प्रकृति लाना।
7. APPIP की शुरुआत करना।
8. लागत संशोधन सहित पूरक पोषण कार्यक्रम में सुधार करना।
9. ICDS को मिशन मोड में परिवर्तित करना।
10. वित्तीय नियमों को संशोधित करना।

4.5 एकीकृत बाल सुरक्षा योजना (ICPS)

इस योजना को महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा 2009-10 में राज्य व केंद्रशासित प्रदेशों के माध्यम से नियोजित किया गया। इसका प्रयोजन समस्याग्रस्त बालकों के कल्याण में योगदान देना और बालकों के शोषण, उपेक्षा, परित्याग व माता-पिता/संरक्षक से अलगाव की परिस्थिति को कम-से-कमतर करना है। यह योजना बालकों की समस्या के उन्मूलन, संवैधानिक देखरेख और पुनर्वास सेवाएँ उपलब्ध कराता है। इसके अलावा असहाय बालकों को किशोर न्याय (देखभाल और सुरक्षा) अधिनियम, 2000 के तहत सुरक्षा भी उपलब्ध कराता है। यह राज्य सरकार/केंद्रशासित प्रदेशों के प्रशासनों को स्वयं अथवा गैर-सरकारी संगठनों की मदद सेवाओं के संचालन में वित्तीय सहायता मुहैया करती है। इनमें प्रमुख सेवाएँ हैं–

1. बालकों के लिए विभिन्न प्रकार के आवास की सुविधा।
2. मुसीबत में फंसे बालकों तक आपात स्थिति में चाइल्ड लाइन की सहायता से पहुँचाना।
3. शहरी व अर्द्धशहरी क्षेत्रों में बालकों की देखरेख और रक्षा के खुले आवास की व्यवस्था।

4. प्रायोजन के तहत परिवार आधारित गैर-संस्थागत देखरेख।

चाइल्ड लाइन सेवाएँ

मुसीबत में फंसे बालकों की सेवा के उद्देश्य से 1098 नंबर पर निःशुल्क फोन सेवा शुरू की गई जो 24 घंटे उपलब्ध रहती है। वर्तमान समय में यह सेवा कुल 276 शहरों/जिलों में क्रियाशील है। इसके मूल उद्देश्य निम्नवत हैं–

1. आपात स्थिति में फंसे बालकों को तत्काल सहायता पहुँचाना।
2. बालकों की देखभाल व संरक्षण सेवाओं के प्रति समर्पित सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं के मध्य नेटवर्किंग हेतु एक सेतु का निर्माणकरना।
3. बालकों की जरूरतों के अनुरूप अस्पताल, पुलिस, नगर निगम आदि को संवेदनशील बनाना।
4. बालकों के अधिकारों का संरक्षण।
5. समुदायों की मुसीबत में फसें बालकों की आवश्यकता के समय मदद करने के अवसर पर उपलब्ध कराना।

चाइल्ड लाइन सेवा का समन्वय, निरीक्षण और विस्तार हैल्प लाइन इंडिया फाउंडेशन द्वारा किया जाता है। इसे वित्तीय सुरक्षा भारत सरकार द्वारा प्रदान की जाती है।

4.6 पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा से संबंधित कार्यक्रम

इस कार्यक्रम में 15 से 45 वर्ष की आयु की महिलाओं में शिक्षा की सहायता से पोषण और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता व क्षमता विकसित करने तथा इसके फलस्वरूप उनमें स्वयं और अपने बच्चों के प्रति स्वास्थ्य और पोषण संबंधी जानकारी उपलब्ध कराने एवं इससे संबंधित आवश्यकताओं को वे पूरा कर सकें का उद्देश है। सरकार द्वारा संचालित कई कार्यक्रमों में ऐच्छिक संगठनों द्वारा उल्लेखनीय भूमिका निभाई जा रही है। चालू पंचवर्षीय योजनाओं में इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में गैर-सरकारी संगठनों और ऐच्छिक संगठनों की सक्रियता को संवर्धित करने पर ज़ोर दिया जा रहा है।1996-97 के दौरान कुल 300 आंगनबाड़ी कार्यकर्ता प्रशिक्षण केंद्र क्रियाशील थे। इनमें से 167 केंद्र गैर-सरकारी संगठनों व ऐच्छिक संगठनों के सहयोग से तथा 17 केंद्र उत्तर प्रदेश भारत स्काउट एवं गाइड(लखनऊ) द्वारा संचालित किए जा रहे थे। केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा बाल कल्याण कार्यों के लिए प्रति वर्ष अनेकों गैर-सरकारी तंत्रों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

4.7 राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना

1990-91 में इस योजना का नियोजन किया गया। इस योजना में निर्धन परिवारों और गर्भवती महिलाओं को प्रथम व द्वितीय मातृत्व के अवसर पर पौष्टिक आहार और दवा आदि के लिए अनुदान राशि का प्रावधान बनाया गया। इसमें प्रथम व द्वितीय जीवित प्रसव की स्थिति में 300 रुपया प्रति प्रसव की दर से

मदद उपलब्ध की जाती है (बिहार सरकार द्वारा प्रथम प्रसव में 300 रुपये और द्वितीय प्रसव में 500 रुपये मातृत्व अनुदान के रूप में दिए जाने का प्रावधान बनाया गया है)। इसमें लाभार्थियों के लिए निम्न शर्तें रखी गई हैं–

1. महिलाओं की आयु19 वर्ष से अधिक हो।
2. वह महिला गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवार से संबंधित हो।
3. मातृत्व के संबंध में पंजीकृत चिकित्सक का प्रमाणपत्र होना अनिवार्य है।
4. प्रथम प्रसव और द्वितीय प्रसव के मध्य अंतर कम-से-कम 36 महीनों का होना चाहिए।

4.8 किशोरी बालिका योजना

एकीकृत बाल विकास योजना के उद्देश्य से महिला और बालक को एक अनिवार्य घटक के रूप में महत्व दिया जाता है। एकीकृत बाल विकास सेवा में 507 प्रखंडों में 11-18 आयु वर्ग में विशेष रूप से विद्यालय का परित्याग कर चुकी 3.5 लाख किशोरियों के लिए स्वास्थ्य, पोषण आदि सेवाओं का विस्तार किया गया है। किशोरी बालिका योजना बिहार राज्य के 74 विकास खंडों में नियोजित की गई है, इसके प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं–

1. 11-18 आयु वर्ग की किशोरियों के पोषण और स्वास्थ्य स्तर में सुधार करना।
2. अनौपचारिक शिक्षा के ज़रिये किशोरियों को अक्षर और अंक ज्ञान प्रदान करना तथा सामाजिक ज्ञान व निर्णय लेने की क्षमता को विकसित करना।
3. घरेलू कार्यकुशलता को सुधारने और संवर्धित करने हेतु किशोरियों को प्रशिक्षण देना।
4. परिवार कल्याण, पोषण, स्वास्थ्य, स्वच्छता, गृह-प्रबंध और देखरेख से जुड़ी जानकारियों को बढ़ावा देना।
5. किशोरियों के विवाह की उम्र को 18 वर्ष की आयु अथवा उससे अधिक आयु में सुनिश्चित करना। इसके लिए आंगनबाड़ी और महिला मंडल जैसे संगठनों की मदद ली जा सकती है।

इस योजना की पात्रता हेतु कुछ मापदंडों को निर्धारित किया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों की 11-18 आयु वर्ग की अविवाहित किशोरियों और 6400 रुपये से कम आमदनी वाले परिवारों से संबंधित किशोरियों को इस योजना का लाभ प्राप्त हो सकता है।

4.9 विश्व खाद्य कार्यक्रम परियोजना

भारत में एकीकृत बाल विकास योजना के अंतर्गत 6 वर्ष से कम आयु के बालकों तथा गर्भवती व स्तनपान कराने वाली माताओं को अतिरिक्त पोषण देने के उद्देश्य से विश्व खाद्य कार्यक्रम परियोजना संख्या 2206 संबंधित है। मार्च 1976 से जून 1995 तक इस परियोजना ने अपने पाँच चरण पूर्ण कर लिए

ज्ञान शांति मैत्री

हैं। 4 जुलाई 1996 में इस परियोजना के छठें चरण का आरंभ हुआ। इसमें असम, केरल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश के लगभग 22 लाख लाभार्थियों को सम्मिलित करने की योजना है।

4.10 अंतरराष्ट्रीय सहयोग

भारत द्वारा बालकों के अधिकारों पर दो वैकल्पिक संधियों पर दस्तखत किए गए हैं-

1. बालकों की खरीद-फरोख्त, बाल वेश्यावृत्ति और बाल अश्लील साहित्य पर रोक
2. सशस्त्र संघर्ष में बालकों की भागीदारी रोक

संधि पर दस्तखत होने के कारण देश की वचनबद्धता को स्पष्ट करते हुये संयुक्त राष्ट्र समिति के समक्ष अवाधिक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। बाल अधिकार समिति की पिछली बैठक जनवरी 2004 में हुई। महिला और बाल विकास मंत्रालय द्वारा बालकों के अधिकारों से संबंधित दो संधि और दो वैकल्पिक संधियों के आधार पर तीसरी और चौथी आवधिक रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट को संबंधित मंत्रालयों, राज्य सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों, नागरिक संगठनों व विशेषज्ञों से प्राप्त की गई सूचनाओं के आधार पर निर्मित किया गया था।

4.11 सारांश

इस इकाई में बालकों से संबंधित कार्यक्रम, योजनाओं और नीतियों को सम्मिलित किया गया है। इसके अलावा कुछ अंतरराष्ट्रीय प्रयासों को भी संक्षेप में रखने का प्रयास किया गया है। बालकों से संबंधित प्रावधानों व उपबंधों से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराने में यह इकाई आपकी मदद करेगी।

4.10 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: राष्ट्रीय बाल नीति (2013) को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2: एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के बारे में उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 3: बाल विकास व अधिकारों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 4: टिप्पणी कीजिए–

1- एकीकृत बाल सुरक्षा योजना
2- पोषण और स्वस्थ्य शिक्षा से संबंधित कार्यक्रम
3- किशोरी बालिका योजना
4- विश्व खाद्य कार्यक्रम परियोजना
5- राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना

4.13 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

ज्ञान शांति मैत्री

बाजपई, अ. (2003). *चाइल्ड राइट्स इन इंडिया: लॉ, पॉलिसी एंड प्रैक्टिस.* यूके: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

चोपड़ा, ग. (2015). *चाइल्ड राइट्स इन इंडिया: चैलेंजेज़ एंड सोशल एक्शन.* न्यूयॉर्क: स्प्रिंगर पब्लिशिंग

हरलॉक, ई.बी. (2011). *चाइल्ड डेवलपमेंट*. नई दिल्ली: टाटा मैगरा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड

बर्क, एल.ई. (2013). *चाइल्ड डेवलपमेंट*. नई दिल्ली: पीएचआई

सिंह, बी.के. (2005) *चाइल्ड डेवलपमेंट इन इंडिया.* नई दिल्ली: अध्ययन पब्लिशर्स

पाण्डेय, त. एवं पाण्डेय, अ. (2011). *समाज कार्य*. लखनऊ: भारत बुक सेंटर

मुरजनी, ज. (2010). *बाल विकास*. जयपुर: आविष्कार पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

शर्मा, प. (2013). *बाल विकास: समस्या एवं समाधान.* वाराणसी: ग्रीन लीफ पब्लिकेशन

ज्ञान शांति मैत्री

खंड - 2
समुदाय विकास

इकाई 1 जनजाति विकास

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 जनजाति की संकल्पना
1.3 जनजातीय सामाजिक संगठन
1.4 अनुसूचित जनजाति की संवैधानिक स्थिति
1.5 राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग
1.6 जनजातीय विकास कौशल एवं नीतियां
1.7 सारांश
1.8 बोध प्रश्न
1.9 संदर्भ एवं अन्य पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- जनजाति की अवधारणा को समझ कर उस की व्याख्या कर पायेंगे।
- जनजाति की विशेषताओं एवं सामाजिक संगठनों के बारे में जान सकेंगे।
- अनुसूचित जनजातियों के संवैधानिक स्तर की व्याख्या कर पायेंगे।
- अनुसूचित जनजातियों के विकास से संबंधित मुख्य पहलुओं का विवरण दे सकेंगे।
- अनुसूचित जनजातियों के विकास से संबंधित सेवाओं तथा उनके प्रतिनिधित्व के विषय में जान पायेंगे।

1.1 प्रस्तावना

2011 के जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या10,42,81,034 है। उसमें से पुरुष जनसंख्या5,24,09,823 तथा स्त्रियों की जनसंख्या 5,18,71,211 है। स्त्री 50 अनुपात कुल जनसंख्या में जनजातियों की8.6 प्रतिशत है। जनजातियों के विकास को देखने के पहले हमें उनके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखना अनिवार्य बन जाता है। जीवाश्मिक प्रमाणों के आधार पर ऐसा माना जाता है कि मानव का उद्भव भारत में लगभग 5 लाख वर्ष पुराना है। दिन-ब-दिन मानव जाति, प्रजातीय,

सांस्कृतिक एवं भाषायी दृष्टिकोण से निरंतर बढ़ती हुई सजातीयता की ओरबढने मे आता और प्राचीन संस्कृतियाँ समाप्त अथवा मृतप्रायः हो रही है। इस श्रेणी में आदिम, जनजातीय, आदिवासी, मूल निवासियों जैसे संभ्रमित कर देने वाले विविध नामों वाला मानवता का एक बड़ा अंश आता है। मानवशास्त्री, समाजशास्त्री, सामाजिक कार्यकर्ता, प्रशासक तथा ऐसे ही दूसरे लोग, जो जनजातियों तथा उनकी समस्याओं को सैद्धांतिक स्तर तथा व्यावहारिक आधार पर जानने के लिए जुड़े हैं।

भारत वर्ष में हजारों वर्षों से जंगलों व पहाड़ों में रह रही आदिम जनजातियों ने खुले मैदानों तथा सभ्यता के केंद्रों में बसे लोगों से अधिक संपर्क स्थापित किए बिना ही अपने अस्तित्व को बनाए रखा है। ऐसा माना जाता है कि जनजातीय लोग भारत के मूल निवासी है। विदेशीयों के लगातार आक्रमण तथा अधिक शक्तिशाली पड़ोसी समुदायों के निरंतर दबाव के कारण उन्हें जंगलों, पहाड़ों एवं अन्य दुर्गम क्षेत्रों की ओर जाने के लिए बाध्य होना पड़ा। अलग-अलग रहने के कारण इन समुदायों ने अपनी पृथक संस्कृति, परंपराएँ, भाषा एवं प्रशासनिक ढांचा बना लिया। कुछ जनजातियों ने एक स्थानपर बस कर व्यवस्थित रूप से खेती करना शुरू कर दिया तो कुछ जनजातिया स्थान बदल-बदल कर कृषि करते रहे तथा कुछ शिकार एवं भोजन संग्रहण इत्यादि पर निर्भर रहते थे। अंग्रेज़ उपनिवेशवादी अपनी आधुनिक प्रौद्योगिकी, नवीन उपागम तथा निहित स्वार्थों के साथ प्रकट हुए। उन्होंने व्यापारियों, साहूकारों तथा भूमि पर कब्जा करने वाले परदेसियों के प्रभाव को बढ़ाकर जनजातीय क्षेत्रों की ओर प्रवसन को सुविधाजनक बना दिया। इस कारण जनसंख्या के दबाव तथा जमीदारों द्वारा क्रूर शोषण तथा दमन ने किसानों तथा कारीगरों का आधिपत्य जनजातीय क्षेत्र में बढ़ गया। जनजातीय क्षेत्रों में जनजातीय व्यवस्था के भंग हो जाने की स्थिति ने जनजातियों में अठारहवीं शताब्दी के अंत में पहाड़ी लोगों का विद्रोह, मुंडा विद्रोह (1789-1901), संथाली विद्रोह (1855-56), भील विद्रोह(1879-80), बस्तर विद्रोह (1910-11) तथा गोंड विद्रोह (1940) सामने आते हैं। 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार जिन-जिन स्थानों पर जनजातियाँ बसी उनमें से अधिकतर को वर्जित अथवा आंशिक रूप में वर्जित क्षेत्र घोषित कर दिया गया। ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की विदाई तथा स्वतंत्र भारत के उदय के साथ देश के जनजातीय नागरिकोंको उचित न्याय व व्यवहार देने का वादा किया गया। इस प्रकार इनको कुछ मामलों में प्रगति में भागीदारी का विशेष अवसर भी प्राप्त हुआ। जनजाति की उन्नति हमारे संविधान निर्माताओं के विश्वास का प्रतीक था। क्या हम इस स्वप्न को प्राप्त कर सकें? इस प्रश्न के उत्तर को प्राप्त करने के लिए जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति की समीक्षा करने से पहले जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति की संकल्पना से अवगत होना होगा।

1.2 जनजाति की संकल्पना

नदीम हसनैन ने अपनी पुस्तक *'जनजातीय भारत में इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया'* में जनजाति को परिभाषा करते हुए कहते हैं कि, जनजाति, *समान नाम धारण करने वाले परिवारों का एक संकलन है*

जिनका समान बोली हों, एक ही भूखंड पर अधिकार का दावा करते हों अथवा दखल रखते हों, जो साधारणतया अंतर्विवाही न हों यद्यपि मूल रूप में चाहे वैसे रह रहे हों।

आक्सफोर्ड शब्दकोश में जनजाति को इस तरह परिभाषित किया गया है जनजाति, *विकास के आदिम अथवा बर्बर आचरण में लोगों का एक समूह है जो एक मुखिया की सत्ता स्वीकारते हों तथा साधारणतया अपना एक समान पूर्वज हों।"*

डी. एन. मजूमदार (1944) ने *Races and Cultures in India* में जनजाति के संबंधित विचार रखा है कि *"जनजाति क्षेत्रीय संबंध युक्त तथा अंतर्विवाही सामाजिक समूह है जिसके कार्यों में कोई विशेषज्ञता नहीं होती, जो जनजातीय अधिकारियों द्वारा शासित, वंशानुक्रम अथवा अन्य बोली में से जुड़े हुए, अन्य जनजातियों अथवा जातियों से सामाजिक दूरी को मान्यता देने वाले, अपने प्रति किसी प्रकार की सामाजिक असमानताओं को नहीं जोड़ते (जैसा कि जाति संरचना में होता है), जो जनजातीय परंपराओं में विश्वास रखते हैं तथा प्रथाओं का पालन करते हैं विदेशी स्रोतों के विचारों के प्राकृतिकीकरण में अनुदारता तथा सबसे अधिक सजातीयता और क्षेत्रीय अखंडता में विश्वास करते हैं।'*

नदीम हसनैन ने अपनी पुस्तक '*जनजातीय भारत*' में **एल. एम. लेविस** के परिभाषा का उल्लेख किया है- *"आदर्श रूप में, जनजातीय समाज आकार में छोटे, अपने सामाजिक, विधिक तथा राजनीतिक संबंधों की स्थानिक एवं कालिक परास (Temporal range) में प्रतिबंधित होते हैं तथा नैतिकता, धर्म तथा तदनुरूप आयामों की विश्व-दृष्टि रखते हैं। अभिलक्षणिकता की दृष्टि से भी जनजातीय भाषाएं अलिखित होती हैं, अस्तु संचार की सीमा काल और दोनों ही दृष्टियों से अवश्यम्भावी रूप से संकीर्ण हैं। इसके बावजूद जनजातीय समाज आलेखों में मितव्ययिता प्रदर्शित करते हैं तथा अपने में एक ऐसी अभिसंकुचन एवं आत्मनिर्भरता रखते हैं जिसका आधुनिक समाज में अभाव है।"*

जनजाति एक मानवशास्त्रीय संकल्पना है। कुछ लेखकों ने इसे जड़ात्मवादी अथवा आदिवासी कहा है। उपर्युक्त विद्वानों की परिभाषाओं से हम यह कह सकते है कि जिसमें समान्यतः कुछ समान गोत्र वाले समूह, गांव अथवा अन्य विशेष समूह समाविष्ट होते हैं। यह समान्यतः एक निश्चित क्षेत्र पर आधिपत्य, एक विशिष्ट बोली, एक विशिष्ट एवं समरूप संस्कृति के कारण पहचाने जाते हैं। यह या तो एक एकीकृत राजनीतिक संस्था है अथवा कम-से-कम बाहर वालों की तुलना में इनमें कुछ एकता की भावना होती है। इस तरह जनजाति एक क्षेत्रीय समूह होता है, जिसकी अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति एवं एकीकृत सामाजिक संगठन होता है।

रवीन्द्र नाथ मुखर्जी (1966) ने विभिन्न विद्वानों के परिभाषाओं के आधार पर अपने किताब *भारतीय सामाजिक संस्थायें* में जनजाति की कुछ विशेषताएँ बताए हैं, जो निम्नलिखित है-

1. एक जनजाति अनेक परिवारों के समूह का एक संकलन होता है;
2. प्रत्येक जनजाति की अपनी एक सामान्य भाषा होती है, जिसमें विचारों का आदान-प्रदान और पारस्परिक एकता व सामाजिक संगठन का विकास सरलता से हो सके;

ज्ञान शांति मैत्री

3. इनका एक सामान्य नाम होता है;
4. ये एक निश्चित भू-भाग पर रहती हैं;
5. एक जनजाति प्रायः 'अंतर्विवाही' होते हैं, ये अपनी जनजाति से बाहर विवाह नहीं करते। परंतु आधुनिक युग में यातायात के साधनों की उन्नति के साथ एक जनजाति का पड़ोसी जनजातियों से संपर्क बढ़ गया है, जिसके फलस्वरूप अनेक जनजातियाँ अपने जनजातीय समूह से बाहर भी शादी करते हैं;
6. एक जनजाति के सदस्यों में पारस्परिक आदान-प्रदान के कुछ सामान्य नियम और निषेध होते हैं जिनको प्रत्येक सदस्य को मानना पड़ता है, जिसके आधार पर इनके व्यवहार नियमित होते हैं;
7. एक जनजाति की एक सामान्य संस्कृति होती है और बाहर के समूहों के विरुद्ध इसके सदस्यों में एकता की भावना भी होती है;
8. प्रत्येक जनजाति का एक राजनैतिक संगठन होता है, इसलिए इसकी शासन-व्यवस्था भी अपनी होती है। इस शासन-व्यवस्था में प्रत्येक जनजाति का अपना जातीय मुखिया होता है। यह पद आनुवांशिक तौर पर चलता है। इस मुखिया को अपने कार्य में सहायता देने के लिए बड़ेबूढ़ों की एक परिषद भी होती है, जिसकी सलाह से मुखिया काम करता है।

आज देश के विभिन्न हिस्सों में रहने वाली जनजातियां सामाजिकआर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों पर पहुँच गई हैं। कुछ ही ऐसी बची हैं जो कि उपरोक्त परिभाषा की अपेक्षाओं को पूर्ण से रूप पूरा करती हैं। उदाहरण के लिए हमारे यहां अंडमाननिकोबार द्वीप समूह में रहने वाली 'ओंग एवं 'अंडमानी' जनजातियाँ हैं। बिहार की बिरहोर अथवा केरल की कट्टुनायकन है जो बहुत ही पिछड़ी हुई हैं और आज भी अपनी जीविका शिकार, मछल्ली पकड़ने एवं कंद, मूल, फल इकट्ठा कर चलाती हैं। दूसरी ओर मेघालय की ख़ासी या लुशाई जैसी जनजातियाँ है जो आर्थिक एवं शैक्षिक दोनों ही दृष्टि से पूरी तरह से विकसित हैं जैसे गुजरात की ढोडिया, राजस्थान की मीणा, पश्चिमी बंगाल की भूमिज। इस सांस्कृतिक एवं आर्थिक भिन्नता के बावजूद एक जनजाति का सामाजिक अस्तित्व एक हकीकत है। परिभाषा में बताई गई विशिष्टताओं के कारण जनजातियाँ सामान्य जनसंख्या से एकदम अलग दिखाई देती हैं।

1.3 जनजातीय सामाजिक संगठन

विवाह: जनजातीय समुदायों में विभिन्न प्रकार के विवाह प्रचलन में हैं। समान्यतः विवाह लड़के एवं लड़की के संबंधियों की सहमति से होता है। इस तरह के विवाह में विधि विधान से समारोह होते हैं और आमोद-प्रमोद होता है। लड़की के माता-पिता अगर विवाह पर अधिक व्यय करने की सामर्थ्य नहीं रखते तो वह अपनी लड़कियों को ऐसे लड़के के साथ जाने की अनुमति दे देते हैं जो उनसे विवाह करना चाहते हैं। विवाह संसार के अन्य भागों के समान ही जनजातियाँ अपनी सुविधानुसार अपने सामाजिक परिस्थितिकी एवं सांस्कृतिक परिस्थितिकी के अनुसारकरते हैं।

विवाह के प्रकार

एकविवाह (Monogamy)- विवाह का वह स्वरुप है, जिसमें एक पुरुष किसी एक समय में एक स्त्री से ही विवाह करता है। भारतीय जनजातियों का बहुसंख्यक वर्ग एकविवाह का पालन करता है। जैसे कमार जनजाति ऐसी अनेक जनजातियाँ एक विवाही हैं।

बहुविवाह (Polygamy)- अर्थात एक से अधिक व्यक्तियों से विवाह, बहुविवाह के दो पक्ष हैं:

1) बहुपत्नी विवाह (Polygamy)- अर्थात एक पुरुष का अनेक स्त्रियों से विवाह करना है। यह प्रकार नागा, गोंड, बैगा, टोडा, लुशाई, मध्य भारत की अधिकांश ऑस्ट्रीयाड जनजातियों में पाया जाता है।

2) बहुपति विवाह (Polyandry)- अर्थात एक स्त्री का एक से अधिक पुरुषों से विवाह करना है। भारतीय जनजातियों में प्रकार बहुपति प्रथा प्रचलित है। जब अनेक भाई एक ही स्त्रीसे विवाह करते हैं, - जैसे खासा और टोडा में है, हम भ्रातृत्व बहुपति प्रथा कहते हैं। दूसरा नीलगिरी पहाड़ियों के टोडा में पतियों में कोई निकट संबंध का होना आवश्यक नहीं है तथा पत्नी प्रत्येक पति के साथ कुछ समय बिताने के लिए जाती है। जब तक एक स्त्री अपने पतियों में से किसी एक के पास रहती है, दूसरों का उस पर कोई अधिकार नहीं होता। नायर बहुपति प्रथा इसी प्रकार की थी।

अधिमान्य विवाह तथा निषेध:- ऐसा देखा जाता है कि एक ओर समाज कुछ विशिष्ट नातेदारों अथवा उसी अंत:कुल अथवा गोत्र में यौन संबंधों अथवा वैवाहिक संबंधों को प्रोत्साहित करता है किंतु दूसरी ओर वह कतिपय अन्य स्वजनों में वैवाहिक संबंधों को प्रोत्साहित करता है। भारतीय जनजातियों में प्रचलित विवाह:

1) कज़िन विवाह- चचेरे, ममेरे, फुफेरे भाई बहन में विवाह

  1.1 क्रास कज़िन विवाह- भ्राता-भगिनि संतति विवाह

  1.2 पैरेलल कज़िन विवाह- समानांतर चचेरे-मौसेरे भ्राता भगिनि संतति विवाह

2) देवर विवाह (लेवीरेट)

3) साली विवाह (सारोरेट)

विधवा विवाह समान्यतः सभी जनजातीय समुदायों में प्रचलितहै। अगर एक विधवा अपने दिवंगत पति के भाई से विवाह करती है, तो इसे ‘नियोग’ कहते हैं।

युवागृह: भारतीय जनजातीय संस्कृति की एक विशेषता युवागृह का प्रचलन है। इसे भिन्नभिन्न जनजाति के लोग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते है। जैसे धमखुरिया, गिटिओरा, गोथुल इत्यादि। हम सभी जानते हैं कि समाजीकरण में सबसे पहली भूमिका परिवार की आती है। परिवार के बाद पड़ोसी की आती है, लेकिन जनजातियों में एक व्यक्ति किशोरावस्था प्राप्त कर लेता है, तो समुदाय के सदस्य होने के नाते उसे समुदाय की कला- संगीत, गीत, शस्त्र चालन इत्यादि के संबंध मेंउसे जानना ज़रूरी होता है। साथ ही समुदाय की सुरक्षा के उपायों को भी समझना उसके लिए अनिवार्य होता है। इसलिए जनजातीय गांवों में युवाओं को पारिवारिक जीवन, सामुदायिक जीवन, कलात्मक जीवन एवं सुरक्षात्मक जीवन व्यतीत करने

संबंधी ज्ञान अर्जित करने के लिए युवा गृहोंका निर्माण किया जाता है। यहां अविवाहित युवकों को आपस में बातचीत करने का पूरा अवसर मिलता है। गांव का कोई वरीय सदस्य उन पर नियंत्रण रखता है। उन्हें वह पारिवारिक एवं ग्राम जीवन के संबंध में शिक्षा देते हैं। यहां युवक गीतसंगीत, शस्त्र चालन इत्यादि का प्रशक्षिण पाते हैं। कुछ जनजातीय गांवों में युवकों तथा युवतियों के लिए एक ही युवागृह होता है। उसे द्विलिंगीय युवागृह(Bisexual Dormitory) के नाम से जाना जाता है तथा कुछ जनजातीय गांवों में युवकों एवं युवतियों के लिए अलगअलग युवागृह होता है। उसे एकलिंगीय युवागृह (Unisexual Dormitory) कहा जाता है।

गोत्र: गोत्र संगठन जनजातीय सामाजिक संगठन का एक विस्तृत रूप है। जनजातीय समाज का प्राथमिक सामाजिक संगठन परिवार होता है। परिवार से बड़ा सामाजिक संगठन वंश होता है तथा वंश से बड़ा सामाजिक संगठन गोत्र होता है। इस प्रकार गोत्र कई वंशोंएवं परिवारों का एक समूह होता है। यह एक बृहत रिश्तेदार समूह होता है। गोत्र के आधार पर ही वंशानुक्रम समूह का निर्माण होता है। वंशानुक्रम समूह- पितृपक्षीय, मातृपक्षीय या द्विपक्षीय हो सकता है। वंशानुक्रम समूह अपने को प्राकृतिक या काल्पनिक वस्तुओं से संबंधि दर्शाते हैं। ये लोग स्थानीय भी होते हैं या कई जगहों पर फैले होते हैं लेकिन एक ही पूर्वज के वंशज कहलाते हैं। ये लोग आपस में बहिर्विवाहीनियम का पालन करते हैं। इस प्रकार गोत्र के माध्यम से इनके बीच वैवाहिक संबंध नियंत्रितहोते हैं। इस प्रकार गोत्र जनजाति का बहिर्विवाही विभाजन होता है, जिसके सदस्य एक-दूसरे से आम संबंध द्वारा जुड़े रहते हैं। यह आम संबंध एक आम पूर्वज से वंशानुक्रम में विश्वास एक आम टोटम से उत्पत्ति या एक आम क्षेत्र में स्थित निवास स्थान के कारण विकसित होता है। गोत्र कई वंशों के योग से बना होताहै। इसमें वंशानुक्रम का निर्धारण अंततोगत्वा एक काल्पनिक पूर्वज से किया जाता है। यह काल्पनिक पूर्वज एक मानव व्यक्तिमानव व्यक्ति समान, पशु-पक्षी, पेड़-पौधा या निर्जीव हो सकता है।

परिवार तथा नातेदारी: जनजातीय भारत परिवारों की विविधता का प्रदर्शन करता है, क्योंकि विभिन्न जनजातियों में विभिन्न नियम तथा रिवाज पाए जाते हैं। परिवार के मुख्यत दो प्रकार हैं:

1) सरल अथवा केंद्रीय परिवार

2) बड़ा अथवा संयुक्त परिवार

स्त्री पुरुष तथा उनकी संतानों के आधारभूत समूह का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें परिवारों की सदस्य संख्या सीमित रहती है। बिरहोर, प्रिय, कोरवा, आदि जनजाति में पाया जाता है। यह 'केंद्र' निकट संबंधित नातेदारी के जुड़ने से विस्तृत हो जाता है तो इसे विस्तृत परिवार भी कहते है।

परिवार के अन्य अनेक प्रकार, पिता अथवा माता के अधिकारों के आधार पर भी भारतीय जनजाति में पाए जाते है। अधिकतर मामलों में विवाह के बाद पत्नी अपने पति के माता-पिता के साथ रहती है। इस व्यवस्था को पतृक (पेट्रीलोकल)कहते है। इसके उलट को मातृगृह निवासी(मेट्रीलोक) कहते हैं। 'ख़ासी' जनजाति में परिवार समान्यतः महिला के द्वारा बनाया जाता है। उसका पति अविवाहित बच्चे (लड़का

एवं लड़की) एवं उसकी विवाहित पुत्रियाँ तथा उनके पति भी उसके साथ होते हैं। इस तरह के परिवार में संपत्ति महिलाओं को वंशानुक्रम से मिलती है,जैसे माँ से पुत्री को, पुत्री से दोहती को और इस तरह से आगे चलता है। इस व्यवस्था को मातृ वंशानुक्रम व्यवस्था कहते हैं। पैतृक गृह निवासी के परिवारों में उत्तराधिकार पुरुष वंशानुक्रम से मिलता है जैसे पिता से पुत्र,पुत्र से पोते एवं इसी तरह आगे चलता है। इसे पितृसत्तात्मक कहते हैं।

आर्थिक संगठन: भारतीय जनजातियों का आर्थिक संगठन विश्व के अन्य भागों के आदिम आर्थिक संगठनों से भिन्न है। बुनियादी तौर पर, उनकी अर्थव्यवस्था, आधारभूत जीविका निर्वाह की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की दृष्टि से चलाई जाती है। प्रत्येक जनजाति विविध आर्थिक क्रियाओं के माध्यम से अपना जीवन व्यतीत करती हैं। उनके उत्पादन-उपभोग को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं:

1. खाद्य संग्रहकर्त्ता व शिकारी
2. 'झूम' कृषक
3. कृषक
4. पशुपालक
5. शिल्पकार
6. औद्योगिक श्रमिक

धार्मिक विश्वास: जनजातीय भारत धार्मिक विश्वासों तथा व्यवहारों का रंगीन परिदृश्य प्रस्तुत करता है जो उनकी सांस्कृतिक-पारिस्थितिक दशाओं के साथ उनकेसमायोजन कि अभिव्यक्ति है। 1940 के दशक के अंतिम वर्षों तक भारत में जनजाति धर्मों को विभिन्न जनगणना रिपोर्टों तथा साहित्यों में जीववाद की संज्ञा दी गई थी। प्रत्येक जनजाति समुदाय के अपने धार्मिक विश्वास होते हैं। वह दैवी शक्तियों, भूत-प्रेतों एवं आत्माओं केअस्तित्व पर विश्वास रखते हैं। आत्माओं का आशीर्वाद पाने के लिए कई अनुष्ठान किए होते हैं, क्योंकि आधिदैविक शक्तियों एवं आत्मा में विश्वास जनजातीय धर्म का एक महत्वपूर्ण पहलू है। अतः इसे जड़ात्मवाद कहते हैं। प्रकृति की पूजा करना जनजातियों के धर्म का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है। संथाल, मुंडा, होस एवं बिहार के बिरहोर सूरी को सिंग बोंगस कहते हैं जिसका अर्थ है 'सर्वशक्तिमान ईश्वर'। गारो सूर्य, चाँद, एवं सितारों को स्वर्ग में रहने वाली आत्माएँ मानते हैं। केरल के कणिक्कर भी सूर्य को भगवान के रूप में पूजते हैं। इसके लिए वह अपनी झोंपड़ियों के सामने एक दिया जला कर रखते हैं और कुछ फल एवं चावल भी साथ में रखते हैं।

जनजातीय लोग मानते है कि बादल कि गड़गड़ाहट, बिजली का चमकना, बाढ़, वर्षा इत्यादि सब आधिदैविक शक्तियों के द्वारा लाए जाते हैं। इसी तरह वह यह भी मानते है कि प्रत्येक वस्तुजैसे वन, नदी, पर्वत इत्यादि की अपनी एक संरक्षक आत्मा होती है। मृत्यु के पश्चात भी आत्मा की वजह से मनुष्य का अस्तित्व बना रहता है अथवा वह संतान के रूप में पुनः जन्म लेते हैं। वह मानते हैं कि मृत पूर्वजों की

आत्मा में शक्ति होती है, जो उनका भाग्य निर्धारित करती है। रोगों को आत्माओं का दुष्प्रभाव माना जाता है। जनजातीय लोगों की मानते हैं कि उपयुक्त धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा रोगों से छुटकारा मिल सकता है। साथ ही जनजातियों में औरतों को कुछ चीजें छूने की अनुमति नहीं होती और पवित्र स्थलों में उनका प्रवेश वर्जित होता है। इस पवित्र विश्वास को 'टैबू' कहते हैं। उनकी मान्यता है कि टैबू का टूटना उनकी जाति पर कहर ला सकता है। जैसे- ख़ीया स्त्रियों को हल छूने की अनुमति नहीं होती। वह छप्पर डालने का काम भी नहीं कर सकतीं। नीलगिरी पर्वतों में स्त्रियों को डेरी से संबंधित कोई भी काम करने नहीं देते, क्योंकि वह उत्पाद पवित्र माना जाता है।

शमनवाद: विश्व भर के जनजतीय और गैर-जनजातीय ग्रामीण समाजों में शमनवाद अथवा शमन (ओझागिरी) व्यापक रूप में दिखाई देता है। शमनवाद के अंतर्गत अंधविश्वास और झाड़फूँक के बहुत से तरीके शामिल है, जो इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि कोई रूह या आत्मा किसी अन्य जीवित व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करके तथा उस पर हवी होकर उससे तरह-तरह के कृत्य और अभिचार कर सकती है। इस प्रकार की क्रिया करने वालो को शमन या ओझा कहलाते है। अनुयायी लोगों के विश्वास के अनुसार 'शमन' या 'ओझा' लोगों के पास अति-मानुषी शक्तियाँ होती हैं, जो शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की होती हैं। अधिकांशतः उनका इस्तेमाल परोपकार के लिए किया जाता है। शमन या ओझा 'भूत-बयार','शे या आत्मा' आदि से परामर्श करके बाधा शांति का उपाय बताता है। उपायों में हवन, टोना-टोटका, पशुबलि आदि कोई भी अद्भुत कृत्य हो सकता है।

1.4 अनुसूचित जनजाति की संवैधानिक स्थिति

'अनुसूचित जनजाति' एक प्रशासनिक एवं संवैधानिक अवधारणा है। यह एक जनजातीय समुदाय की ओर इशारा करती है, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद342 के अंतर्गत सूचीबद्ध है। भारतीय संविधान के अनुसार केवल एक जनजाति को ही अनुसूचित जनजाति के नाम से उल्लेखित किया जा सकता है। किंतु संविधान में जनजाति शब्द को कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त किसी 'जनजाति' को अनुसूचित जनजाति घोषित करने के लिए किन सिद्धांतों एवं नीतियों को अपनाया जाए इसके विषय में भी संविधान के कुछ निर्दिष्ट नहीं है। संविधान के अनुच्छेद342 के अनुसार राष्ट्रपति, किसी राज्य या संघ क्षेत्र के संबंध में और जहां वह राज्य है वहां उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात लोक अधिसूचना द्वारा, उन जनजातियों या जनजाति समुदायों अथवा जनजातियों या जनजाति समुदाय के भागों या समूहों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए, यथास्थिति, उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में अनुसूचित जनजाति समझा जाएगा।

जनजाति को अनुसूचित जाति के रूप में पहचान करने में आने वाली कठिाइयों के बावजूद देश के नीति-निर्माता, योजना बनाने वाले और प्रशासक जनजतीय समुदायों की सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन की दशा से पूरी तरह परिचित थे, लेकिन सुरक्षात्मक एवं सुधारात्मक कदम उठाने से पूर्व ऐसे

जनजतीय समुदायों की एक सूची बनाना ज़रूरी था, जिन्हें अपनी उन्नति एवं विकास के लिए देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता है। इस तरह की पहिली सूची'आदिम जनजातियों' के नाम से 1931 में जारी की गई। बाद में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 के अंतर्गत भारत के लिए पिछड़ी जनजातियों की एक सूची निकली गई। संविधान के (अनुसूचित जनजातियाँ) आदेश 1950 के अंतर्गत अनुसूचित जनजातियों की सूची वास्तव में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 में 'पिछड़ी जनजातियों' को सम्मिलित करके बनाई गई।

जनजातियों की पहचान करते समय अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग के रूप में उल्लिखित होने योग्य जातियों के बारे में आयोग ने अपनी प्रश्नावली की प्रस्तावना में कहा है- समान्यतया सानुसूचित जनजातियों को इस तथ्य से भी पहचाना जा सकता है कि वह पर्वतों पर अकेले रहते हैं और अगर मैदानों में भी रहते हैं तो वहां भी अलग-अलग एवं बहिष्कृत अस्तित्व के साथ जीते हैं। वह सामान्य जन के साथ पूरी तरह घुले-मिले नहीं होते। अनुसूचित जनजातियाँ किसी भी धर्म की हो सकती हैं। वह अपने जीवन के तौर-तरीकों के कारण अनुसूचित जनजातियों की सूची में स्थान पाती हैं। इसी तरह अनुसूचित जनजातियों एव अनुसूचित जनजातियों की सूची में संशोधन के लिए बनी परामर्श समिति ने भी जिसे लोकूर कमेटी के नाम से जाना जाता है, आदिम विशेषताएं, विशिष्ट संस्कृति, भौगोलिक अलगाव, समाज से संपर्क स्थापित करने में झिझक एवं पिछड़ेपन को, अनुसूचित जनजाति के लिए पात्रता का मुख्य मानदंड माना है।

स्वतंत्र भारत का संविधान स्वीकृत हो जाने के बाद उनके विकास और कल्याण का दायित्व राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के माध्यम से लोकप्रिय सरकार को सौंपा गया। निदेशक तत्वों का अनुगमन करने के लिए अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याणार्थ विशेष अनुच्छेदों की व्यवस्था की गई है। इनमें से ज़्यादातर दोनों वर्गों के लिए एक समान हैं। किंतु ऐसे भी हैं, जो इन दोनों में से किसी एक पर लागू होते हैं। निम्नलिखित विषय-वस्तु के आधार पर इन संवैधानिक उपबंधों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है-

1) संरक्षण संबंधी उपबंध

2) विकास संबंधी उपबंध

संरक्षण संबंधी उपबंध, जो उनके विकास के लिए आवश्यक हैं, उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक शोषण तथा अन्याय से संरक्षण प्रदान करते हैं। वे निन्म्लिखित है

संरक्षण उपबंध

अनुच्छेद 14(4): सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक हितों को प्रोत्साहन- यद्यपि अनुच्छेद 15 द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव का निषेध किया गया है, फिर भी इसी अनुच्छेद के खंड 4 में एक छूट की व्यवस्था है, जिसके अनुसार राज्य को अनुसूचित जातियों

और जनजातियों एवं सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े नागरिकों की उन्नति एवं प्रगति के लिए कोई भी उपबंध बनाने का अधिकार दिया गया है। यह उपबंध अनुच्छेद 46 में परिकल्पित इस नीति के अनुरूप है कि राज्य को पूरी ज़िम्मेदारी के साथ कमज़ोर वर्गों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को प्रोत्साहित करना एवं सामाजिक अन्याय से उनकी रक्षा करना चाहिए।

अनुच्छेद 16(4): पदों और नौकरियों में आरक्षण और अनुच्छेद 19(5): के अंतर्गत राज्य अनुसूचित जनजाति के लोगों के हितों की रक्षार्थ विशेष प्रतिबंध लगा सकती है। चूँकि इस समाज के साथ सभी प्रकार की धोखेबाज़ी करना और इसका शोषण करना आसान है, इसलिए ऐसी व्यवस्थाएं भी की गई हैं, जिनके अंतर्गत ये लोग कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, अपनी निजी संपत्ति किसी को हस्तांतरित नहीं कर सकते।

अनुच्छेद 23: मानव के दुर्व्यवहार और बलात श्रम का प्रतिषेध आदि। इसके द्वारा मानव का दुर्व्यहार, बेगार और अन्य प्रकार के बलात श्रम प्रतिषिद्ध किए गए हैं। यह बहुत महत्वपूर्ण उपबंध है क्योंकि अनुसूचित जनजातियों का शोषण करना बड़ा आसान है और उनके लोगों को बंधुआ बनाया जा सकता है। वास्तव में, देश के जनजातियों के सदस्यों का एक बड़ा हिस्सा बंधुआ होने के कारण बहुत ही शोषण से पीड़ित एवं दुःखद जीवन बिता रहा है। जैसे- हम देखते है कि आंध्र प्रदेशमें गोथी, बहटी प्रथा से कोया डोरा, कोंडारेड्डी कुमार जनजाति और भारत के अन्य जगह पर कातिया, हाली, बेट, सगड़ी, जीथा नामक प्रथा से विभिन्न जनजातियां प्रभावित है।

अनुच्छेद 29: सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार29(2) अनुच्छेद 15 की धारा 4 से नियंत्रित है। प्रथम संशोधन अधिनियम 1951 द्वारा संविधान में सम्मिलित। इसने अनुच्छेद 15 और 29 को अनुच्छेद 16(4), 46 और 340 के अनुकूल बना दिया है। इस प्रकार राज्य द्वारा सरकारी शैक्षिक संस्थानों में पिछड़े वर्ग के लिए पदों का आरक्षण संविधान सम्मत हो गया है। अनुच्छेद29 के अनुसार भारतीय नागरिकों के किसी भी ऐसे अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार है। यह अनुच्छेद अनुसूचित जनजातियों को अपनी भाषाओं और संस्कृतियों को बनाए रखने के लिए संरक्षण प्रदान करता है। राज्य द्वारा कोई कानून बनाकर उन पर कोई संस्कृति या भाषा लादी नहीं जा सकती है।

अनुच्छेद 46: अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य कमज़ोर वर्गों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को प्रोत्साहित करना, अनुच्छेद 244: अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन, अनुच्छेद 275: कुछ राज्यों को केंद्र द्वारा अनुदान, अनुच्छेद 330: लोकसभा में (हाउस ऑफ दि पीपल) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों का आरक्षणअनुच्छेद 332: अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए राज्यों के विधान सभाओं में सीटों का आरक्षण,अनुच्छेद 335: अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के नौकरी एवं पदों के लिए दावे, अनुच्छेद 338: अनुसूचित

जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष अधिकार इत्यादि, अनुच्छेद 339: अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण पर केंद्र का नियंत्रण।

अनुच्छेद 164: बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश के राज्यों में जनजातियों के कल्याण के भारसाधक मंत्री की नियुक्ति। इन राज्यों में जनजाति के लोगों की खासी आबादी है और जनजाति के कल्याण के लिए विशेष रूप से एक मंत्री की व्यवस्था, जनजाति के हितों की सुरक्षा के लिए संविधान निर्माताओं की चिंता की साक्षी है।

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए एक विशेष अधिकारी की व्यवस्था है जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करता है। इस विशेष अधिकारी का कर्तव्य है कि वह अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान के अधीन उपबन्धित रक्षा के उपायों से संबंधित सभी विषयोंका अन्वेषण करे। वह रक्षा के उन उपायों के कार्यकरण के संबंध में, ऐसे अंतराल पर, जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे। राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन में रखवाएगा। यह विशेष अधिकारी 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातिआयुक्त' कहलाता है। 65 वें संशोधन के बाद इसके जगह पर अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों का राष्ट्रीय आयोग गठित हो चुका,लेकिन 2004 में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए अलग-अलग आयोग बनाए गए है।

अनुच्छेद 339(1): राष्ट्रपति राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में प्रतिवेदन देने के लिए एक आयोग की नियुक्ति, आदेश द्वारा किसी भी समय कर सकेगा और इसे संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ती पर करेगा। स्व श्री यू. एन. ढेबर के अध्यक्षता में 28 अप्रैल 1960 में 'अनुसूचित क्षेत्र एवं अनुसूचित जनजाति आयोग नियुक्त किया गया था इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन 1961 में प्रस्तुत किया था। 2003 में इसी प्रकार का एक दूसरा आयोग श्री डी एस. भूरिया की अध्यक्षता में गठित किया गया है।

अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक विकास के उद्देश्यसे भारतीय संविधान में की गई व्यवस्थाएं मुख्यतः अनुच्छेद 275: के अंतर्गत संविधान उपबंधों की पूर्ति के लिए राज्यों को संघ से अनुदान मिलने की व्यवस्था है। अनुच्छेद 339(2) की स्थापना है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी ऐसे निर्देश देने तक होगा, जो उस राज्य की अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए निर्देश में आवश्यक बताई गई स्कीमों के बनाने और उनके निष्पादन के बारे में है।

पाँचवीं और छठी अनुसूचियाँ

संविधान के दसवें भाग में अनुच्छेद 244 और 244(क) के अंतर्गत अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन से संबंधित व्यवस्थाएं हैं। संविधान में अनुसूचित क्षेत्रों और जनजाति क्षेत्रों का एक विशिष्ट अर्थबोध है। अनुसूचित क्षेत्रों का शासन पाँचवीं अनुसूची के अनुसार होता है। जनजाति क्षेत्रों का शासन छठी अनुसूची के आधार पर होता है।

ज्ञान शांति मैत्री

आंध्र प्रदेश,बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश एवं राजस्थान आदि राज्यों में 'अनुसूचित क्षेत्र' घोषित किया गए (2013 में भारत के 9 राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र हैंआंध्र प्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओड़िशा, हिमाचल प्रदेश एवं राजस्थान)। पांचवी अनुसूची के अनुसार अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन की योजना में केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारों में उत्तरदायित्व का विभाजन किया गया है। राज्य सरकार को ऐसे क़ानूनों की जांचपरख की ज़िम्मेदारी दी गई है, जो कि जनजातीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं हैं। वे जनजातियों को सूदखोर महाजनों के शोषण से बचाने एवं जनजातीय भूमि के संरक्षण के लिए आवश्यक नियमों को बनाने के लिए भी ज़िम्मेदार हैं। वे अपनी सीमा के अंदर रहने वाली जनजातियों के कल्याण के लिए योजनाएं भी कार्यान्वित करते हैं। केंद्रीय सरकार अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के लिए दिशा निर्देश तैयार करती है। यह प्रशासन के स्तर में सुधार लाने एवं जनजातीय समुदायों का जीवन स्तर उठाने के लिए आवश्यक राशि भी उपलब्ध करता है। संघ सरकार को अनुसूचित जनजातियों के कल्याण से संबंधित मुद्दों पर राज्य सरकारों को आवश्यक निर्देश देने का भी अधिकारहै।

असम, मेघालय, मिज़ोरम और त्रिपूरा आदि राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र है। वहां के राज्यपालों को पांचवी अनुसूची के अनुसार केंद्र अथवा राज्य क़ानूनों में संशोधन कर उन्हें जनजातीय क्षेत्रों में लागू करने योग्य बनाने का अधिकार दिया गया है। राज्यपाल जनजातीय समुदायों की देखभाल और संरक्षण के लिए आवश्यक अधिनियमों का निर्माण भी कर सकते हैं। पांचवी अनुसूची के अनुच्छेद5 के अनुसार राज्यपाल को अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राष्ट्रपति को एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है। पांचवी अनुसूची के अनुच्छेद4 के अनुसार जिन राज्यों में परिषद बनाई गई हैं अनुसूचित क्षेत्र हैं अथवा जहां जनजातीय जनसंख्या का व्यापक केंद्रीकरण है। जनजातीय परामर्श समितियां वहां इनका कार्य संबंधित राज्यों को अनुसूचित जातियों के कल्याण एवं संरक्षण से संबंधित विषय पर सलाह देना है। समिति के कम-से-कम ¾ सदस्य अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधि होते हैं, जो कि राज्य की विधानसभा के सदस्य होते हैं अथवा जनजातीय समुदायों के अन्य प्रतिनिधियों में से लिए जाते हैं।

नागालैंड, असम, और मणिपूर के जनजाति क्षेत्रों व पर्वतीय क्षेत्रों से संबंधित विशेष उपबंध

अनुच्छेद 371-क (नागालैंड)- इस अनुच्छेद के अनुसार ऐसा कोई भी अधिनियम, जो (क) नागाओं का धार्मिक या सामाजिक प्रथाओं, (ख) उनकी परंपरागत विधि और प्रक्रिया, (ग) उनकी परंपरागत विधि के अनुसार विनिश्चित होने वाले दीवानी एवं फ़ौजदारी के न्यायप्रशासन और (घ) भूमि एवं उसके संपत्ति स्त्रोतों के स्वामित्व एवं अंतरण से संबंधित है, नागालैंड राज्य पर तब तक लागू नहीं होगा जब तक नागालैंड की विधानसभा विशेष संकल्प द्वारा वैसा विनिश्चित नहीं कर देती।

अनुच्छेद 371-ख (असम)- राष्ट्रपति के आदेश द्वारा असम राज्य की विधानसभा की एक समिति के गठन और कृत्यों के लिए उपलब्ध कर सकेगा। यह समिति जैसा कि छठी अनुसूची में बताया गया है, जनजाति क्षेत्रों से निर्वाचित वहां कि विधानसभा के सदस्यों से तथा उसी विधानसभा के उतने अन्य

सदस्यों से मिलकर बनेगी, जीतने राष्ट्रपति के आदेश में विनिर्दिष्ट किए गए है।इस समिति की व्यवस्था का उद्देश्य राज्य के स्तर पर जनजाति समुदाय के हितों का संरक्षण और उसकी देखरेख करना होता है।

अनुच्छेद 371-ग (मणिपूर)- इस अनुच्छेद के अंतर्गत राष्ट्रपति के आदेश से एक समिति का गठन और कृत्यों के संयोजन की व्यवस्था है। राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों से निर्वाचित विधानसभा के सदस्य इस समिति के सदस्य होते हैं। राज्यपाल को प्रतिवर्ष या जब कभी राष्ट्रपति वैसी अपेक्षा करें, राष्ट्रपति को मणिपूर राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में प्रतिवेदन देना होता है। संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उक्त क्षेत्रों के बारे में राज्य को निर्देश देने तक है।

जनजातीय क्षेत्रों को सामाजिक-राजनीतिक स्वायत्तता: संविधान के अनुच्छेद 244(2) एवं 275(1) से संबद्ध छठी अनुसूची में असम के जनजातीय क्षेत्रों को पर्याप्त सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्वायत्तता प्रदान की गई है। यह स्वतत्तता जिलों एवं स्वायत्त क्षेत्रों को क्रमशः जिला परिषदों एवं क्षेत्रीय परिषदों के निर्माण के माध्यम से प्राप्त है। ये परिषदें भूमि आबंटन, वनों एवं नहरों के जल के प्रयोग, झूम खेती के नियमन, ग्राम अथवा नगर समितियों की स्थापना एवं उनकी शक्तियों, विवाह एवं अन्य सामाजिक रस्मों के संबंध में कानून बनाती हैं। परिषदें सामाजिक रस्मों के अनुसार आल इंडिया सिविल एंड पैनल कोड में संशोधन करके न्याय व्यवस्था को भी संचालित करती हैं। वे प्राइमरी विद्यालय स्थापित कर सकती हैं एवं भूमि लगन का निर्धारण औरउसका संग्रह करके तथा कर लगाकर अपने धनकोष में वृद्धि कर सकती हैं। परिषदें खनिज उत्पादन के लिए लाइसेन्स भी जारी करती हैं। जिला परिषदें ऋण के लेन-देन द्वारा गैर-जनजातीय लोगों और अन्य व्यावसायिक गतिविधियों को भी व्यवस्थित कर सकती हैं। भारत के जनजातीय लोगों के गांव अथवा गांवों के समूह में पारंपरिक परिषदें हैं। इसमें कुछ परिषदों की बैठकों की अध्यक्षता जनजातियों के निर्वाचित मुखिया करते हैं, जबकि अन्य में वंशानुगत मुखिया समिति की बैठकों का संचालन करते हैं। नागालैंड में मान्यता प्राप्त ग्राम परिषदें, प्रदेश परिषदें एवं जनजातीय परिषदें हैं, जिनके पास प्रशासन और विकास एवं प्रचलित कानूनों तथा उनके व्यवहार के उल्लंघन से संबंधित मामलों में व्यापक शक्तियाँ हैं।

1.5 राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग

अनुसूचित जनजाति के लिए अलग आयोग: 1990 के 65वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए1992 में राष्ट्रीय जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना की गई। संविधान के अनुच्छेद338 के द्वारा इस आयोग की स्थापना अनुसूचित जाति, जनजाति को संविधान या अन्य विधियों के अंतर्गत संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य सेकी गई है।

भौगोलिक सांस्कृतिक रूप से अनुसूचित जनजातियाँ अनुसूचित जातियों से भिन्न हैं तथा उनकी समस्याएँ भी अनुसूचित जातियों से भिन्न हैं।1999 में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण एवं विकास के कार्यों को गति देने के लिए एक नए मंत्रालय की स्थापना की गई। यह महसूस किया गया कि अनुसूचित जनजातियों से संबंधित सभी योजनाओं में समन्वय स्थापित करने के लिए जनजातीय मंत्रालय का होना

आवश्यक है। चूंकि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के लिए इस भूमिका को निभाना प्रशानिक दृष्टि से संभव नहीं था। इसलिए अनुसूचित जनजातियों के हितोंकी अधिक प्रभावी तरीके से रक्षा के लिए यह प्रस्ताव रखा गया कि राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग एवं जनजाति आयोग का विभाजन कर दिया जाए तथा दोनों के लिए पृथक-पृथक आयोगों की स्थापना की जाए। इसकी स्थापना अंततः 2003 के 89वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा की गई इसके लिए संविधान के अनुच्छेद में संशोधन किया गया तथा उसमें एक नया अनुच्छेद 338-क जोड़ा गया और वर्ष 2004 से राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग अस्तित्व में आया। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की तरह राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग भी एक संवैधानिक निकाय है। इस आयोग में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष एवं तीन अन्य सदस्य हैं। वे राष्ट्रपति के आदेश द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। उनके सेवा शर्तें एवं कार्यकाल भी राष्ट्रपति द्वारा ही निर्धारित किए जाते है।

आयोग के कार्य निम्नानुसार हैं:

1. अनुसूचित जनजातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षापायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण कर और उन पर निगरानी रखे तथा ऐसे रक्षापायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करे।
2. अनुसूचित जनजातियों को उनके अधिकारों और रक्षापायों से वंचित करने के संबंधमें विनिर्दिष्ट शिकायतों की जांच करे।
3. अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग ले और उन पर सलाह दे तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास की प्रगति का मूल्यांकन करे।
4. उन रक्षापायों के कार्य कारण के बारे में प्रतिवर्ष और ऐसे अन्य समयों पर, जो आयोग ठीक समझे, राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करे।
5. ऐसी रिपोर्ट में उन उपायों के बारे में, जो उन रक्षापायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किए जाने चाहिए तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायों के बारे में सिफ़ारिश करे;
6. अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और विकास तथा उन्नयन के संबंध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करे, जो राष्ट्रपति, संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नियम द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

2005 में राष्ट्रपति ने अनुसूचित जनजातियों की सुरक्षा, कल्याण तथा विकास और उन्नति के लिए आयोग के निम्नलिखित अन्य कार्य निर्धारित किए:

I. वन क्षेत्र में रह रही अनुसूचित जनजातियों को लघु वनोपज पर स्वामित्व का अधिकार देने संबंधी उपाय।

ज्ञान शांति मैत्री

II. कानून के अनुसार जनजातीय समुदायों के खनिज तथा जल संसाधनों आदि पर अधिकार को सुरक्षित रखने संबंधी उपाय।

III. जनजातियों के विकास तथा उनके लिए अधिक वहनीय आजीविका रणनीतियों पर कम करने संबंधी उपाय।

IV. विकास परियोजनाओं द्वारा विस्थापित जनजातीय समूहों के लिए सहायता एवं पुनर्वास की प्रभावकारिता बढ़ाने संबंधी उपाय।

V. जनजातीय लोगों का भूमि से बिलगाव रोकने के उपाय तथा उन लोगों का प्रभाव पुनर्वासन करना, जो पहले ही भूमि से विलग हो चुके हैं।

VI. जनजातीय समुदायों की वन सुरक्षा तथा सामाजिक वानिकी में अधिकतम सहयोग एवं संलग्नता प्राप्त करने संबंधी उपाय।

VII. पेसा अधिनियम, 1996 का पूर्ण कार्यान्वयन सुनिश्चित करने संबंधी उपाय।

VIII. जनजातियों द्वारा झूम खेती के प्रचलन को कम करने तथा अंततः समाप्त करने संबंधी उपाय जिसके कारण उनके लगातार अशक्तिकरण के साथ भूमि तथा पर्यावरण का अपरदन होता है।

आयोग का प्रतिवेदन

आयोग अपना वार्षिक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है। यदि आवश्यक समझा जाता है तो समय से पहले भी प्रतिवेदन दे सकता है। राष्ट्रपति ऐसे सभी रिपोर्टों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और उनके साथ संघ से संबंधित सिफ़ारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्थापित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफ़ारिश अस्वीकृत है तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा। जहां कोई ऐसी रिपोर्ट या उसका कोई भाग, किसी ऐसे विषय से संबंधित है जिसका किसी राज्य सरकार से संबंध है तो ऐसी रिपोर्ट की एक प्रति उस राज्य के राज्यपाल को भेजी जाएगी, जो उस राज्य के विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा और उसके साथ राज्य से संबंधित सिफ़ारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्थापित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफ़ारिश अस्वीकृत है तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा।

आयोग की शक्तियां

आयोग को अपनी कार्यविधि को विनियमित करने की प्राप्त है।, जो आयोग को किसी विषय का अन्वेषन करते समय या किसी परिषद के बारे में जांच कारते समय, विशिष्टता निम्नलिखित विषयों के संबंध में, वे शक्तियां होगी, जो वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को हैं:-

- ❖ भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को समन करना और हाज़िर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना।
- ❖ किसी दस्तावेज़ को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना।

- शपथ पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना।
- किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की अध्यपेक्षा करना।
- साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना।
- कोई अन्य विषय, जो राष्ट्रपति, नियम द्वारा अवधारित करे।

संघ और प्रत्येक राज्य सरकार, अनुसूचित जनजातियों को प्रभावित करने वाले सभी महत्वपूर्ण नीतिगत विषयों पर आयोग से परामर्श करेगी।

1.6 जनजातीय विकास कौशल एवं नीतियां

आज़ादी के बाद हमारे देश में विकास कौशल एवं नीतियों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन पंचवार्षिक योजना के रूप में किया गया। प्रत्येक पंचवार्षिक योजना में सामान्य विकास के साथ-साथ जनजातीय विकास के लक्ष्य निर्धारित किया गया। उन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु योजनाओं सूत्रीकरण एवं क्रियान्वयन को निम्नलिखित रूप से है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना(1951-1956) इस योजना में जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य, गृह तथा आवागमन विकास का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस योजना अवधि में जनजातीय कल्याण हेतु 174.7 करोड़ की राशि प्रदान की गई थी। यह राशि इस योजना अवधि में खर्च की जाने वाली कुल राशि का 0.08 प्रतिशत थी। इस योजना अवधि में जनजातीय विकास प्रतिवेदन प्राप्त करने के लिए कई आयोगों का गठन किया गया था। इसी योजना काल में सामुदायिक विकास कार्यक्रम लागू किए गए थे जिनके माध्यम से कृषि विकास, यातायात सुविधा शिक्षा स्वास्थ्य एवं सामाजिक कल्याण तथा कृषि सहायक उद्योग व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया था।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना(1956-1961) इस योजना अवधि में आर्थिक विकास के उपर विशेष बल दिया गया था। इस योजना अवाधि में कुल 672 करोड़ रुपये की राशि खर्च की गई थी 8.86 करोड़ रुपये जनजातीय विकास के उपर खर्च किए गए थे। यह राशि कुल राशि का 0.67 प्रतिशत था। इस योजना अवधि में जनजातीय विकास हेतु 43 बहुउद्देशीय जनजातीय प्रखंड़ की स्थापना की गई थी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-1966) इस पंचवर्षीय योजना में संपूर्ण देश में415 जनजातीय विकास प्रखंड़ों की स्थापना की गई थी। इस योजना का कुल व्यय 8577 करोड़ रुपये था, जिसमें 52.55 करोड़ रुपये 0.61 प्रतिशत जनजातीय विकास के उपर खर्च किए गए थे।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना(1969-1974) इस योजना अवधि में जनजातीय विकास हेतु जनजातीय विकास एजेंसियों की स्थापना की गई थी। इस योजना अवधि में कुल 15,902 की राशि व्यय की गई, जिसमें 75.00 करोड़ रुपये 0.47 प्रतिशत जनजातीय विकास के उपर खर्च किए गए।

पंचवर्षीय योजना(1974-1979) इस योजना अवधि में जनजातीय उपयोजना नामक एक अलग योजना की शुरुआत की गई। जनजातीय विकास के लिए इस उपयोजना के अंतर्गत 500 करोड़ की राशि प्रदान की गई थी।

छठी पंचवर्षीय योजना(1979-1984) इस योजना अवधि में 50 प्रतिशत आबादी जनजातीय बहुल क्षेत्रों को जनजातीय उपयोजना में शामिल किया गया। जब पंचम पंचवर्षीय योजना में 75 प्रतिशत आबादी वाले जनजातीय बहुल क्षेत्र को जनजातीय उपयोजना के अधीन लाया गया था। इस योजना में जनजातीय विकास के लिए शिक्षा स्वास्थ्य रोज़गार कृषि बागवानी पशुपालन इत्यादि कार्यक्रम आरंभ किए गए। बैंक तथा लैंप्स के माध्यम से ऋण की सुविधा प्रदान की गई। नई छठी पंचवर्षीय योजना में जनजातीय उपयोजना के कुल खर्च को 5000 हजार करोड़ रुपये कर दिया गया।

सप्तम पंचवर्षीय योजना(1985-1990) इस पंचवर्षीय योजना अवधि में आई. टी. डी. पी., माडा पाकेटस, प्रीमिटिव ट्राईबल ग्रुब्स तथा विस्थापित जनजातीय जनसंख्या के विकास के उपर विशेष बल दिया गया। इस योजना अवधि में जनजातीय उपयोजना के उपर 756 करोड़ रुपये व्यय किए गए थे।

अष्टम पंचवर्षीय योजना(1992-1997) इस पंचवर्षीय योजना में जनजातीय उपयोजना के अंतर्गत चलाए जा रहे कल्याण कार्यक्रमों जारी रखा गया। इस योजना अवधि में कुल योजना व्यय के 9.47 प्रतिशत जनजातीय उपयोजना के उपर खर्च किए गए थे।

नवम पचंवर्षीय योजना(1997-2002) इस पंचवर्षीय योजना में जनजातीय उपयोजना के अंतर्गत चलाए जा रहे कल्याण कार्यक्रमों को जारी रखा गया है। पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से विकास पर ज़ोर दिया गया है। इस योजना अवधि में जनजातीय उपयोजना के उपर कुल योजना मद का 7.47 प्रतिशत खर्च करने का लक्ष्य रखा गया था।

जनजातीय विकास का परिवर्तित प्रादर्श

आज़ादी प्राप्ति के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में जनजाति विकास के लिए अपनाए गए प्रादर्शों में परिवर्तन होते रहा है। इसके परिणामस्वरुप जनजातीय विकास में संबंधित समय के साथ कई प्रादर्श हमारे आते है। उन प्रादर्शों के संबंध में यहां जानकारी देना युक्तिसंगत लगाता है। जनजातीय विकास से संबंधित विभिन्न परिवर्तन प्रादर्श निम्नलिखित है:

- सामुदायिक विकास योजना
- विशिष्ट बहुउद्देशीय जनजातीय प्रखंड
- जनजातीय विकास प्रखंड
- जनजातीय विकास एजेंसियां
- समेकित जनजातीय विकास परियोजना
- माडा पाकेटस

- क्लस्टर्स
- आदिम जनजातीय समूह

जनजातीय विकास एवं कल्याण योजनाएं

जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा चलाए जा रहे जनजातीय विकास योजनाएं निम्नलिखित हैं

केंद्रीय क्षेत्र योजनाएं- केंद्रीय क्षेत्र योजनाओं के उपर शतप्रतिशत वित्तीय सहायक राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों को भारत सरकार उद्यम द्वारा दिया जाता है। केंद्रीय क्षेत्र योजनाओं के अधीन निम्नलिखित के लिए शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

- जनजातीय उपयोजना को विशेष केंद्रीय सहायता
- संविधान के अनुच्छेद 275(1) के अधीन प्रथम प्रबंध हेतु अनुदान
- राज्य जनजातीय विकास सहकारी निगमों के लिए सहायता अनुदान
- ट्राइफेड को मूल्य समर्थन व्यापार
- ट्राइफेड के शेयर पूंजी में निवेश
- जनजातीय गांवों में अन्न बैंक की स्थापना

केंद्रीय प्रायोजित योजनाएं:

प्रायोजित योजनाओं के उपर राज्यों एवं केंद्र शामिल प्रदेशों को वित्तीय सहायता 50:50 प्रतिशत के आधार दी जाती है। इन योजनाओं के उपर केंद्र50 प्रतिशत खर्च करता है तथा राज्य को 50 प्रतिशत खर्च करना पड़ता है। 50:50 प्रतिशत सहभागिता के आधार पर जनजातीय विकास के लिए निम्नलिखित योजनओं का क्रियान्वयन किया गया है।

- अनुसूचित जनजातीयों के लिए बालिका छात्रावास का निर्माण
- अनुसूचित जनजातियों के लिए बालक छात्रावास का निर्माण
- जनजातीय उपयोजना क्षेत्र के अंतर्गत आश्रम स्कूलों की स्थापना
- अनुसंधान एवं प्रशिक्षण

केंद्रीय क्षेत्र परियोजना, जिसमें राज्यों केंद्र शासित प्रदेशों एवं गैरसरकारी संगठनों को शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इस प्रकार की सहायता राशि निम्नलिखित योजनाओं के लिए प्रदान की जाती है:

- जनजातीय क्षेत्रों में व्यवसाय आधारित प्रशिक्षण
- जनजातीय क्षेत्रों में महिला साक्षरता विकास हेतु निम्न साक्षर पाकेट्स में शैक्षणिक संकुल
- आदिम जनजातीय समूहों (PTG) का विकास

केंद्रीय परियोजना, जिसमें 90 प्रतिशत से शत-प्रतिशत सहायता स्वयंसेवी संगठनों को प्रदान की जाती हैं इसके अंतर्गत वैसे स्वयं सेवी संगठनों को90 प्रतिशत से लेकर 100 प्रतिशत तक वित्तीय सहायता दी जाती हैं, जो अनुसूचित जनजातियों कल्याण के लिए कार्य करते हैं।

वे केंद्रीय क्षेत्र केद्र प्रायोजित योजनाएं, जिन्हें सामजिक न्याय एवं आधिकारिता मंत्रालय से दो शाखाओं में बांटकर चलाई जा रही है। इस प्रकार के कल्याण योजनाएं निम्नलिखित है

- अनुसूचित जनताति के विद्यार्थियों को मैट्रिक के बाद भारत में पढ़ने के लिए छात्रवृति
- अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को विदेशों में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति
- अनुसूचित जनजाति के छात्र/छात्राओं के लिए पुस्तक
- अनुसूचित जनजाति के लिए कोचिंग एवं सहबद्ध योजना
- राज्य अनुसूचित जनजातीय विकास निगमों को सहायता
- अनुसूचित जनजाति के लिए मेधा उन्नयन परियोजना

1.7 सारांश

इस इकाई में हमने अनुसूचित जनजातियों के विकास के मूलभूत पक्षों पर चर्चा की। विभिन्न विकास प्रयासों के स्वरूप एवं विषय वस्तु पर विचार करने से पूर्व हमने जनजाति काअर्थ, विशेषताएँ, उनके सामाजिक संगठन एवं संवैधानिक स्थिति आदि पर विस्तार से बात की है। हमने यह भी देखा है कि जनजातियों के विकास में वृद्धि के लिए एक राष्ट्रीय जनजाति आयोग और जनजातियों के विकास से संबंधित नीतियों एवं कार्यक्रमों को भी देखा है।

प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ताओं को इन जनजातियों के अधुनातन जीवन से समंजन हेतु प्रयत्नशील होना चाहिए और समाज कार्य संबंधी विभिन्न विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के विभागों के अध्यापक एवं छात्रों को इनके बीच कार्य करना चाहिए, ताकि समाज कार्य के छात्रों को इनकी संस्थाओं, जैसे-विवाह, परिवार, धर्म, जादू, युवागृह, संस्कृति, गोत्र, गोत्रवाद, नातेदारी इत्यादि के विषय में पूरी जानकारी हो, ताकि इन्हें इनके बीच कार्य करते समय किसी प्रकार की परेशानी न आए। ऐसे कार्यकर्ताओं की उपलब्धि से निश्चय ही न्यायपूर्ण जीवन की संभावनाएँ बढ़ेगी औरये जनजातियाँ अपनी मौलिकता की अक्षुणता के साथ-साथ अभिनव जीवन और समाज से अधिकाधिक अभिभूत हो सकेंगी, इनमें आर्थिक शोषण कमतर होगा, साक्षरता एवं शिक्षा बढ़ेगी, स्वास्थ्यकर प्रवृत्तियाँ विकसित होंगी।

1.8 बोध प्रश्न

1. जनजाति अवधारणा को परिभाषित करके उनकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण और उत्थान के लिए संविधान में किए गए उपायों की चर्चा कीजिए।

3. अनुसूचित जनजातियों के लिए भारतीय संविधान के पाँचवी और छठी अनुसूची के प्रावधानों की विवेचना कीजिए।
4. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के कार्यों को स्पष्टकरें।
5. जनजातियों के सामाजिक संगठनों की विवेचना करें।
6. अनुसूचित जनजातियों के विकास से संबंधित मुख्य पहलुओं का विवरण दें।

1.9 संदर्भ एवं अन्य पुस्तकें

हसनैन, नदीम. (2004).*जनजातीय भारत*. नई दिल्ली: जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्युट्रस

उपाध्याय वि. शं. (2002). *जनजातीय विकास*.भोपाल: मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी

पाण्डेय, गया. (2007). *भारतीय जनजातीय संस्कृति*. नई दिल्ली: कंसैप्ट पब्लिशिंग कंपनी

हसनैन, नदीम. (2009). *समकालीन भारतीय समाज एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य*.लखनऊ: भारत बुक सेंटर.

लक्ष्मीकांत, एम. (2015). *भारत की राजव्यवस्था*. नई दिल्ली: एमसीग्रव हिल एडुकेशन प्राइवेट लि..

चौधरी, बी. (1982). *ट्राइबल डेवलमेंट इन इडिया, प्रोब्लमस एंड प्रोस्पक्ट्स* दिल्ली: इंटर इंडिया पब्लिकेशन.

सिंह के. एस. (1985).*ट्राइबल सोसाइटी डेवलमेंट इन इडिया*. दिल्ली: मनोहर पब्लिकेशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 2 ग्रामीण विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 विकास की अवधारणा
2.3 ग्रामीण विकास की पृष्ठभूमि
2.4 ग्रामीण विकास की संकल्पनाएं
2.5 ग्रामीण विकास की परियोजनाएं और कार्यक्रम
2.6 ग्रामीण विकास की कार्यनीतियां
2.7 प्रशानिक प्रणाली
2.8 पंचायती राज
2.9 सारांश
2.10 बोध प्रश्न
2.11 संदर्भ एवं अन्य पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- विकास की अवधारणा को समझकर ग्रामीण विकास का मूल्यांकन कर पाएंगे।
- ग्रामीण विकास की पृष्ठभूमि की रेखांकित कर पाएंगे।
- ग्रामीण विकास की महत्वपूर्ण अवधारणाएं स्फ्ट कर सकेंगे।
- ग्रामीण विकास की कार्यनीतियों के नियोजन के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध संगठनात्मक व्यवस्था का वर्णन कर सकेंगे।
- पंचायती राज व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की रूपरेखा प्रस्तुत कर पाएंगे।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में (आर्थिक गैर आर्थिक आदि बहुआयामी) विकास की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है, जो ग्राम विकास को समझने में सहायता करती है। ग्राम विकास के विषय को हाल के वर्षों में गंभीरता से किया गया है। ऐसा विकास संबंधी मुद्दों को समझने के प्रयास के परिणामस्वरूप हुआ है। संपूर्ण विकास की प्रक्रिया को ग्राम विकास के केंद्र में रखकर तीव्र किया जा सकता है। हमारे देश में ग्राम विकास की दिशा आवश्यक रूप से ग्रामीण आवश्यक क्षेत्रों के एकीकृत विकास, ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज

ज्ञान शांति मैत्री

के रूपांतरण तथा आधुनिकीकरण एवं गरीबी उन्मूलन की ओर होनी चाहिए। इस विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न कार्यनीतियों एवं योजनाओं तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए प्रशासनिक व्यवस्था का विशेष महत्व हो जाता है। साथ ही सत्ता के विकेंद्रीकरण और विकास संबंधी गतिविधियों में जनता की सक्रिय भागीदारी महत्वपूर्ण होती है। इस इकाई में ग्राम विकास से संबंधित मुद्दों की चर्चा की गई है।

2.2 विकास की अवधारणा

कुछ देश अन्य देशों की तुलना में अधिक विकसित समझे जाते है। विकसित देशों की तुलनमें अल्प विकसित देशों से मिलने वाले संदर्भ असामान्य नहीं है। अपने ही देश के कुछ राज्य अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक विकसित कहे जाते हैं। स्पष्टतः विकास के संबंध में सापेक्ष तुलना की आवश्यकता पड़ती है।

विकास जीवन के भौतिक गुणवत्ता में पूर्ण सकारात्मक परिवर्त्त को सूचित करता है। इस सकारात्मक परिवर्तन में आर्थिक और सामाजिक पक्ष शामिल है, अतएव विकास मात्र आर्थिक वृद्धि की ही नहीं, बल्कि आर्थिक संवृद्धि से सृजित लाभों के समान वितरण की भी मांग करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो विकास का अर्थ, अर्थिक संवृद्धि का न्यायपूर्ण वितरण है। इसका तात्पर्य है कि बेहतर स्वास्थ शिक्षा, उचित आवास, संपूर्ण भौतिक जीवन और सामाजिक कल्याण के माध्यम से जीवन स्तर में सुधार है। विकास के मूल तत्व निम्नवत हैं:

- ❖ असमानता और निर्धनता का उन्मूलन
- ❖ सामाजिक कल्याण शिक्षा स्वास्थ्य आवास आदि में वृद्धि
- ❖ प्रदेश अथवा देश में लोगों के विभिन्न समूहों में विकास के लाभों का समान वितरण
- ❖ व्यक्तियों के भौतिक कल्याण में वृद्धि
- ❖ प्रौद्योगिकी में उन्नति और बेहतर जीवन स्तर की श्रेष्ठ सुविधाओं हेतु अर्थव्यवस्था में सामग्री और सेवाओं की मात्रात्मक उत्पादन क्षमता मेंवृद्धि
- ❖ संस्थागत ढांचा बनाना, जिसमें सभी स्तरों पर निर्णय लेने में सबकी सहभागिता विकास के लिए समान अवसर और असमानताओं को हटाने की अनुमति हो।

बहुत समय से यह माना जाता था कि विकास मुख्य रूप से आर्थिक संवृद्धि पर आश्रित है तथा यदि आर्थिक वृद्धि होगी तो विकास स्वाभाविक रूप से होगा। विकास की इस अवधारणा की आलोचना हुई है कि यह वृद्धि से प्राप्त लाभों के वितरण वृद्धि कैसे हुई और किस मूल्य पर प्राप्त हुई इसकी अनदेखी करता है। किसी देश में उत्पादन में वृद्धि का अर्थ स्वतः यह नहीं हैकि जो कुछ भी वहाँ उत्पादन हुआ है, उसका अधिक अच्छा या सही ढंग से वितरण होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए आज़ादी के बाद से

यद्यपि खाद्यानों का उत्पादन लगभग चार गुने से अधिक बढ़ गया है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक भारतीय को खाने के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध है। इस संदर्भ में खाद्यानों का वितरण महत्वपूर्ण है, वितरणात्मक न्याय की महत्ता बढ़ जाती है।

अर्थिक वृद्धि और विकास की अवधारणाओं के मध्य अंतर का समझना आवश्यक है। किसी आर्थिक व्यवस्था में सकल उत्पाद, उपयोगी समान और सेवाओं के मूल्य में वृद्धि को आर्थिक वृद्धि कहते हैं। किसी अर्थव्यवस्था में सभी उत्पादन और कार्य सेवाओं का संपूर्ण योगGross Domestic Product (सकल घरेलु उत्पाद) के नाम से जाना जाता है। इसलिए वृद्धि किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्षमता का स्थायी विस्तार है, जो उसके सकल घरेलु उत्पाद में वृद्धि को स्थायित्व प्रदान करता है। दूसरी तरफ विकास का अर्थ भौतिक कल्याण से है, जिसमें विशेष रुप से, जो निर्धन है, गरीबी, अशिक्षा और खराब स्वास्थ की दशा से प्रभावित हैं, उनकी भौतिक दशाओं में स्थायी सुधार लाने से है। इस प्रकार विकास एक गुणात्मक संकल्पना है, जो किसी देश या अर्थव्यवस्था में सामान्य जीवनस्तर में गुणात्मक सुधार से संबंधित है।

2.3 ग्रामीण विकास की पृष्ठभूमि

ग्राम विकास, नियोजन की चिंता बन गया, क्योंकि यह स्पष्ट हो गया था कि विकासशील देशों द्वारा अपनाई गई योजनाएं मुख्यतः गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण क्षेत्रों की विषमताओं को समाप्त करने में पूरी तरह से विफल रही हैं। यह स्पष्ट हो गया कि कृषि और औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के प्रयासों के अलावा शिक्षा की समस्या, स्वास्थ सेवाओं, रोज़गार और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की समस्या को दूर करने पर ध्यान देना होगा। ग्राम विकास में बढ़ती हुई रुचि इस बोध का परिणाम है कि ग्रामीण क्षेत्रों से विकासशील देशों की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा रहता है। उसके लिए बेहतर जीवन स्थिति उत्पन्न करने के लिए क्रमबद्ध प्रयास की आवश्यकता है।

विनिर्माण क्षेत्र में प्रगति के द्वारा 1950 और 1960 दशकों के दौरान विकास के नीति निर्माताओं ने उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करनी चाही। कृषि उत्पादन के क्षेत्र में स्वतंत्रता के बाद के दो दशकों में कृषि उत्पादन में वृद्धि मुख्यतः कृषि के क्षेत्रफल में विस्तार और सहयोगी आधारभूत ढांचे को तैयार करने में जन निवेश की वजह से लाभ प्राप्त किया जा सका। शीघ्र ही यह अनुभव किया गया कि इन तरीकों के लाभ अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी है। एक छोटे समूह के लिए मुख्यतः उन लोगों को, जो पहले ही बेहतर स्थिति में और सुविधा संपन्न थे एक छोटे समूह के लिए ऐसा माना जाता है कि इन प्रयासों से वास्तव में, जो लाभ हुए थे, उनसे ग्रामीण क्षेत्रों में आय से संबंधित और अधिक विषमताएं उत्पन्न हुई। 1970 तक यह स्पष्ट हो गया कि विकास के मुद्दों और समस्याओं को जिस प्रकार सुलझाया जा रहा था, उसमें कहीं न कहीं गंभीर समस्याएं जरूर थी। विशेषत यह आशा की जा रही थी कि ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोज़गारी और गरीबी की समस्याओं का उचित हल होगा, यह निश्चित रूप से पूरा नहीं हो पाया।

ऐतिहासिक रूप में यह देखा गया कि पश्चिमी समाजों में औद्योगिकरण और अर्थव्यवस्था की तरक्की को ग्रामीण समाज के प्रमुख आर्थिक परिवर्तनों से जोड़ा गया। हम इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति और यूरोप में अनेक देशों की क्रांतियों से परिचित है और अन्य देशों सहित जापानी उद्योग का परिपक्व होना ये सभी कृषि समाज में दूरगामी परिवर्तनों से शुरु हुआ। भूमि सुधार या अन्य वैधानिक सुधार कुछ देशों के ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन लाने के साधन बने। औद्योगिक विकास और आधुनिकरण के साथ-साथ कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में वृद्धि और शहरीकरण हुआ। कई मामलों में, उपनिवेशों तक पहुँच उनके आर्थिक प्रगति में एक महत्वपूर्ण योगदान बना। साथ ही यूरोप से अधिक संख्या में लोगों का प्रव्रजन अतिरिक्त श्रमिकों को पुनर्स्थापित करने में मददगार हुआ। उदाहरण के लिए 4 करोड़ से अधिक लोगों ने 1870 से 1914 तक की अवधि में यूरोप में पलायन किया। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप ये समाज गरीबी कम करने और अपनी अर्थव्यस्थाओं में गैर-कृषि गतिविधियों की भूमिका में वृद्धि करने में सफल रहा। दूसरी तरफ विकासशील देशों के ज़्यादातर हिस्सों में संभव नहीं हो पाया। उन आवश्यक परिवर्तनों के अभाव में ग्राम विकास योजनाओं का जो प्रभाव इन देशों पर पड़ा उनको कम करके नहीं आंका जा सकता। यह भी स्पष्ट है कि विकसित देशों में आर्थिक रूपांतरण की पद्धति विकासशील देशों के संबंध में दोहराई नहीं जा सकती, क्योंकि ऐतिहासिक परिस्थितियाँ आज की परिस्थितियों से बहुत भिन्न थी। इसका निष्कर्ष यह है कि विकासशील देशों के लिए ग्राम विकास की सुनिर्मित और स्पष्ट कार्यनीतियां अंत्यंत आवश्यक है।

2.4 ग्रामीण विकास की संकल्पनाएं

ग्राम विकास की अवधारणा की कल्पना शोधकर्ताओं द्वारा विभिन्न तरीकों से की गई जिसे विभिन्न उद्देश्यों और कार्यक्रम से लेकर अच्छी तरह निर्मित कार्यननीति, दृष्टिकोण या केवल एक विचारधारा भी माना गया। अगर आप संबद्ध साहित्य का अच्छी तरह से अध्ययन करेंगे तो आपको यह आभास होगा कि इसका कार्य क्षेत्र और विषय सूची अस्पष्ट है और इसमें सर्वमान्य विश्लेषणात्मक सीमाओं का अभाव है। जैसा कि अक्सर देखा गया है कि हम इसे इसकी कमज़ोरी और साथ ही इसकी ताकत भी मान सकते हैं। यह एक कमी अथवा कमज़ोरी है, क्योंकि मुद्दे की अवधारणा की स्पष्टता के अलावा इसका यह भी तात्पर्य है कि इस विचार के कार्यान्वयन में अनिश्चिता है। यह एक शक्ति है, क्योंकि ऐसी परिस्थिति नीति निर्माताओं को विभिन्न मूल वास्तविकताओं का आकलन करने में बहुत अधिक लचीलापन प्रदान करती है।

ग्राम विकास की अवधारणा को साकार बनाना है तो एक व्यापक दृष्टिकोण होना चाहिए, जो इसका लाभ गरीबी उन्मूलन और वितरणात्मक न्याय के लिए होना चाहिए, ताकि आर्थिक रुपांतरण हो सके। इस प्रकार के दृष्टिकोण पर आधारित ग्राम विकास के प्राथमिक उद्देश्य निम्नलिखित माने जा सकते हैं-

- जीवन स्तर में सुधार करना, भोजन, कपड़ा, आवास, रोज़गार और शिक्षा उपलब्ध कराना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादकता में वृद्धि और गरीबी में कमी करना।

❖ निर्णय लेने में भागीदारी और प्रशासन के विकेंद्रीकरण के माध्यम से लोगों को नियोजन और विकास में सहभागी करना।

❖ समाज में वितरणात्मक न्याय और सभी के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना।

विकास का कोई भी सर्वमान्य उपागम नहीं है। हमने यह भी देखा कि विकास की प्रगति के लिए कार्यनीतियां आवश्यक है, क्योंकि यह एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। इसी प्रकार ग्राम विकास की समस्या के लिए अनेक कार्यनीतियां हैं। विभिन्न विचार ग्राम विकास कीसमस्या को अलग ढंग से देखते हैं और अपने सिद्धांतों में विभिन्न प्रकार के कारकों पर बल देते हैं।

2.5 ग्रामीण विकास की परियोजनाएं और कार्यक्रम

ग्राम विकास की परियोजनाओं और कार्यक्रमों के मध्य अंतर करना महत्वपूर्ण हैं। ग्राम विकास परियोजनाएं सूक्ष्म स्तर के वेप्रयास है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन लाते हैं। ये परिवर्तन कई आकार ले सकते हैं, जो साक्षरता के विकास में वृद्धि से लेकर कृषि उत्पादकता में वृद्धि के प्रयास तक हो सकते हैं। इन परियोजनाओं का प्रभाव सामान्यतः बहुत व्यापक नहीं होता, क्योंकि यह कम लोगों तक सीमित होती हैं।

ग्राम विकास कार्यक्रम में कई परियोजनाएं सम्मिलित होती हैं जो एक दूसरे से जुड़ी होती हैं जिससे वे ग्रामीण आर्थिक और सामाजिक जीवन के कई पहलुओं को प्रभावित करती हैं। अतः ग्राम विकास कार्यक्रम, जो परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। एक व्यापक क्षेत्र के अधिकाधिक लोगों को प्रभावित करता है। पैमाने की समस्या की वजह से ग्राम विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वयन बहुत कठिन हो जाता है। यह विशेषतः भारत जैसे देश में और अधिक है जहां ग्रामीण जनसंख्या बहुत अधिक, बहुत विस्तारित और जिसकी सामाजिक, आर्थिक और संपादाओं में काफ़ी विभिन्नताएं हैं।

इन समस्याओं की वजह से ग्राम विकास कार्यक्रमों में प्रारंभ में उपयुक्त नियोजन और उन्हें पूरा करना अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। साथ में कार्यक्रम का उपयुक्त निरीक्षण और मूल्यांकन एंजेसी की क्रियाविधि यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि कार्यक्रम अपने उद्देश्यों की पूर्ति लाभदायक तरीकों से कर रहे हैं। भारत का इस संदर्भ में अनुभव काफ़ी निर्देशात्मक है।

1. सामुदायिक विकास

1950 में प्रारंभ किए गए सामुदयिक विकास कार्यक्रम का उद्देश्य ग्राम विकास कार्यक्रम में लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना था। इसने ग्रामीण समुदायों की सहभागिता से ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत संरचनाओं के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने देश के विभिन्न हिस्सों में चरणबद्ध तरीकों से ग्राम विकास को उन्नत करने का प्रयास किया। विकास की इकाई के रुप में गावों के एक समूह की पहचान की गई और प्रौद्योगिकी तथा प्रशासनिक कर्मचारियों का एक ढांचा विभिन्न क्षेत्रों में विकास कार्यक्रम लागू करने के लिए उपलब्ध कराया गया।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत हैं

- ग्रामीण क्षेत्रों में भौतिक और मानवीय संसाधनों को संपूर्ण विकास के लिए सुनिश्चित करना
- स्थानीय नेतृत्व और स्वशासी संस्थानों का विकास करना
- खाद्य और कृषि उत्पादों में तीव्र वृद्धि के माध्यम से ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाना
- लोगों कि मानसिक सोच को परिवर्तित करना और उनमें उच्च मानकों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करना

सामुदायिक विकास कार्यक्रम से ग्रामीण गरीबी पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि ग्रामीण समुदाय में, जो लोग शक्तिशाली थे, उन्होंने ही इस कार्यक्रम से होने वाले लाभों को प्राप्त किया।

2. एकीकृत ग्राम विकास

एक संकल्पना के रुप में 'एकीकृत ग्राम विकास' शब्द को व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई है, भले ही इस संकल्पना को परिभाषित करने में ग्राम विकास के कुछ मूलभूत तत्वों को महत्व देते हैं। अधिकतर विकासशील देशों की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना में व्यापक गरीबी, खराब स्वास्थ्य स्थिति, निरक्षरता, शोषण, भूमि और अन्य संपदाओं का असामान्य वितरण, ग्रामीण आधारभूत ढांचे और जन सुविधाओं का अभाव जैसे लक्षण मौजुद हैं। स्पष्ट रूप से ग्राम विकास को आगे बढ़ाने के लिए इन सभी कारकों को ध्यान में रखते हुए समस्या को हल करने के लिए व्यापक कार्यनीति के उपागम की आवश्यकता होती हैं।

एकीकृत ग्राम विकास की संकल्पना का प्रचलन ग्राम नियोजन को बहुउदेश्यीय दबाव की जरुरत की वजह से हुआ। यह इस बात पर बल देता है कि ग्राम विकास के बहुत से पहलु, जिनका ग्रामीण जीवन पर प्रभाव है, परस्पर संबंधित हैं और उन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता। अतः ग्राम विकास के लिए एकीकृत उपागम अति आवश्यक है। ग्रामीण जीवन के विभिन्न आयाम कृषि और संबद्ध गतिविधियों में वृद्धि ग्रामीण औद्योगिकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, जन-कार्य, गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम सभी मिलकर ग्राम विकास की समस्या के लिए एकीकृत उपागम का एक घटक है।

3. ग्राम विकास में स्थानीय स्तर की सहभागिता

1980 के दशक के अंत में स्थानीय स्तर की सहभागिता को भारत में अधिक बल दिया गया है। 1990 के दशक के प्रारंभ में संविधान का 73वां और 74वां संशोधन इस सबंध में विशेष महत्व रखते हैं। साथ ही विकासशील देशों के कई हिस्सों में, जिसमें भारत भी हैं, गैर-सरकारी संगठन

ज्ञान शांति मैत्री

अब सहभागी विकास को प्रोत्साहित करने के लिए काम कर रहे हैं। इन प्रयासों के मुख्य उद्देश्य निम्नवत हैं।

- ❖ ग्रामीण क्षेत्रों में विशिष्ट लोगों को दबाना, जिससे कि ग्राम विकास की प्रक्रिया को गरीब लोग सक्रिय होकर साकार करें।
- ❖ स्थानीय स्तर पर लोगों द्वारा महसूस की जा रही आवश्यकता को महत्व देना और उनकी उर्जा और दृष्टिकोण का उपयुक्त कार्यक्रमों के निर्माण में शामिल करना।
- ❖ ग्रामीण समाज में परिवर्तन के लिए लोगों की दृष्टिकोण में शिक्षा का एक उपकरण की तरह उपयोग करना। शिक्षा का इस्तेमाल इस तरह से किया जाए कि यह लोगों को समाज में परिवर्तरन लाने के लिए संगठित करने में सफल हो सकें।

4. ग्रामीण विकास की प्रमुख योजनाएं

ग्रामीण लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु वर्तमान समय में कुछ योजनाएँ चलाई जा रही हैं जो निम्नलिखित हैं:

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम- 1976-77
ग्रामीण युवक स्वरोज़गार प्रशिक्षण योजना (TRYSEM)- 1979
ग्रामीण क्षेत्रीय महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम (DWACRA)- 1982-83
ग्रामीण कारीगर योजना (SITRA)-1982
दस लाख कूप योजना (MWS)- 1988-89
अंत्योदय कार्यक्रम- 1977
स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना (SGSY)- 1999
संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना(SGRY)- 2001
राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (NREGA)- 2005
काम के बदले अनाज कार्यक्रम (NFWP)- 2004
ग्रामीण आवास योजनाएँ (RHS)- में तीन योजनाएँ चलाई जा रही है-

1) इंदिरा आवास योजना-1985
2) प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण आवास)- 2000
3) वाल्मिकी अंबेडकर आवास योजना- 2001
4) सूखा-संभावित क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP)- 1973
5) प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)- 2000

2.6 ग्रामीण विकास की नीतियां

ज्ञान शांति मैत्री

ग्रामीण क्षेत्रों में सतत विकास को प्रोत्साहित करने के लिए विचारकों ने विभिन्न रास्ते सुझाए हैं। यह ध्यान में अवश्य रहना चाहिए कि ऐसा कोई भी एक सार्वभौमिक साधन नहीं है, जिससे सतत् विकास को सार्वभौमिक रुप से प्राप्त किया जा सके। विभिन्न आर्थिक और सामजिक तंत्रों को अपनी विशिष्टताएं ध्यान में रखकर ही ग्राम विकास को आगे बढाना चाहिए।

1) ग्रामीण विकास की नीतियां

किसी भी ग्रामीण विकास योजना की अपनी विचारधारात्मक जड़े होती हैं, जिन पर इस कार्यनीति के तत्व आधारित होते हैं। एक कार्यनीति में इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न नीतिगत मानकों को व्यवस्थित करना होता है। विभिन्न कार्यनीतियां विभिन्न नीतियों पर बल देती है ताकि लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। फिर भी कुछ महत्वपूर्ण नीतियां है जो सभी प्रमुख ग्राम विकास कार्यनीतियों के लिए समान होती हैं, ये नीतियां-भूमि, प्रौद्योगिकी, कृषि रोज़गार, शिक्षा, शोध, विस्तार, ग्रामीण संस्थाओं और कृषि उत्पादों के मूल्य आदि से संबंधित होती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आय और रोज़गार का मुख्य साधन कृषि ही है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कृषि का नियोजन ग्राम विकास योजनाओं के लिए महत्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्र की संतुलित वृद्धि उन्नति से इस क्षेत्र पर आश्रित लोगों के लिए बेहतर स्थिति उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा सकती है। ग्रामीण समाजों की गतिविधियां जैसा की हम जानते है अधिकतर कृषि और उससे संबद्ध अन्य गतिविधियों से संबंधित होती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस संबंध में भूमि एक महत्वपूर्ण विषय है। जैसा कि सर्वज्ञात है कि भारत में भूमि और अन्य संपदा का वितरण बहुत पेचीदा है फलस्वरुप बहुत बड़ी जनसंख्या के पास बहुत कम जमीन है। इसका ग्रामीण क्षेत्रों में आय अर्जित करने की क्षमता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। भूमि सुधार, जिसमें काश्तकारों के अधिकारों की सुरक्षा शामिल है, ग्रामीण समाजों को रुपांतरित करने में एक प्राथमिक साधन है। साथ ही ग्रामीण समाजों में उपलब्ध तकनीकों में सुधार उन पर बहुत प्रभाव डाल सकता है। एक तरफ तो ग्रामीण क्षेत्रों में नई प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल महत्वपूर्ण है, दूसरी तरफ उपलब्ध प्रौद्योगिकी को गांवों तक भी पहुंचना चाहिए। प्रौद्योगिकीय नियोजन शोध और विकास ग्राम विकास के लिए बहुत ही आवश्यक तत्व हैं। भारत में कृषि क्षेत्र मौसम के अनिश्चितता के चलते असुरक्षित है। प्रौद्योगिकी उन्नति कृषि को मौसम के प्रभाव से सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। ग्रामीण समाजों ग्रामीण क्षेत्रों में नई प्रौद्योगिकियों का चयन किया जाना चाहिए, जिससे बड़े स्तर पर श्रमिकों का पलायन न हों। ग्रामीण समुदायों के लिए उच्चतर उत्पादकता और रोज़गार के बढ़ते अवसरों के बीच न्यायपूर्ण संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है। ग्राम विकास की योजनाओं को ध्यान में रखते हुए कार्यक्रम को बनया जाना चाहिए। अतः भूमि सुधार और भूमि नीति , जिससे वितरित न्याय प्रदान करने की आशा की जाती है, उसके परिणामस्वरुप कृषि उत्पादकता में भी वृद्धि हो सकती है। अतः ग्राम विकास कार्यनीति में भूमि नीति एक महत्वपूर्ण तत्व है।

भारत में, ग्रामीण क्षेत्रों में निरक्षरता की समस्या बहुत विकट है। शिक्षा का अभाव ग्राम विकास को आगे बढाने में बाधक हो सकता है। ग्रामीण समाजों को जैसा कि आप जानते हैं, आय और संपदा के वितरण में व्यापक विषमताओं से भी पहचाना जाता है। शिक्षा का अभाव ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिससे यह समस्या और बढ़ जाती है। शिक्षा के प्रसार से एक तरफ तो गांव के गरीबों के लिए न्यायपूर्ण वितरण सुनिश्चित होगा और दूसरी तरफ ग्राम विकास कार्यक्रमों मेंउनकी सक्रिय भागीदारी में सहायता मिलेगी। मूल्य नीति का उपयोग भी ग्राम विकास नीति का एक महत्वपूर्ण तत्व है। प्रथम कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारण इस तरह से किया जाए, जिससे किसानों को उचित लाभ हो। दूसरा आर्थिक सहायता के उपयोग के माध्यम से मूल्य नीति एक ऐसे साधन के रुप में कार्य कर सकती है, जो ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले लोगों को व्यापक उपयोग के लिए महत्वपूर्ण वस्तुएं उपलब्ध करा सकती है। यह विशेषत गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों लोगों के लिए महत्वपूर्ण है। राशन की दुकानों के नेटवर्क के माध्यम से वितरण व्यवस्थाके विस्तार द्वारा यह समस्या हल की जा सकती है। यह वर्षा की कमी के समय विशेषरुप से बहुत ज़रुरी है। जब ग्रामीण आय बुरी तरह से प्रभावित होती है, जिसका उपभोग पर नकारात्मक प्रभाव पडता है। आर्थिक सहायता के अन्य प्रकार भी हो सकते है। उदाहरण के लिए कृषि क्षेत्र में लागत अनुदान के रुप में उपलब्ध कराकर। यह विशेषतः उर्वरकों कीटनाशकों और बीजों के मामले में महत्वपूर्ण है। अतः मूल्य नीति ग्राम विकास के उद्देश्यों को हासिल करने का एक उपयोगी साधन के रुप में कार्य करती है। नव-उदारवादी दिशा में तात्कालिक चिंतन ने मूल्य नीतिके बहुत से पहलुओं में स्पष्ट परिवर्तन किए हैं और यह स्पष्ट है कि उदारीकरण के फलस्वरुप ग्रामीण भारत पर बहुत ज़्यादा तनाव थोपा गया है, जिसका कुछ भाग मूल्य नीति के कुछ पहलुओं में परिवर्तन के कारण है।

2) ग्राम विकास कार्यनीतियों के प्रकार

अलग-अलग कार्यनीतियां ग्राम विकास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कृषि संबंधों, उत्पादन की तननीकों और राज्य की नीति के अलग-अलग मिश्रण का महत्व देती है। कुछ संबंधित मुद्दों को समझने के लिए हम वर्गीकरण के उद्देश्य के लिए कृषि संबंधों को प्रमुख महत्व देते हुए निम्नलिखित ग्राम विकास कार्यनीतियों की संक्षेप बात कर सकते हैं

- संसाधनों के एकत्रीकरण पर आधारित कार्यनीति
- नियंत्रित पूंजीवादी परिप्रेक्ष्य पर आधारित कार्यनीति
- श्रमिक कृषि परिप्रेक्ष्य पर आधारित कार्यनीति
- अहस्तक्षेप पर आधरित या अनियंत्रित मुक्त बाज़ार पूंजीवादी परिप्रेक्ष्य परआधारित कार्यनीति

ग्रामीण भूमि का एकत्रीकरण को प्रथम योजना में अत्यधिक महत्व दिया गया है। भूमि का निजी स्वामित्व समाप्त कर दिया जाए, जिससे न केवल भूमि के स्वामित्व की विषमताएं समाप्त हो जाएगी, अपितु भूमि के उपयोग को और अधिक उत्पादक बना कर किया जा सकेगा। अधिक उत्पादकता हासिल की जा सकती

है, क्योंकि छोटे भूखंडो कोजोड़कर बडे पैमाने पर कृषि करने से कृषि उत्पादन में अर्थिक पैमाना लाया जा सकता है। बडे स्तर पर खेती से उत्पादकता भी बढ़ती है। आधुनिक प्रौद्योगिकीय ट्रैक्टर और हार्वेस्टर के रूप में उपयोग की संभवना भी उत्पन्न होती है। इस कार्यनीति का पालन सोवियत संघ चीन और पूर्वी यूरोप के देशों ने काफ़ी सफलता के साथ किया। इन देशों ने इस योजना को प्रारंभ करके अपने उत्पादन में तीव्र वृद्धि की।

दूसरी कार्ययोजना में पूंजीवादी क्षेत्र और श्रमिक क्षेत्र एक साथ रहते है और राज्यसे सहायता और सुरक्षा प्राप्त करते हैं किसी भी बड़े स्तर के भूमि का पुनर्वितरण या भूमि की पुर्नसंरचना नहीं की जाती है। ऐसी आशा की जाती है कि जब तक गैर-कृषि क्षेत्र तीव्र गति से विकास करना नहीं प्रारंभ करता। तीव्र विकास के उद्देश्य का ध्यान पूंजीवादी वर्ग रखेगा और साथ में बेरोज़गारी की समस्या का हल कृषि क्षेत्र करेगा, जब तक कि गैर-कृषि क्षेत्र तीव्र गति से विकास करना नहीं प्रारंभ करता। ग्राम विकास के इस पद्धति ने ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त आधारभूत विषमताओं पर ध्यान न दे पाने के कारण से आलोचना की गई। ऐसा कहा गया कि सार्थक भूमि सुधार के बिना यह कार्यनीति सीमित रुप से सफल होगी, क्योंकि इस कार्यनीति में ग्रामीण असमानताओं की उपेक्षा की गई है। गांव के गणमान्य व्यक्ति भूमि के असमान्य वितरण पर नियंत्रण रखते हैं और उसमें परिवर्तन नहीं होने देते और दूसरी तरफ गरीबों केजीवन को बेहतर बनाने वाले बाहर से प्रदान किए गए संसाधनों का एक बड़ा हिस्सा हथिया लेते हैं। किसान और कृषि के दृष्टिकोण पर आधारित कार्यनीति यह दावा करती है कि भूमि का ठीक से पुनर्वितरण और भूमि संबंधों को सुधारा जाना चाहिए। यह छोटी कृषक इकाइयों का अधिक समर्थनदेने पर ध्यान रखती है, जिनसे यह आशा की जाती हैं कि यह विकास और रोज़गार के दोनों उद्देश्यों का ध्यान रखेगा। सहकारी संस्थाओं विपणन सुविधाओं आदि को इस कार्यनीति में अत्यंत महत्व दिया जाता है।

द्वितीय और तृतीय कार्यनीतियों में यह विचार किया गया है कि राज्य ग्रमीण क्षेत्रों में गैर-कृषि आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने और सशक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा, जिससे कृषि पर आवश्यकता से अधिक श्रमिकों का भार कम होगा और यह आगे के लिए उचित जीवनयापन के अवसर उत्पन्न करने का मार्ग प्रशस्त करेगा। इसके अतिरिक्त यह मान लिया जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में उपयुक्त आधारभूत सुविधाओं की समस्या पर राज्य ध्यान देगा और सामाजिक क्षेत्रोंजैसे कि स्वास्थ्य, शिक्षा आदि में भी निवेश करेगा।

चतुर्थ कार्यनीति के अनुसार संपन्न भूस्वामी कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि के लिए बड़ेपैमाने की अर्थव्यवस्था का लाभ उठाते हुए अग्रणी भूमिका निभाएंगे और धीरधीरे छोटी कृषि ईकाइयाँ लुप्त हो जाएंगी । यह सुझाव दिया गया है कि राज्य पूंजीवादी क्षेत्र के विस्तार में हस्तक्षेप नहीं करेगा और स्वामित्व की कोई सीमा नहीं होगी। इस क्षेत्र से यह आशा की जाती है कि यह गतिशीलता उपलब्ध कराएगा, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था और इससे प्राप्त होने वाले लाभों में सुधार लाएगा और ये लाभ रोज़गार और आय में वृद्धि के माध्यम से निम्न वर्गों तक पहुँचेगा। इस तरह की योजना में असमता और

वितरणात्मक न्याय के मुद्दों को कोई मुद्दा नहीं माना जाता है। राज्य की एक सीमा तक ही भूमिका होती है, जो आधारभूत ढाँचागत सुविधाओं से संबंधित होती,है लेकिन यहां भी इसे आवश्यक रूप से प्रमुख कर्ता के रूप में नहीं देखा जाता। ऐसा इसलिए है, क्योंकि यह न केवल अनेक विकास के मुद्दों की उपेक्षा करता है, बल्कि जहाँ तक विकास और उसके प्रसार का संबंध है इसके अधिक आशावाद की भी अवहेलना करता है। ग्रामीण विकास के किसी भी कार्यनीति का चयन कर सकते हैं लेकिन निम्नलिखित ग्राम विकास योजना के प्रमुख विषय केंद्रबिंदु होना चाहिए

i. किसानों के लिए कृषि अनुसंधान, विस्तार, ग्रामीण शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रम संस्था निर्माण कार्यकलापों का एक भाग हैं,
ii. आधारभूत ढाँचागत सुविधाओं के निर्माण की गतिविधि,जो सिंचाई सुविधा में वृद्धि, यातायात के साधन, दूर संचार और स्वास्थ्य सुविधाओं से संबंधित है
iii. कृषि की लागतों और औजारों के वितरण के लिए विपणन, कृषि उत्पादों का मूल्य और कृषि आय की कर निर्धारण से संबंधित नीतियाँ।

बाज़ार अर्थव्यवस्था से संबंधित अनुभव पर आधारित भूवितरण का प्रस्ताव, कृषि क्षेत्र की वृद्धि सुनिश्चित करने वाली योजनाओं के प्रकारों का भी वर्गीकरण, एक-रूपात्मक और द्वि-रूपात्मक योजनाओं में किया जा सकता है। एकरूपात्मक योजना वह है, जिसमें भू-स्वामित्व का समान वितरण होता है। इस योजना का जापान, ताइवान और कोरिया में बहुत सफलता से पालन हुआ। द्वि-रूपात्मक योजना कृषि क्षेत्र में वृद्धि के लिए, कृषि उत्पादन में वृद्धि का प्रयास और ग्रामीण क्षेत्रों में आय और भूमि के विषम वितरण में कठोरता से परिवर्तन के उपाय के बिना ही करती है। इस योजना के लैटिन अमेरिका के कई देश उदाहरण के रूप में समझे जा सकते हैं।

ज्ञान शांति मैत्री

3) ग्राम विकास नियोजन

हमारे देश की सामाजिक-अर्थिक विशेषताओं में बहुत अधिक विविधता है। ग्राम विकास नीति निर्माताओं के सम्मुख एक प्रमुख समस्या है कि कैसे सूक्ष्म स्तर की आवश्यकताओं को अर्थव्यस्था की सकल नियोजन प्रक्रिया से जोड़ा जाए। ग्राम विकास की योजना बनाते समय विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं और समस्याओं को ध्यान में रखना पड़ता है,चूँकि कार्य क्षेत्र व्यापक है, साधारणतः ग्राम विकास की योजना बनाना और उस पर निगरानी करने में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हैं। परिणामस्वरूप, बहुस्तरीय नियोजन तंत्र को विकसित करने की आवश्यकता पड़ी।

ग्रामीण विकास के नियोजन को और अधिक महत्व तब मिला जब यह अनुभव किया गया कि गरीबी उन्मूलन के सीधे उपायों से सीमित लाभ प्राप्त किया जा सकता हैं। गरीबों और शेषितों के उत्थान के लिए आर्थिक सहायता और विशेष प्रयास स्पष्ट रुप से महत्वपूर्ण है। अर्थव्यवस्था में लंबे समय के लिए उत्पादक आधार जोड़ने के लिए नियोजन अत्यंत आवश्यक है। स्थानीय क्षेत्र का नियोजन पंचायतों के

माध्यम से ग्राम विकास लाने का महत्वपूर्ण साधन हो सकता है। अखंडित नियोजन संरचना में उपर के लोग, स्थानीय स्तर पर विशिष्ट आवश्यकताओं को समझने में असफल रहते हैं। तब स्थानीय नियोजन से उत्तरदायित्व अधिक ज़रूरी हो जाता है। दुर्भाग्यवश 1990 के दशक के पहले से नीति निर्माण में नव-उदारवादी विचारों की ओर तीव्र झुकाव होने से नियोजन के विचार को गहरा आघात लगा है। इस परिवर्तन से पहले की नीतियों में बहुत सी समस्याएं थीं, लेकिन नियोजन की कमी और समस्याओं वस्तुओं को बाजार के हवाले छोड़ना भी हल नहीं है।

2.7 प्रशासनिक प्रणाली

ग्राम विकास से जुड़ी नौकरशाही की वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था को बेहतर ढंग से समझे के लिए या आवश्यक है कि योजना युग से ही इसकी जड़ों का पता लगाया जा सकता है। भारत को उसकी वर्तमान प्रशासन व्यवस्था औपनिवेशिक शासकों से विरासत में प्राप्त हुई। इसी ढांचे को प्रमुख रूप से ग्राम विकास के कार्य और उसकी ज़िम्मेदारियां सौंपी गई है। वैसे समय-समय पर इसमें कुछ संशोधन भी किए गए हैं। राजस्व और सामान्य प्रशासनिक संगठन और ढांचे को ग्राम विकास के कार्यों के लिए सक्रिय किया गया है। 1952 में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' की स्थापना के बाद से कई बदलाव भी हुए है। इस कार्यक्रम ने पहली बार बड़े पैमाने पर सीधे फ़ील्ड के स्तर पर विकास प्रशासन गठित करने का प्रयास किया। इसके अनंर्गत आने वाली विभिन्न योजनाओं को लागू करने के लिए इसमें तकनीकी विशेषज्ञों की नियुक्ति और मानव शक्ति के प्रशिक्षण को सम्मिलित किया गया।

अधिक अन्न उत्पादन जांच समिति ने ही 1952 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में पहली बार ग्राम विकास के लिए एक एकीकृत संगठनात्मक ढांचे की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था। इस समिति ने राष्ट्र राज्य, जिला, खंड और गांव के विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था का प्रारूप भी तैयार किया। इसी ने 100-200 गांवों को लेकर एक विकास खंड के रूप में तालुका की स्थापना की सिफ़ारिश की थी, जिसे राजस्व प्रभागीय अधिकारी स्तर के खंड विकास आधिकारी के अधीन रहना था। इस अधिकारी की सहायता के लिए चार तकनीकी आधिकारी (कृषि पशुपालन सहकारिता और इंजीनियरी प्रत्येक क्षेत्र से एक-एक) और 5 से 10 गांवों पर एक के हिसाब से ग्राम स्तर के कार्यकर्ता भी होने थे। इस रिपोर्ट में यह भी सिफ़ारिश की गई थी कि जिला स्तर पर विकास संबंधी गतिविधियों को कलेक्टर के अधीन एकीकृत किया जाए और उसकी सहायता के लिए विशेषज्ञ आधिकारी हों। इसमें नीतियों के समन्वय और संयुक्त कार्रवाई को सुगम बनाने हेतु राज्य स्तर पर मुख्यमंत्री ही अध्यक्षता में मत्रिमंडल समिति की तथा एक गैर सरकारी बोर्ड की भी सिफ़ारिश की गई थी।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन के समय संकल्पित प्रशासनिक व्यवस्था विशेष कार्यक्रम शुरु करने और ग्राम विकास कार्यक्रमों की कार्यनीति में परिवर्तन के बाद चौथी तथा पांचवी योजना की अवधि के दौरान जिला स्तर पर किए गए कुछ बदलावों के साथ व्यापक रूप से जारी रही है। ग्राम

विकास की कार्यनीति में धीरे-धीरे क्षेत्र आधारित और पात्र विशेष आधारित विकास पर ध्यान केंदित करना शुरु कर दिया गया है।

1) राष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्था

1979 में ग्राम पुन:निर्माण मंत्रालय का गठन किया गया था। 1982 में इसका नाम बदल कर ग्राम विकास मंत्रालय कर दिया गया। जनवरी 1985 में यह कृषि एवं ग्राम विकास मंत्रालय के अधीन लाकर फिर एक बार नाम बदल कर कृषि मंत्रालय कर दिया गया और इसमें एक अलग ग्राम विकास विभाग रखा गया। फिर मार्च 1995 में इसका नाम बदलकर ग्रामीण क्षेत्र एवं रोज़गार मंत्रालय कर दिया गया। अप्रैल1999 से इसे फिर से ग्राम विकास मंत्रालय कहा जा रहा है।

क. ग्राम विकास विभाग

1) प्रशासनिक एवं पंचायती राज प्रभाग
2) गरीबी उन्मूलन प्रभाग
3) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना प्रभाग
4) ग्राम संयोजन प्रभाग
5) भूमि संसाधन प्रभाग
6) अनुवीक्षण प्रभाग
7) वित्त प्रभाग

ख. पेय जल आपूर्ति विभाग

1) पेय जल आपूर्ति प्रभाग
2) ग्रामीण स्वच्छता प्रभाग

ज्ञान शांति मैत्री

ग्राम विकास मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रा में निम्नलिखित संस्थाएं होती हैं:

राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान (N.I.R.D.), जो एक स्वायत्तशासी संस्था है और लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (C.A.P.A.R.T.), जो एक पंजीकृत संस्था है।

एक राष्ट्रीय ग्राम विकास कोष की स्थापना 1984 में की गई थी, जिसका उद्देश्य था ग्राम विकास परियोजनाओं के लिए दान जुटाना। यह संस्था दानदाताओं को कर में छूट देकार उन्हें दान के लिए प्रोत्साहित करती है। हमे यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि ग्रम विकास मंत्रालय ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यक्रम लागू करने वाला अकेली एजेंसी नहीं हैं कुछ अन्य मंत्रालय विभाग भी ग्रामीण विकास से उतना ही सरोकार रखते हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यक्रम चलाते हैं।

2) राज्य स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्था

ग्राम विकास कार्यक्रमों के प्रशासन की सीधी ज़िम्मेदारी राज्य प्रशासन की होती है। आजकल लगभग सभी राज्यों में एक अलग ग्राम विकास विभाग होता है और जिसका प्रमुख 'सचिव' होता है। इसके उपर

कृषि एवं ग्राम विकास हेतु विकास आयुक्त होता है। कुछ राज्यों में मुख्य सचिव स्वयं विकास आयुक्त एवं सचिव होता है। 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में सभी राज्यों में राज्य स्तरीय समन्वय एवं समीक्षा समितियों का गठन किया गया था , जिनका उद्देश्य विभिन्न विभागों के बीच तालमेल बैठाना था। इन समितियों में सभी संबंधित विभागों आयोग के सचिव और केंद्र सरकार का एक-एक प्रतिनिधि होता था। 1979-1981 में योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन ने छोटे किसानों सीमांत किसानों और खेतिहर मज़दूरों के लिए लागू 'अत्योदय कार्यक्रम' का अध्ययन करवाया था, जिसमें यह बात सामने आई कि राज्य स्तरीय समन्वय एवं समीक्षा समितियां आधिकांश राज्यों में सक्रिय नहीं थी और वे एजेंसियों को मार्गदर्शन अथवा सहयोग देने में भी विफल रहीं थी। राज्य स्तरीय प्रकोष्ठों से यह अपेक्षा की गई थी कि वे सामान्य पर्यवेक्षण करेंगे और विभिन्न विभागों की गतिविधियों में समन्वय सुनिश्चित करेंगे, लेकिन वे भी अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर पाए।

ग्राम विकास के पूर्व केंद्रीय मंत्रालय ने यह निर्धारित किया था कि समेकित ग्राम विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोज़गार गारंटी कार्यक्रम, सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम और मरुस्थल विकास कार्यक्रम जैसे कार्यक्रमों की निगरानी एक अकेला विभाग करेगा, जिसका नियंत्रण खंड और फ़ील्ड स्तर के समूचे विकास प्रशासन पर होगा, जिससे राज्य स्तर पर अन्य विभागों के साथ पर्याप्त क्षेत्र अंतर्गत समन्वय हो सकता है। इस मत्रांलय ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि आयुक्त स्तर पर एक अलग पद का निर्माण किया जाए तो सभी विशेष कार्यक्रमों को देखा जा सकता है। उसकी सहायता के लिए संयुक्त उपसचिव स्तर के मध्यम श्रेणी के अधिकारी हों, जो जिलों में इन कार्यक्रमों की निगरानी, निर्माण और क्रियान्वयन कर सके।

3) जिला स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्था

भारत में जिला प्रशासन की बुनियादी इकाई है और उसका प्रमुख जिला कलेक्टर होता है। जिला स्तर पर, राजस्व और विकास के काम एक ही पदाधिकारी को दिए गए है। जब सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरु किया गया था, तब जिला कलेक्टर को जिले में सामुदायिक विकास प्रशासन का प्रमुख बनाया गया था। कलेक्टर ही जिले की योजनाओं का समन्वय करता और जिला योजना समिति की अध्यक्षता भी करता था। इस समिति में सरकारी और गैर सरकारी सदस्य होते थे , जिनकी सहायता एक जिला योजना अधिकारी करता था। बाद में, चौथी पंचवर्षीय योजना 1969-74 के दौरान जिला स्तर पर महत्वपूर्ण बदलाव किए गए। उस समय 1969 में छोटे किसानों को ऋण सहायता और तकनीकी मार्गदर्शन देने के उद्देश्य से भारतीय रिजर्व बैंक ने अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण समीक्षा समिति की नियुक्ति की, जिसकी सिफ़ारिश पर लघु किसान विकास एजेंसियों (S.F.D.A.) और सीमांत किसान एवं खेतिहर मज़दूर विकास एंजेसियों (M.F.A.L.) का गठन किया गया। सभी विभागों के कार्यकलापों में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से प्रत्येक जिले में जिला कलेक्टर की अध्यक्षता में एक समन्वय समिति बनाई गई।

सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम 1860 के अंतर्गत पंजीकृत जिला स्तर पर एक स्वायत्तशासी एजेंसी की स्थापना की गई, जिसका काम लघु किसान विकास एजेंसियों/सीमांत किसान एवं खेतिहरमज़दूरविकास एजेंसियों (S.F.D.A./M.F.A.L.)को लागू करना था। प्रत्येक एंजेसी में एक छोटे अधिशासी स्टाफ वाला एक शासी निकाय होता था। इसे एक राज्य स्तरीय समन्वय एवं समीक्षा समिति का सहयोग प्राप्त था। शासी निकाय में एक अध्यक्ष होता था, जो सामान्यत: जिला कलक्टर होता था। उसके अतिरिक्त इस निकाय में कृषि पशुपालन सहकारिता और कार्यक्रम से जुड़े अन्य किसी भी राज्य स्तरीय विभाग के प्रतिनिधि, अग्रणी बैंक का एक प्रतिनिधि, संबंधित केंद्रीय सहकारिता बैंक का अध्यक्ष, संबंधित जिला परिषद का एक प्रतिनिधि और कुछ गैर सरकारी व्यक्ति होते थे। प्रत्येक एजेंसी को केवल एक केंद्रक स्टाफ रखने की अनुमति थी, जिसमें कृषि पशुपालन और सहकारिता विभाग से लिए गए तीन सहायक परियोजना अधिकारी और परियोजना आधिकारी होते थे। लघु किसान विकास एजेंसियों के अपने कोई फील्ड कर्मचारी नहीं थे और इस एजेंसी को अन्य संबंधित विकास विभागों सहकारिता और वाणिज्यिक बैंकों जैसी वित्तीय संस्थाओं के कर्मचारियों की सेवाएं लेकर अपना काम करना होता था।

चौथी और पांचवी पंचवर्षीय योजनाओं केदौरान देश में लघु किसान विकास एजेसियों के अलावा अन्य विशेष कार्यक्रम भी लागू किए गए। इनमें से सूखाप्रवण क्षेत्र कार्यक्रम और मरुस्थल विकास कार्यक्रम को 1970 के दशक में शुरु किया गया। राज्य और अथवा केंद्र सरकार ने जिला स्तर पर विशेष परियोजना एजेंसियों का भी गठन किया है।

4) खंड और गांव के स्तरों पर प्रशासनिक व्यवस्था

समुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत खंडविकास का निर्माण योजना और एकीकृत ग्राम विकास की बुनियादी इकाई के रूप में किया गया था, जिसमें कृषि और संबद्ध गतिविधियां जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज कल्याण आदि शामिल थे। इसमें स्व-सहायता और जनता की भागीदारी पर विशेष बल दिया गया था। खंड प्रशासन में खंड स्तर पर खंड विकास आधिकारी(BDO) को रखा गया। उसकी सहायता के लिए कृषि, पशुपालन, सहकारिता, समाज कल्याण और सिंचाई आदि क्षेत्रों से लगभग आठ विस्तार कर्मी रखे गए। इनके अतिरिक्त ग्राम स्तरीय कर्मचारी अथवा ग्राम सेवक सेविका और सहायक कर्मचारी भी खंड विकास आधिकारी की सहायता के लिए रखे गए। कार्यक्रम के लिए जनता का समर्थन जुटाने के उद्देश्य से खंड परामर्श समितियों का भी प्रावधान किया गया। किंतु कुछ समय बाद यह देखा गया कि खंड परामर्श समितियां ठीक से काम नहीं कर रहीं, क्योंकि वे मात्र परामर्श देने वाली संस्थाए थीं, जिनकी विकास कार्य में कोई सीधी ज़िम्मेदारी नहीं थी।

सामुदायिक विकास परियोजनाओं (1952) और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं (1953) की समीक्षा के लिए 1957 में बलवंतराय मेहता अध्ययन दल की नियुक्ति की। इस समिति ने यह सुझाव दिया कि उपर जिला स्तर और नीचे ग्राम स्तर को लेते हुए परस्पर संबद्ध त्रिस्तरीय ढांचे में खंड की बुनियादी इकाई तक सत्ता का विकेंद्रीकरण किया जाए।

खंड स्तर पर विकास कार्यक्रमों की समीक्षा बी. डी. ओ. की अध्यक्षता में ग्राम स्तरीय कर्मचारियों और अन्य खंड कर्मचारियों की बैठक में पाक्षिक आधार पर की जाती है। खंड के सभी कार्यकलापों की समीक्षा भी उसके प्रधान की अध्यक्षता में पंचायत समिति की आम समिति की तिमाही बैठक में की जाती है। जहां बी. डी. ओ. सदस्य सचिव की हैसियत से उपस्थित रहता है। इस बैठक में पंचायत समिति के सदस्य, स्थानीय एस. डी. एम., संबंधित विकास विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी, डी. आर. डी. ए. के प्रतिनिधि, उप-प्रभागीय कृषि आधिकारी, स्थानीय तहसीलदार, अन्य विकास विभागों के खंड स्तर के अधिकारी और खंड स्तरीय समन्वय समिति होती है, जिसकी बैठक प्रत्येक महीने में एक निश्चित तारीख पर एक बार होती है। पंचायत समिति का प्रधान इसका अध्यक्ष होता है। खंड के बैंकों के सभी शाखा प्रबंधक और स्थानीय तहसीलदार भी इस समिति की बैठकों में भाग लेते है। सत्ता का विकेंद्रीकरण और प्रशासन सहित विकास संबंधी गतिविधियों पंचायतों के हाथ में आने से विकास प्रक्रिया में पंचायत समिति का महत्व काफ़ी बढ़ गया है, लेकिन पंचायत समितियां दक्षतापूर्वक काम करे इसलिए प्रशासनिक और वित्तीय मामलों में निर्वाचित सदस्यों की प्रबंध क्षमता में सुधार करना आवश्यक है।

5) जिला ग्राम विकास एजेंसी (D.R.D.A.) का निर्माण

पूर्ववर्ती ग्राम विकास मंत्रालय ने यह सिफ़ारिश की थी कि जिला स्तर पर नियोजन और क्रियान्वयन एजेंसी की भूमिका जिला ग्राम विकास एजेंसी को निभानी चाहिए। इस एजेंसी का अध्यक्ष कलेक्टर, उपायुक्त अथवा जिला मजिस्ट्रेट हो सकता है। इसका संचालन परियोजना निदेशक या परियोजना अधिकारी के रुप में कोई प्रयोजनमूलक अधिशासी कर सकता है। परियोजना अधिकारी की सहायता के लिए 2 से 3 सहायक परियोजना अधिकारी होते हैं। इसी के अनुसार जिला ग्राम विकास एजेंसियों का गठन स्वायत एजेंसियों के रुप में छठी योजना के प्रारंभ में हुआ, जब देश के सभी खंड़ो में आई आर. डी. पी. एन. आर. ई. पी. की शुरुआत की गई।

जिले में कार्यक्रमों के नियोजन, क्रियान्वयन, निगरानी और मूल्याकंन की प्रभार जिला ग्राम विकास एजेंसी पर होता है। उसके कार्य निम्नलिखित है:

- ❖ कार्यक्रमों के उद्देश्य, आयाम और आवश्यकताओं संबंधी जानकारी जिला और खंड स्तर की एजेंसियों को देना एवं उन्हें कार्य के संबंध में बताना।
- ❖ खंड से संबंधित योजना और वार्षिक योजनाओं के सर्वेक्षण की तैयारी का समन्वयन तथा पर्यवेक्षण करना एवं अंत में एक‘जिला योजना’ तैयार करना।
- ❖ नियमित मूल्यांकन करना और निगरानी के माध्यम से कार्यक्रमोंको प्रभावी बनाना।
- ❖ स्थानीय और विभागीय समन्वय और सहयोग प्राप्त करना।
- ❖ कार्यक्रमों के अंतर्गत अर्जित उपलब्धियों का प्रचार करना, ज्ञान का प्रसारण करना और कार्यक्रमों के विषय में जागरुकता पैदा करना।

ज्ञान शांति मैत्री

❖ राज्य सरकारों का निर्धारित प्रपत्रों में नियमित अवधि में विवरण भेजना।

2.8 पंचायत राज

पंचायत राज यह सत्ता के विकेंद्रीकरण और विकास संबंधी गतिविधियों में जनता की सक्रिय भागीदारी का एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है। 1957 में बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में गठित 'सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं' पर अध्ययन समिति ने सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी नहीं होने पर चिंता जताई थी। उस समिति ने पंचायत राज की तीन स्तरीय, जिसमें जिला स्तर (जिला परिषद), माध्यमिक स्तर (खंड समिति), निचला स्तर (ग्राम पंचायत) व्यवस्था की सिफ़ारिश की थी, जिसके उद्देश्य थे- 1) लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण 2) नियोजित कार्यक्रमों में स्थानीय भागीदारी।

1959 तक सभी राज्य पंचायत अधिनियमों को पारित कर चुके थे। राजस्थान पंचायत राज व्यवस्था को 1959 में अपनाने वाला पहला राज्य बना और आंध्र प्रदेश दूसरे राज्य बना। 1960 के दशक के मध्य तक देश के सभी हिस्सों में पंचायतों का गठन हो चुका था। उस समय तक 2,17,300 ग्राम पंचायतें अस्तित्व में आ चुकी थी। पंचायती राज संस्था को विकास प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी करवाने के लिए और मूल्यांकन कर उसे सुधारने के लिए समय-समय पर अध्ययन समितियों का गठन किए गए वह निम्नलिखित है:

अशोक मेहता समिति

1977 में पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक अध्ययन समिति नियुक्त की गई थी। इस समिति ने पंचायत राज के असफल होने के कारणों को बताया। इस समिति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिफ़ारिश दो स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के विषय में दी थी, जो जिला स्तर पर जिला परिषद की स्थापना विकेंद्रकरण के प्रथम बिंदु के रूप में की जानी थी। समिति ने मंडल पंचायतों के गठन की भी सिफ़ारिश की थी, जिसमें मंडल को गांवों के समूह के रूप में देखा गया था, जिसे केंद्र बिंदुओं को विकसित करने के क्रम में व्यवस्था के साथ आवश्यक संपर्क बनाने थे। इसे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच संपर्क सूत्र बनाने थे।

जी. वी. के. राव समिति

1985 में ग्राम विकास के प्रशासनिक प्रबंधों और पंचायत संस्थाओं की भूमिका तथा प्रशासनिक व्यवस्था के साथ उनके संबंधों की पड़ताल करने के लिए समिति का गठन किया गया था, जिसने निम्नलिखित सिफ़ारिश दी थी:

- जिला परिषदों को मजबूत किया जाए
- जिला स्तर पर अनुपातिक प्रतिनिधित्व वाली उप-समितियां हो
- योजना संबंधी कुछ कार्योंको जिला स्तर पर स्थानांतरित किया जा सकता है
- स्थानीय एजेंसी के चुनाव नियमित रूप से हो

एल. एम. सिंघवी समिति

1986 में इस समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने ग्राम सभा को आधारभूमि माना था। इस समिति की प्रमुख सिफ़ारिशें निम्नलिखित हैं:

- स्थानीय स्वायत्त शासन को संवैधानिक मान्यता दी जाए
- पंचायत स्तर के चुनाव नियमित रूप से और अविलंब कराए जाएं
- पंचायती राज की कार्यप्रणाली से संबंधित मामलों से निपटने हेतु प्रत्येक राज्य में पंचायती राज्य न्यायिक अधिकरण की स्थापना की जाए
- पंचायतों के प्रभावी ढंग से कार्य करने को सुनिश्चित करने हेतु पर्याप्त वित्तीय संसाधन हों
- रजीनीतिक दलों से जुड़े व्यक्तियों की भागीदारी को हतोत्साहित किया जाए
- न्याय पंचायत को मध्यस्थता और मुद्दों को निपटने का काम दिया जाए

सरकरिया आयोग

केंद्र-राज्य संबंध से सरोकार रखने वाले सरकरिया आयोग (1988) ने भी स्थानीय एजेंसी को वित्त और कार्य की दृष्टि से मजबूत करने की और पंचायतों के चुनाव नियमित रूप से होने की सिफ़ारिश की थी। 1988 के अंत में पी. के. थुंगन की अध्यक्षता में संसद की सलाहकार समिति की एक उपसमिति ने भी पंचायत राज व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता देकर मज़बूत करने की सिफ़ारिश की थी। उसी प्रकार 1989 में वी. एन. गाडगिल समिति ने तीन स्तरीय पंचायती व्यवस्था, जिसमें निर्वाचित सदस्यों के लिए 5 वर्ष की नियमित अवधि और अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान हो यह सिफ़ारिश की थी।

संविधान (73 वां संशोधन) अधिनियम 1992

विभिन्न समितियों और आयोगों की सिफ़ारिशों के आधार पर पंचायत राज को संवैधानिक दर्जा देने के लिए संशोधन के दौर की शुरुआत 64 वें संशोधन विधेयक 1989 के साथ हुई, जिसे प्रत्येक राज्य में गांव, माध्यमिक और जिला स्तरों पर पंचायतों के गठन के लिए संसद में प्रस्तुत किया गया था। इसमें राज्य की विधायिका कानूनी रूप से पंचायतों को ऐसे अधिकार और शक्तियां देगी, जिनकी आवश्यकता उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में काम करने के योग्य होने के लिए पड़ सकती है। इसे आगे 73 वां संशोधन के रूप में 22 दिसंबर 1992 में लोक सभा और 23 दिसंबर 1992 को राज्य सभा में पारित किया गया। 20 अप्रैल 1993 को भारत के राष्ट्रपति ने इसे अपनी स्वीकृति दे दी। इस संविधान संशोधन को संविधान (73 संशोधन) अधिनियम 1992 के नाम से जाना जाता हैं।

इस अधिनियम के साथ पंचायत भारतीय संविधान का हिस्सा बन गया। इस अधिनियम के प्रभावी हो जाने से कोई भी व्यक्ति पंचायतों को दिए गए अधिकारों, ज़िम्मेदारियों और धन को उनसे छीन नहीं पाएगा। यह सब पंचायत के सत्ता हस्तांतरण के विवरण में शामिल है।

2.9 सारांश

इस इकाई में हमने विकास की बहुआयामी अवधारणा को समझा, जो लोगों के जीवन के भौतिक गुणों में व्यवस्थित और सकारात्मक परिवर्तनों को सम्मिलित करता है। यह व्यक्तियों के भौतिक और सामाजिक कल्याण तथा आय और अवसरों का समान रूप से निष्पक्ष वितरण को भी संयुक्त करता है।

1960 और 1970 के दशकों के विकास के अनुभवों से पता लगा कि केवल आर्थिक विकास से विकासशील देशों में बेहतर जीवन स्तर प्राप्त नहीं होगा। ग्राम विकास आर्थिक संवृद्धि के अलावा अन्य कारकों पर भी ध्यान देता है। ये कारक हैं- ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएं, बेहतर ढांचागत सुविधाएं, रोज़गार निर्माण और गरीबी उन्मूलन। साथ ही कार्यनीतियां और नियोजन ग्रामीण विकास को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

योजना युग के प्रारंभ में अपनाए गए विकास संबंधी दृष्टिकोणों का, नौकरशाही के व्यवस्था और ग्रामीण समाज में आर्थिक तथा सामाजिक बदलाव लाने की प्रक्रिया में इसकी भूमिका का विश्लेषण किया। साथ ही विभिन्न समितियों और आयोगों ने स्थानीय स्वायत्त शासन के हाथों में सत्ता सौंपने और विकास प्रक्रिया में जनता की भागीदारी होने पर बल दिया। पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा देने वाला संविधान (73 वां संशोधन) अधिनियम 1992 को भी जाना।

2.10 बोध प्रश्न

1. ग्रामीण विकास के पृष्ठभूमि की विवेचना कीजिए।
2. ग्रामीण विकास की अवधारणा को बताते हुए उसके प्राथमिक उद्देश्य को बताएं।
3. ग्रामीण विकास में नियोजन की क्या भूमिका है।
4. ग्रामीण विकास कार्यनीतियों के प्रकारों का विश्लेषण दीजिए।
5. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध संगठनात्मक व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
6. पंचायती राज व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की रूपरेखा बताए।

2.11 संदर्भ एवं अन्य पुस्तकें

पाण्डेय, बालेश्वर. एवं शुक्ला भारती (2013). *समाज कार्य एक समग्र दृष्टि*. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान.

सेन, अमर्त्य. (2000). *डेवलपमेंट एज फ्रीडम*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

सिंह, र. कु. एवं सिंह, रा. ना. (2008). *ग्रामीण समाजशास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धांत* पटना: जानकी प्रकाशन.

खन्ना, बी. एस. (1991).*दक्षिण एशिया में ग्रामीण विकास*. नई दिल्ली: दीप एवं दीप पब्लिकेशन.

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय(2010) पाठ्य सामग्री, *ग्राम विकास: भारतीय संदर्भ*. नई दिल्ली: सतत विकास विद्यापीठ.

ग्राम शांति मैत्री

चक्रवर्ती, सुखमय. (1977). डेवलपमेंट प्लानिंग: द *इंडियन इकस्पीरियंस* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

Asalam,M. (1993). *IntegratedRuralDevelopmentin Asiaya.*NewDelhi: Manohar.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3 शहरी विकास

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 शहरी विकास की संकल्पना

3.3 शहरी क्षेत्रों की समस्याएं

3.4 शहरी विकास कार्यक्रम

- **3.4.1** नगरीय सामुदायिक विकास कार्यक्रम
- **3.4.2** शहरी आवास योजनाएं
- **3.4.3** जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण मिशन
- **3.4.4** स्वर्ण जयंती शहरी रोज़गार योजना
- **3.4.5** राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन
- **3.4.6** राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन

3.5 सारांश

3.6 बोध प्रश्न

3.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- शहरी विकास की अवधारणा को चिन्हित कर सकेंगे।
- शहरी समस्याओं की पहचान कर सकेंगे।
- शहरी विकास से संबंधित विकास योजनाओं को रेखांकित कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

हमने पूर्व की इकाई में ग्रामीण विकास से संबंधित पहलुओं की चर्चाकी है,अब इस इकाई में हम यह जानेंगे कि शहर या कस्बों किसे कहते है? भारत में शहरी क्षेत्रों की कौन-सी समस्याएं है और उनको कम करने के लिए 1950 के बाद से किस तरह के प्रयास किए जा रहे हैं। शहरीकरण आर्थिक विकास एवं प्रगति का मुख्य घटक है। कस्बों के निवासियों की संख्या वर्तमान में लगभग 377 मिलियन है, यह लगभग 5 मिलियन प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है। शहरी जनसंख्या में पिछले दशक के दौरान2.4 प्रतिशत की वृद्धि दर की तुलना में2001-11 के दौरान 2.76 की वार्षिक वृद्धि दर रिकार्ड की है। इस कारण दिन-ब-दिन शहरी क्षेत्रों में संसाधनों के सीमित होने से जनसंख्या वृद्धि का बढ़ता प्रभाव शहरी क्षेत्रों में समस्या के निर्माण का कारण बन रहा है।

3.2 शहरी विकास की संकल्पना

शहरी क्षेत्र क्या होता है? इस शब्द को दो अर्थों में प्रयोग किया जाता है- जनसांख्यिकीय एवं समाजशास्त्रीय। जनसांख्यिकीय रूप से, संकेंद्रण जनसंख्या के आकार एवं घनत्व पर तथा अधिकांश वयस्क पुरुषों की कार्य-प्रकृति पर होता है। समाजशास्त्रीय रूप से, संकेंद्रण विषय-जातीयता, निर्वैयक्तिकता, आत्मनिर्भरता एवं जीवन की गुणवत्ता पर होता है। भारत में जनसांख्यिकीय एवं आर्थिक संसूचक कस्बा अथवा शहर जैसे विशिष्ट क्षेत्रों को परिभाषित करने में महत्वपूर्ण है। 'कस्बे' की जनगणना परिभाषा 1901-1951 की अवधि में न्यूनाधिक एक ही रही, लेकिन 1961 में एक नई परिभाषा चुनी गई। 1951 तक कस्बे में शामिल थे-

1) एक आवासित स्थान, जिसकी कुल जनसंख्या 5000 व्यक्तियों से कम न हो।
2) प्रत्येक नगरपालिका, नगरनिगम एवं अधिसूचित क्षेत्र जिसका आकार कुछ भी हो।
3) सभी सिविल लाइंस क्षेत्र, जो कस्बे सीमाओं में शामिल न हों।

1961 में कस्बे को पुर्नपरिभाषित किया गया और अनेक आनुभविक परीक्षणों के आधार पर उनका निर्धारण किया गया, जैसे-

1) जनसंख्या कम-से-कम 5000 हो।
2) जनसंख्या घनत्व 1000 प्रति वर्ग मील से कम न हो।
3) कामकाजी जनसमुदाय के तीन-चौथाई लोगों के व्यवसाय कृषि के अतिरिक्त हों।
4) स्थान में कुछ विशेषताएँ एवं सुखसुविधाएं हो, जैसे नव स्थापित औद्योगिक क्षेत्र, बृहद आवासीय बस्तियां एवं पर्यटन के महत्व वाले स्थान व जन-सुविधाएं हों। कस्बे की नई परिभाषा के परिणामस्वरूप ही 1951 व 1961 के बीच भारत में कस्बों की संख्या में कुछ कमी आई। 1961 के आधार को ही 1971, 1981 एवं 1991 की जनगणना में अपनाया गया।

भारत में शहरी क्षेत्रों को दो महानगरों के आधार पर परिभाषित किया गया। पहले, राज्य सरकार विद्यमान बसावट तक नगरपालिका स्थित अर्थात कारपोरशन नगरपालिका परिषद, अधिसूचित कस्बा क्षेत्र समिति या नगर पंचायत आदि प्रदान करते हैं। ऐसे बसावट को शहरी क्षेत्रों की जनगणना परिभाषा में नगरपालिका कस्बों के रूप में जाना जाता है। द्वितीय यदि किसी शहरी बसावट सिविल स्थिति नहीं है, लेकिन जनसांख्यिकीय और आर्थिक मानदंड पूराकरते हैं जैसे 5000 से अधिक की जनसंख्या, घनत्व 4000 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी से अधिक और गैर-कृषि क्षेत्र में 75 प्रतिशत पुरुष श्रमशक्ति लगी हो, उसे जनगणना कस्बे के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। भारत में 2001-11 के दशक में 242 नगरपालिका कस्बों की वृद्धि सहित 4041 नगरपालिका कस्बे हैं। 2011 की जनगणना के डाटा में तमिलनाडु में नगरपालिका कस्बों (721) की उच्चतम संख्या सूचित की गई है उसके बाद उत्तर प्रदेश (646), मध्यप्रदेश (364), महाराष्ट्र (256) और कर्नाटक (220) है।

ज्ञान शांति मैत्री

उक्त शहर या कस्बे की संकल्पना को जानने के बाद हम शहरी विकास की बात करते हैं, जिसका तात्पर्य है कि विकास जीवन के भौतिक गुणवत्ता में पूर्ण सकारात्मक परिवर्तन को सूचित करता हो। इस सकारात्मक परिवर्तन में आर्थिक और सामाजिक पक्ष शामिल हो, अतएव विकास मात्र आर्थिक वृद्धि की ही नहीं, बल्कि आर्थिक संवृद्धि से सृजित लाभों के समान वितरण की भी मांग करता हो। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो शहरी विकास का अर्थ, शहरी जनसंख्या में अर्थिक संवृद्धि का न्यायपूर्ण वितरण हो। इसका तात्पर्य है कि बेहतर स्वास्थ, शिक्षा, उचित आवास, संपूर्ण भौतिक जीवन और सामाजिक कल्याण के माध्यम से जीवन स्तर में सुधार है।

बॉक्स 1 शहरों के प्रकार

शहरों के बृहद सामान्य अभिलक्षणों के आधार पर हम उन्हें निम्न प्रकारों में बाँट सकते हैं:

उत्पादन केंद्र- जमशेदपुर, फीरोजाबाद, कानपुर, कोलार

व्यापार एवं वाणिज्य केंद्र- मुंबई, चेन्नई

राजधानियाँ- दिल्ली, लखनऊ आदि

स्वास्थ्य एवं आमोद-प्रमोद केंद्र- मसूरी, मैसूर

सांस्कृतिक केंद्र- अमृतसर, अजमेर, हरिद्वार,वाराणसी

शहरी स्थानों की वर्तमान अवस्था एवं शहरीकरण का स्थानिक एवं अस्थायी विच्छिन्नताओं के साथ एक लंबा इतिहास रहा है। शहरीकरण एक बार में नहीं हुआ, बल्कि इतिहास में समय-समय पर होता रहा, क्योंकि समाज विभिन्न कालों में शहरीकृत हुए। यह एक चालू प्रक्रिया है और कभी नहीं रुकी तथा अपने आरंभ से शायद ही धीमी पड़ी। सिंधु घाटी में शहरीकरण का प्रथम चरण2350 ईसा पूर्व हड़प्पा सभ्यता से जुड़ा हुआ है। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा नामक दो शहर हड़प्पा संस्कृति में हुए शहरी विकास के चरमोत्कर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह महान शहरी सभ्यता 1500 ईसा पूर्व समाप्त हो गई, संभवतः आर्यों के आगमन के पश्चात।

भारत में शहरी विकास का दूसरा दौर600 ईसापूर्व शुरू हुआ। इस दौरके स्थापत्यविद उत्तर में आर्य और दक्षिण में द्रविड़। इस कालावधि के बाद लगभग 2500 वर्षों तक भारत में शहरीकरण का कमोबेश सतत इतिहास रहा। मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में प्रारंभिक ऐतिहासिक शहरों का बनना उनकी संख्या एवं शहरों के आकार में वृद्धि भी देखी गई। मुगल कालभारत में शहरी विकास की दूसरी खास पहचान रही है। इस समय भारत में अनेक शहर स्थापित हुए है।

ब्रिटिश शासन के शुरुआती दौर में भारतीय शहरीकरण के स्तर में गिरावट देखी गई। इस काल में शहरों के पतन हेतु उत्तरदायी मुख्य कारण, जो इस प्रकार है-

1. भारत की संपन्नता एवं आर्थिक विकास में अंग्रेजों की रुचि का अभाव

2. इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ।

डेढ़ सौ साल के अंग्रेजी शासन के दौरान भारत का शहरी परिदृश्य आमूलचूल परिवर्तन के दौर से गुजरा। अंग्रेजों का भारतीय शहरी परिदृश्य में योगदान मुख्य रूप से निम्न बिंदुओं में व्यक्त किया जा सकता है

1) तीन महानगरीय बंदरगाह शहरों का उद्य (कोलकाता, मुंबई एवं चेन्नई), जो विश्व के अग्रणी उपनिवेश-शहरों के रूप में उभरे हैं।

2) हिल-स्टेशनों (दार्जिलिंग, शिमला, महाबलेश्वर आदि) तथा असम, केरल बागान बस्तियों का निर्माण।

3) सिविल लाइन्स एवं छावनियों की प्रस्थापना। सुरक्षा की दृष्टि से प्रमुख नगरों के निकट बनाई जाती थी।

4) रेलवे एवं आधुनिक उद्योग की शुरुआत, जिसने नए औद्योगिक नगरों के निर्माण की ओर प्रवृत किया, जैसे- जमशेदपुर, धनबाद आदि।

5) शहरी सुख-सुविधाओं एवं शहरी प्रशासन में सुधार।

नगरीकरण की तीव्र प्रक्रिया ने हमारी सामाजिक-आर्थिक संरचना एवं सामाजिक व्यवस्था को इस सीमा तक प्रभावित किया है कि हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आयाम ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक एवं नैतिक मूल्य भी परिवर्तित हो गए हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया ने जहां एक ओर परंपरागत संकीर्ण मूल्यों, व्यवहारों व मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाकर जीवन को आधुनिक सुखसुविधायुक्त और आरामपूर्ण बनाया है; वहीं दूसरी ओर समस्याओं की एक लंबी कतार खड़ी कर दी है। भूमि तथा आवास की कमी, सफाई व स्वच्छता सेवाएं, स्वास्थ्य सेवाएं, पीने के पानी, जन-सुविधाओं, शिक्षा, स्थानीय परिवाहन आदि पर भारी तनाव, मलिन बस्तियों में बढ़ोत्तरी, मनोरंजन स्थलों का अभाव, बेरोज़गारी, गरीबी, भुखमरी, व्यक्ति व पारिवारिक विघटन, मानसिक तनाव व चिंता, प्रदूषण आदि न जाने कितनी ऐसी समस्याओं को इसने जन्म दिया है जिनसे वर्तमान नगरीय समुदाय जूझ रहा है। साधारणतः देखा जाए तो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास, राष्ट्रीय धन का असमान वितरण, भ्रष्टाचार, प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष, आर्थिक संकट, औद्योगिक झगड़े, हिंसा, गतिशीलता में वृद्धि, सामुदायिक विघटन आदि समस्याओं का मूल नगरीय संस्कृति तथा संस्कारों में छिपा है। इन समस्याओं से निपटने के लिए ज्ञान की विभिन्न शाखाएं व संस्थाएं अपने-अपने स्तर पर प्रयास कर रही हैं।

शहरी विकास का उद्देश्य प्रत्येक नगरवासी की आर्थिक जरूरतों की पूर्ति, उचित स्वास्थ्य सेवाएं, संतोषप्रद जीवन निर्वाह स्तर के अतिरिक्त सहनागरिकों के साथ सामाजिक सामंजस्य, उचित पर्यावरण, उपयुक्त जन सुविधाओं तथा मनोरंजन युक्त जीवन के अवसर प्रदान करना है।

3.3 शहरी क्षेत्रों की समस्याएँ

1) **आवास एवं मलिन बस्तियाँ**: शहरी क्षेत्रों में आवास का बेहद अभाव होता है और काफ़ी उपलब्ध निवास-स्थान गुणात्मक रूप से निम्न दर्जे का होता है। शहरीकरण या नगरीकरण के परिणामस्वरूप गावों से शहरों की ओर जनसंख्या का पलायन होता है। फलस्वरूप अनेक चुनौतियां एवं समस्याएं सामने आती हैं।2011 की जनगणना के अनुसार देश में31.16 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों में निवास करती है। दस लाखसे अधिक आबादी वाले शहर 468 हो गए हैं। इस बढ़ते शहरीकरण के बावजूद हमारी शहरी आमदनी सापेक्ष रूप से कम हुई है। (शर्मा, 2015) जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण की तीव्र दर से और आवासीय जनसमूहों में आनुपातिक रूप से अपर्याप्त वृद्धि के कारण लाखों लोग इतना अधिक किराया देतेहै कि जो उनके बूते से बाहर होता है। हमारी लाभोन्मुखी अर्थव्यवस्था में निजी विकास और कालोनाइजर गरीबों तथा निम्न मध्य वर्गीय लोगों के लिए शहरों में मकान बनाने में कम लाभ देखते हैं, अतः वे अमीरों की आवासीय आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं,क्योंकि उसमें अधिक पैसा दिखाई पड़ता है। शहरी क्षेत्रों की ओर बड़े पैमाने पर प्रवसन के चलते अनेक लोगों को लगता है कि उनके पास एकमात्र विकल्प मलिन-बस्तियों की निकृष्ट दशाओं में रहना ही है। मलिन यानि गंदी बस्तियों की पहचान होती है। निम्न स्तर आवास, अति-संकुलन तथा बिजली, संवातन, सफाई प्रबंध, सड़कों व पेय जल आदि सुविधाओं का अभाव। रोगों, पर्यावरण प्रदूषण, नैतिक पतन एवं अनेक सामाजिक तनावों की जन्म स्थली बन जाते हैं।

   वर्तमान में भारत की लगभग 40 प्रतिशत-बस्ती जनसंख्या शहरवार इस प्रकार- दिल्ली अपनी जनसंख्या का 44 %, मुंबई 45 %, कोलकाता 42 % और चेन्नई 30 %।

   जनगणना के उद्देश्य से मलिन बस्तियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:-

1) अधिसूचित मलिन बस्तियां (Notified Slums)
2) मान्यता प्राप्त मलिन बस्तियां (Recognized Slums)
3) अभिज्ञान मलिन बस्तियां (Identified Slums)

2) **अति संकुलन:** मुंबई, कोलकाता, पुणे एवं कानपुर जैसे भारत के प्रमुख शहरों में85 से 90 प्रतिशत के बीच लोग एक अथवा दो कमरे घरों में रहते हैं। कुछ घरों में एक कमरे में पाँच से छह लोग तक रहते हैं। अति संकुलन विसामान्य व्यवहार को बढ़ावा देता है, रोग फैलता है और मानसिक रुग्णता, मादक पेय सेवन एवं दंगों हेतु दशाओं को जन्म देता,है।सघन शहरी जीवन का एक प्रभाव के परिणामस्वरूप लोगों में उदासीनता एवं महत्वहीनता दिखायी देती है।

3) **शहरी गरीबी:** शहरी गरीबी आज के नगरों की प्रमुख समस्या है। शहरी जनसंख्या का एक तिहाई भाग गरीबी रेखा के नीचे है। देशभर में निर्धनों की संख्या घटने के बावजूद निर्धन और धनी व्यक्तियों की आय में अंतर तेज़ी से बढ़ रहा है।NSSO द्वारा जारी आंकड़े दर्शाते हैं कि सर्वाधिक

धनी 5 प्रतिशत लोगों द्वारा उपभोग व व्यय वर्ष 2000 और 2012 के मध्य 60 प्रतिशत बढ़ा है, जबकि निर्धनतम 5 प्रतिशत लोगों के मामले में यह वृद्धि 30 प्रतिशत ही रही है। शहरी क्षेत्रों में सर्वाधिक धनी वर्ग का व्यय 63 प्रतिशत बढ़ा है, जबकि निर्धनतम वर्ग के व्यय में 33 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई है। (टाइम्स ऑफ इंडिया, 28 जुलाई 2013) योजना आयोग की छठी पंचवर्षीय योजना के प्रपत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि गरीबी रेखा से तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति भोजन कि न्यूनतम आवश्यकता के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में रुपए 75 प्रति व्यक्ति माह तथा शहरी क्षेत्रों में रुपए 88 प्रति व्यक्ति माह खर्च करने से है। इस आधार पर देखने के बाद भी गरीबी की जनसंख्या बहुत अधिक है।

4) **जन-सुविधाएं:** मानवों के किसी भी समुदाय के स्वस्थ जीवनयापन के लिए मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा एवं मकान के साथ-साथ शुद्ध-स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण का होना भी आवश्यक है। किसी भी शहर या कस्बे में पीने के पानी, शौचालय, गंदे पानी के बहाव की व्यवस्था, बिजली, प्रकाश, खेलने के पार्क, कूड़ा-करकट के निस्तारण आदि की उचित व्यवस्था आवश्यक होती है। जनोपयोगी सुविधाओं को प्रदान किया जाना तथा प्रबंध नगरीय प्रशानिक संस्थाओं के मध्यम से होता है। स्वच्छता, सफाई सेवाओं, पर्यावरण परिस्थितियों तथा आधारभूत सेवाओं की स्थिति देश में संतोषजनक नहीं है। जन सुविधाओं की समस्या मकानों की पुरानी संरचना तथा इनका निम्न स्तर होने के कारण समस्याएं और गंभीर होती जा रही है। इसके अतिरिक्त मुहल्ले तथा कॉलोनियों में सड़के, नालियाँ तथा गलियों में प्रकाश व्यवस्था की समस्या है। सार्वजनिक शौचालय, स्नानागार, खेलकुद के लिए पार्क, आवागमन के लिए खुली सड़के, तथा रास्ते, सार्वजनिक यातायात व्यवस्था तथा उच्च सार्वजनिक सुविधाओं का अभाव महानगरों से लेकर छोटी श्रेणी के शहरों में सामान्य बात है।

5) **अशिक्षा, अज्ञानता तथा अस्वस्थता:** शहरों में रहने वाली जनसंख्या को आर्थिक रूप से दो भिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- आर्थिक रूप से संपन्न तथा आर्थिक रूप से पिछड़े। आर्थिक रूप से पिछड़े जनसंख्या अशिक्षित तथा अज्ञानता के जाल से जकड़ी हुई है। नगरों की आबादी में अकुशल श्रमिक, महिला मज़दूरों तथा बाल श्रमिकों की संख्या तकनीकी या कुशल श्रमिकों की तुलना में बहुत अधिक होती है। नगरीय क्षेत्रों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं में निरक्षरता और भी ज़्यादा पाई जाती है। मलिन बस्तियों में तो यह प्रतिशत अत्यधिक है। अशिक्षा और अज्ञानता का जाल अस्वस्थता के साथ ही एक ऐसे च्रकव्यूह को जन्म देता है जिससे निकालना असंभव नहीं, बल्कि दुष्कर अवश्य होता है।

6) **परिवहन और यातायात:** यातायात एवं परिवहन हेतु नियोजित एवं पर्याप्त व्यवस्थाओं का अभाव भारतीय शहरी केंद्रों में एक अन्य समस्या है। अधिकांश लोग बसों और टेंपो का प्रयोग करते हैं। दुपहिया वाहनों एवं कारों की बढ़ती संख्या यातायात समस्या को और जटिल कर देती

है। ये वायु प्रदूषण को भी जन्म देती है। इसके अतिरिक्तमहानगरीय शहरों में चलने वाली बसों की संख्या पर्याप्त नहीं है और यात्रियों को यात्रा के लिए घंटों इंतजार करना पड़ता है।

7) **व्यक्तिगत एवं पारिवारिक विघटन:** महानगर की भौतिक संस्कृति में अधिकांश व्यक्ति टुकड़े टुकड़े में जीते हैं रोज मरमरकर जीते हैं। जीवनशैली की यह प्रक्रिया व्यक्ति के महानगरीय जीवन में न जाने कितनी करवट लेती है। भागता हुआ आदमी, हांफता हुआ आदमी, संघर्षों से पराजित व्यक्ति, समाज और अपने से विद्रोह करता है। वह उन मार्गों पर चलता है, जिस पर चलने की समाज स्वीकृति नहीं देता। वह उन व्यवहारों को स्वीकार नहीं करता, जो समाज और व्यक्ति के लिए हानिकारक है। समाज के बने-बनाए व्यवहार के प्रतिमान के विरुद्ध जब कोई व्यक्ति कार्य करने लगता है तो उन व्यवहार के विचलन से उसके व्यक्तित्व में नकारात्मक चीज़ें उत्पन्न होती हैं। वह उन गतिविधियों को करने लगता है, जो उसके व्यक्तित्व को गलत दिशा में ले जाती हैं। इस प्रकार के व्यवहार उस समय उत्पन्न होते हैं, जब व्यक्ति की आवश्यकताएँ, महत्वाकांक्षाएँ तमाम संघर्षो के पश्चात भी पूर्ण नहीं होती। तब उसके व्यवहार में ऐसा बदलाव आता है जो उसे बुरे मार्गों पर ले जाता है, जैसे- जुआ खेलना, शराब पीना, बात-बात पर झगड़ा करना, उचित अनुचित में भेद न करना। *आर. जायसवाल* नगरीय जीवन और विचलन के संबंध में लिखते हैं कि नगरीय जीवन का अस्तित्व सदियों से पाया जाता रहा है, लेकिन पिछली तथा इस शताब्दी में नगरीयता का विकास जिस तीव्रता से हुआ है, वह केवल पाश्चात्य राष्ट्रों के लिए नहीं वरन एशियाई और अफ्रीकी विकासशील देशों के लिए भी एक समस्या बन गया है।

रोज़ के संघर्ष भरे जीवन पद्धति में अधिकांश लोग नगरीय जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाने के कारण तनाव, चिंता, कुंठा से घिर जाते हैं और मद्यपान, नशीली दवाओं का सेवन, आत्महत्या आदि आपराधिक प्रवृत्तियों की ओर झुक जाते हैं। नगरीकरण ने संयुक्त परिवार व्यवस्था को विघटित करके व्यक्तिगत स्वतंत्रता, व्यक्तिवाद तथा अनौपचारिकता में वृद्धि की है। परिणामस्वरूप दांपत्य जीवन में कलह, तलाक, बच्चों के लालन-पालन में उपेक्षा, पश्चिमी संस्कृति की ग्राह्यता बढ़ती जा रही है, जो अन्य समस्याओं को जन्म देती है।

3.4 शहरी विकास कार्यक्रम

3.4.1 नगरीय सामुदायिक विकास कार्यक्रम:

नगरीय सामुदायिक विकास का निर्माण नगरीय समस्याओं के समाधान की एक संभावित विधि के रूप में हुआ था, जिसका आधार लोगों की समस्याओं का समाधान स्वयं उनके प्रयासों तथा भागीदारी से किया जाना था, जिसमें नगरीय नियोजन तथा विकास के लिए जनसंख्या नीति, क्षेत्रीय विकास, सत्ता का विकेंद्रीकरण जैसी कई विधियों को स्थान दिया गया। नगरीय सामुदायिक विकास के अंतर्गत नगरीय जीवन के संदर्भ में प्रभावशाली सामुदायिक भावना का विकास तथा दूसरी

सामुदायिक एकता और परिवर्तन के लिए स्वयं सहायता तथा नागरिक भागीदारी की अवधारणा पर निर्भर था।

भारतवर्ष में नगरीय सामुदायिक विकास की पहली योजना फोर्ड फाउंडेशन की सहायता से वर्ष1958 में दिल्ली शहर में प्रारंभ की गई थी, इसके बाद अहमदाबाद 1962, बड़ौदा 1965, कोलकाता 1966 में भी ऐसी प्रारंभिक परियोजनाएं शुरू की गई। नगरीय सामुदायिक विकास की इस केंद्रीय योजना में कार्यक्रम के नियोजन से लेकर क्रियान्वयन तक के सभी स्तरों पर लोगों की भागीदारी की आवश्यकता पर बल दिया था, ताकि लोग अपनी जरूरतों तथा समस्याओं के अनुसार कार्यक्रम बना सकें। इन परियोजनाओं में उस क्षेत्र की आवश्यकताओं तथा दशाओं को ध्यान में रखते हुए ही कार्यक्रम को चलाए जाने की बात की गई थी। साथ ही यह भी कहा गया कि यदि प्रयासों को कुछ उन्हीं कार्यक्रमों पर केंद्रित किया जाए, जिनका प्रभाव ज़्यादा हो तो अधिक उपयुक्त होगा। योजना में विभिन्न गतिविधियों-कार्यक्रमों को छह श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, जो निम्नवत है-

1) भौतिक सुधार तथा नागरिक सुविधाएं
2) स्वास्थ्य एवं सफाई
3) शैक्षिक कार्यक्रम
4) सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मनोरंजनात्मक कार्यक्रम
5) आर्थिक कार्यक्रम
6) मिश्रित-विविध कार्यक्रम

3.4.2 शहरी आवास योजनाएं

1) वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना:

वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना का उद्देश्य नगरीय क्षेत्र में रहने वाले ऐसे गरीब व्यक्तियों को आवासों का निर्माण करना है, जिनके पास आवास नहीं हैं। नगरीय क्षेत्रों की मलिन बस्तियों में गरीबी रेखा से नीचे रह रहे तथा कम आय वर्ग के परिवार पात्र होंगे, जिनके पास आवास जीर्ण-क्षीर्ण स्थिति में है या आवास की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। इसके अंतर्गत पहली प्राथमिकता गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों को दी जाती है। लाभार्थी का चयन जिला नगरीय विकास अभिकरण (नगर निगम/ नगर पालिका/ नगर पंचायत) के सहयोग किया जाएगा। चयन में ऐसे परिवारों को प्राथमिकता दी जाएगी, जिसकी मुखिया महिला हो। साथ ही आवास की भूमि पति-पत्नी दोनों के नाम से या पत्नी के नाम से होना चाहिए। यदि आवास निर्माण हेतु लाभार्थी के पास भूमि उपलब्ध नहीं हैं, तो नगरीय विकास अभिकरणों तथा अन्य माध्यमों से निःशुल्क भूमि उपलब्ध कराई जाती है।

वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना के अंतर्गत लाभार्थियों को योजना में आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है वे निम्नलिखित हैं-

i) अनुसूचित जाति/जनजाति – 50 प्रतिशत
ii) पिछड़ा वर्ग– 30 प्रतिशत
ii) अन्य कम आय (सामान्य सहित)- 15 प्रतिशत
iv) विकलांग- 5 प्रतिशत

2) **एकीकृत आवास एवं स्लम विकास:** यह कार्यक्रम 3 दिसंबर 2005 को शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम में वाल्मीकि-अंबेडकर आवास योजना और राष्ट्रीय स्लम विकास योजना को सम्मिलित किया गया है। इस योजना की विशेष बात यह है कि कुछ चुनिंदा क्षेत्रों में मलिन बस्तियों के निवासियों के लिए पर्याप्त आश्रय तथा बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराना है। इसके साथ ही अच्छा वातावरण तैयार करना भी इसका उद्देश्य है। इस कार्यक्रम के प्रारंभ होने से लेकर 30 जून 2010 तक 807 नगरों में 5,02,935 आवासीय ईकाइयों के निर्माण के लिए 946 परियोजनों के अंतर्गत 3,529.27 करोड़ रुपए जारी किए गए। शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सुविधाओं और एकीकृत आवास एवं स्लम विकास कार्यक्रम के अंतर्गत कुल36,088.62 करोड़ रुपए की परियोजना लागत में 1421 परियोजनाओं केलिए 19910.58 करोड़ रुपए कि केंद्रीय सहायता प्रदान कि गई।(भारत, 2011)

3) **सबके लिए घर:** यह केंद्र सरकार कि महत्वपूर्ण योजनाओं में से एक है। बढ़ती जनसंख्या के साथ सरकार के सम्मुख एक गंभीर चुनौती है कि इतनी बड़ी जनसंख्या आवास विहीन है और औद्योगिक महानगरों की मलिन बस्तियों में निवास करती है। इस निर्धन वर्ग के लिए आवास कि सुविधा होना उनकी कार्य क्षमता को बढ़ाना है और अन्य दैनिक समस्याओं से मुक्ति दिलाना है। आवास क्षेत्र पर ज़ोर देते हुए सबके लिए आवास उपलब्ध कराने की नीतियाँ बनाई गई हैं। वर्ष 2007 में लगभग 2 करोड़ 47 लाख नगरीय आवास की कमी थी। इनमें से 99 प्रतिशत लोगों आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग एवं निम्न आय वर्ग से थे।2008 में सरकार ने एक ब्याज सहायता योजना की स्वीकृति दी है। 11 वीं योजना के दौरान 1,00,000 रुपए ऋण के लिए प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत ब्याज की छुट भी दी गई साथ ही ऋण वापसी का समय 15-20 वर्ष तक रखा गया है(भारत, 2011)।

3.4.3 जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण मिशन (JNNURM)

इस मिशन के अंतर्गत प्रधानमंत्री द्वारा3 दिसंबर 2005 को शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराने के प्रयास शुरू किए गए हैं। इस कार्यक्रम को65 नगरों में कार्यान्वित किया गया है। दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की परियोजना लागत का50 प्रतिशत भाग केंद्र सरकार वहन करती है। इस अभियान की समय अवधि 7 वर्ष थी, लेकिन इसे 2014 तक बढ़ा दिया गया, ताकि चल रही परियोजनाओं और सुधारों को पूरा किया जा सके।छोटे नगरों/शहरों को, लघु और मध्यम शहरों के लिए शहरी ढाँचागत संरचना विकास प्रयोजना(UIDSSMT)

तथा एकीकृत आवास एवं स्लम विकास कार्यक्रम (IHSDP) के अंतर्गत शामिल किया गया। JNNURM, के घटकों बीएसयूपी और आईएचएडीपी ने आवास, बुनियादी सुविधाओं और संबंधित नागरिक सुविधाओं के लिए परियोजनाओं की मदद से स्लमों के एकीकृत विकास द्वारा शहरी गरीब को उपयोगी समाग्री उपलब्ध करने पर ज़ोर दिया गया।

शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सुविधाएं (बीएसयूपी): शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सुविधाओं के अंतर्गत मलिन बस्तियों के आवास तथा ढांचागत परियोजनाओं का विकास किया जाता है। इसमें जलपूर्ति, सीवरेज, सामुदायिक शौचालय, स्नानघरों आदि के कार्यक्रम शामिल है। मलिन बस्तियों के दूषित पर्यावरण में सुधार करना एवं ठोस कचरा प्रबंधन करना भी इस कार्यक्रम में शामिल है।

इस मिशन की उपलब्धि: संचयी भौतिक और वित्तीय विकास (25.6.2012 के मुताबिक)

संचयी भौतिक विकास	बीएसयूपी	आईएचएडीपी	कुल
स्वीकृत परियोजनाओं की संख्या	527	1064	1611
शामिल राज्यों/संघ राज्यों की संख्या	31	32	63
शामिल नगरों/शहरों की संख्या	65	928	993
स्वीकृत डीयू की संख्या	10,31,616	5,68,871	16,00,487
पूरे किए गए डीयू की संख्या	4,42,143	1,77,849	6,199,992
विकासरत डीयू की संख्या	2,10,216	1,31,858	3,42,074
अधिकृत डीयू की संख्या	2,45,020	1,30,171	3,75,191

(स्रोत- भारत 2014)

संचयी आर्थिक विकास	प्रतिबद्धता एवं निर्गत राशि	(करोड़ रुपए में)	
	बीएसयूपी	आईएचएसडीपी	कुल
7-वर्षीय विनियोजन (2005-12)	16,356.35	6,828.31	23,184.66
एसीए प्रतिबद्धता	15,089.31	7,747.31	22,836.62
परियोजना के लिए स्वीकृत कुल लागत	30,407.84	12,048.50	42,456.34
कुल निर्गत एसीए	8,783.75	5,167.76	13,951.51

(स्रोत- भारत 2014)

3.4.4 स्वर्ण जयंती शहरी रोज़गार योजना (SJSRY)

ज्ञान शांति मैत्री

इस योजना का दिसंबर 1997 में क्रियान्वयन किया गया है, जिनमें तीन शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों- नेहरू रोज़गार योजना (NRY), शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सेवाएं योजना (UBSP) तथा प्रधानमंत्री एकीकृत शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (PMIUPEP) को एक में मिला दिया गया है। इसका उद्देश्य स्वरोज़गार उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहन देना या मज़दूरी रोज़गार के सृजन के द्वारा गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले नौवीं कक्षा तक शिक्षित शहरी बेरोज़गारों या अर्धरोज़गारों को रोज़गार प्रदान करना है। इसकी वित्तीय सहायता केंद्र और राज्य सरकारों क्रमशः 75:25 अनुपात में होती है। यह योजना गरीब महिलाओं को ऊपर उठाने पर विशेष बल देती है। इस उद्देश्य से एक विशेष प्रकार का कार्यक्रम-शहरी क्षेत्रों में महिलाओं एवं बच्चों का विकास (DWCUA) के कार्यक्रम चलाती है, जिसके अंतर्गत स्वरोज़गार उद्यम स्थापित करने वाले शहरी गरीब महिलाओं के समूह को परियोजना की लागत के50 प्रतिशत तक सब्सिडी दी जाती है।

2010-11 के बजट में इसके अंतर्गत आवंटित राशि को3060 करोड़ रुपए से बढ़ाकर 5400 करोड़ कर दिया गया है। सरकार ने अप्रैल 2009 में SJSRY को पुर्नव्यवस्थित किया है। व्यवस्थित रूप में क्रियान्वित योजना के पाँच बड़े उपक्रम हैं-

I. **शहरी स्व-रोज़गार कार्यक्रम (USEP)-** लघुतम उद्यम लगाने के लिए व्यक्ति (हर) शहरी गरीब को लक्ष्य बनाना।

II. **शहरी महिला स्व-सहायता कार्यक्रम (UWSP)-** समूह- उद्यमों को लगाने और उन्हें किफायती और खाते में धन जमा करने जैसी गतिविधियों के लिए आवर्ती ब्याज अदाएगी निधि के माध्यम से सहायता उपलब्ध करा कर शहरी गरीब महिलाओं के स्वसहायता समूहों को लक्ष्य बनाना।

III. **रोज़गार को बढ़ावा देने के लिए शहरी गरीबों के बीच क्षमता प्रशिक्षण (STIP)-** उच्च स्तरीय प्रशिक्षण देने के लिए शहरी गरीब को लक्ष्य बनाना, जिससे स्व-रोज़गार तथा बेहतर वेतन वाली नौकरी के लिए उनकी नियोजन क्षमता को बढ़ाया जा सके।

IV. **शहरी वेतन रोज़गार कार्यक्रम (UWEP)-** सामाजिक और आर्थिक रूप से सार्वजनिक परिसंपत्ति के लिए उनके शहरी गरीब के श्रम का इस्तेमाल कर शहरी गरीब की सहायता करना। यह उन शहरों के लिए है जहाँ आबादी 5 लाख से कम है।

V. **शहरी सामुदायिक विकास तंत्र (UCDN)-** शहरी गरीब की स्व-प्रबंधित सामुदायिक संरचनाओं में खुद को संगठित करने में मदद करना ताकि गरीबी के मुद्दों का सामना करने के लिए वह संयुक्त ताकत अर्जित कर सके और शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करने में योगदान कर सकें।

SJSRY की भौतिक एवं आर्थिक उन्नति (1.12.1997 से 2011-12 तक)

	राज्यों/संघ राज्यों को निर्गत कुल राशि	**करोड़ रुपए में**
		4136.76
1	SJSRY के अंतर्गत शामिल शहरों की कुल संख्या	3,979
2	व्यक्तिक लघु उद्यम (USEP) लगाने हेतु मदद प्राप्त लाभार्थी	1,215,005
3	क्षमता प्रशिक्षण पाने वाले लाभार्थियों (STIP) की संख्या	2,526,775
4	समूह लघुतम उद्यम लगाने हेतु मदद प्राप्त लाभार्थियों की संख्य	539,963
5	निर्मित किफायत व बचत समितियों हेतु मदद प्राप्त लाभार्थियों की संख्या	537,749

(स्रोत-भारत 2014)

3.4.5 राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (NUHM)

शहरी निर्धनों को स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करने के लिए राष्ट्रीय शहरी मिशन (National Urban Health Mission) लागू किया गया। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत उप मिशन के रूप में इसे लागू करने का प्रस्ताव को केंद्रीय मंत्रिमंडल ने1 मई, 2013 को मंजूरी प्रदान की। इस मिशन को 50,000 से अधिक जनसंख्या वाले 779 शहरों एवं कस्बों में लागू किया जाएगा तथा 7.75 करोड़ से अधिक जनसंख्या इससे लाभान्वित होगी। इसके अंतर्गत शहरी जनसंख्या को बेहतर प्राथमिक सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली के ज़रिए गुणवत्ता वाली स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएगी। मिशन के तहत 50 हजार से 60 हजार की जनसंख्या पर एक शहरी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (Urban Primary Health Centre) स्थापित करने का प्रस्ताव है, बड़े शहरों में पाँच से छह प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रो के लिए एक शहरी सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (Urban Community Health Centre) स्थापित करना, दस हजार की जनसंख्या पर सहायक नर्स मिडवाइफ (Auxiliary Nurse Mid wife) और 200 से 500 परिवारों के लिए मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता आशा (ASHA-Accredited Social Health Activist) की नियुक्ति का प्रस्ताव भी मिशन के तहत किया गया है। इस मिशन के संचालित होने से शिशु और मातृ मृत्युदर में कमी आएगी।

3.4.6 राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (National Urban Live lihood Mission):

शहरी निर्धनता निवारण के लिए आवास एवं शहरी निर्धनता निवारण मंत्रालय की राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (NULM) योजना की शुरुआत की जा चुकी है। स्वर्ण जयंती शहरी रोज़गार योजना (SJSRY) के स्थान पर लाए जाने वाले इस कार्यक्रम के तहत शहरी निर्धनों के लिए कौशल प्रशिक्षण, नवोन्मेष विकास, सवेतन रोज़गार एवं स्वरोज़गार के अवसरों में वृद्धि पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा, *सपोर्ट टु अर्बन स्ट्रीट वेंडर्स* तथा *शैल्टर फॉर अर्बन होमलैस* नाम की दो उप योजनाएं इस नए प्रस्तावित मिशन में शामिल होंगी। सितंबर 2013 में स्वर्ण जयंती शहरी रोज़गार

योजना को राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन के रूप में नामांकित करने हेतु ज्ञापन जारी कर दिया था।

3.5 सारांश

इस इकाई में हमने कस्बे या शहर की जनसांख्यिकीय एवं समाजशास्त्रीय परिभाषा को समझा तथा शहरी विकास की अवधारणा से अवगत हुए। शहरी क्षेत्रों में जीवनयापन करने में आनेवाले समस्याओं की चर्चा की है। साथ ही हमने शहरी विकास से संबंधित नगरीय सामुदायिक विकास कार्यक्रम जिसका आधार लोगों की समस्याओं का समाधान स्वयं उनके प्रयासों तथा भागीदारी से किया जाना संभव है। समाज कार्य सामुदायिक संगठन प्रविधि के अंतर्गत शहरी समुदायों के विकास हेतु बेहतरी से कार्य कर सकते हैं। सरकार द्वारा चलाई जाने वाली विभिन्न योजनाओं के जरिए सामाजिक कार्यकर्ता शहरी जनसंख्या को संसाधन उपलब्धि में सहायता कर सकते हैं। शहरी विकास तथा स्लम क्षेत्रों के विकास में समाज कार्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3.4 बोध प्रश्न

1. शहर/ कस्बे को परिभाषित करते हुए शहरी विकास की अवधारणा की चर्चा कीजिए।
2. शहरी क्षेत्रों के समस्याओं का वर्णन करें।
3. शहरी विकास से संबंधित आवास योजनाओं का विवरण दें।
4. शहरी विकास के लिए बने जवाहर लाल नेहरू शहरी नवीनीकरण मिशन संक्षेप में उल्लेख करें।
5. राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन की चर्चा कीजिए।

3.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, गिरीश (संपा.) (2013). *समाज कार्य के क्षेत्र.* लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

सिंह, वी. एन. एवं सिंह, जे. (2015). *नगरीय समाजशास्त्र.* नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन्स.

भारत 2014 (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ). प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार.

शर्मा, जी. एल. (2015). *सामाजिक मुद्दे.* नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन्स.

खंड - 3

वंचित वर्गों का विकास

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 1 अनुसूचित जाति

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 जाति की संकल्पना
1.3 अनुसूचित जातियों की संवैधानिक स्थिति
1.4 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग
1.5 अनुसूचित जातियों के विकास
1.6 सारांश
1.7 बोध प्रश्न
1.8 संदर्भ एवं अन्य पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- जाति की अवधारणा को समझ कर उस की व्याख्या कर पाएंगे।
- जाति की उत्पत्ति के सिद्धांत को रेखांकित कर सकेंगे।
- अनुसूचित जातियों के संवैधानिक स्तर की व्याख्या कर पाएंगे।
- अनुसूचित जातियों के विकास से संबंधित मुख्य पहलुओं का विवरण दे सकेंगे।
- अनुसूचित जातियों के विकास से संबंधित सेवाओं तथा उनके प्रतिनिधित्व के विषय में जान पाएंगे।

1.1 प्रस्तावना

'दलित' हजारों वर्षों तक अस्पृश्य समझी जाने वाली उन तमाम जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयुक्त होता है, जो हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित है। संवैधानिक भाषा में इन्हें ही 'अनुसूचित जाति' कहा गया है। 2011 के जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जातियों की कुल जनसंख्या 20,13,78,086 है। उसमें से पुरुष जनसंख्या 10,35,35,165 तथा स्त्रियों की जनसंख्या 9,78,42,921 है। भारत के कुल जनसंख्या में लगभग 16 प्रतिशत आबादी दलितों की है अनुसूचित जाति भारतीय समाज का सर्वाधिक उपेक्षित एवं वंचित्त हिस्सा है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए, तो उन्होंने शोषण की पराकाष्ठा, अपमान, तिरस्कार एवं अमानवीय व्यवहार का सामना किया है। सदियों तक

उन्हें अस्पृश्य माना गया और अमानवीय परिस्थितियों एवं गरीबी में रहने के लिए मजबूर किया गया। अस्पृश्यता जाति व्यवस्था का सबसे अधिक क्रूर तत्त्व है।

भारतीय जाति-प्रथा अपनी तरह की एक विचित्र और रोचक संस्था है। धर्म की सीमा से बाहर हिंदुओं का, जो कुछ भी अपनापन है, उसकी अनोखी अभिव्यक्ति जाति-प्रथा है।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने उनकी सामाजिकआर्थिक स्थिति सुधारने के लिए विशेष दिलचस्पी ली। स्वतंत्र भारत का संविधान धर्म, जाति, संप्रदाय एवं नस्ल के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध करता है। अस्पृश्यता जैसी घृणित प्रथा को भी समाप्त कर दिया गया। समाज द्वारा अस्पृश्य एवं निम्न जाति समझे गए सदस्यों को राष्ट्र के समान नागरिक का दर्जा दिया गया। इसके अलावा उन्हें 'अनुसूचित जातियों' का संवैधानिक दर्जा दिया गया। इन जातियों की सुरक्षा एवं उन्नति के लिए संविधान द्वारा विभिन्न प्रावधान किए गए।

1.2 जाति की संकल्पना

जाति(Cast) सामाजिक विज्ञान से जुड़ी एक अवधारणा है। उसका नामकरण भारत पर नज़र डालने वाले पश्चिमियों ने औपनिवेशिक काल के प्रारंभिक दौर में किया था। कुछ विद्वान भारतीय जाति व्यवस्था को 'भारतीय संस्कृति' को परिभाषित करने वाला एक मुख्य कारक मानते हैं। जाति को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई जाति की परिभाषाओं को देखेंगे साथ ही जाति की विशेषताएं एवं उत्पत्ति को भी देखेंगे।

सर हरबर्ट रिजले ने जाति को परिभाषित करते हुए लिखा है, *"जाति ऐसे परिवारों का समुच्चय है, जिनके नाम एक से हों, जो एक ही वंश से संबंध रखते हों जिनके मिथकीय/काल्पनिक पूर्वज, चाहे वे मानवीय हों या अलौकिक, एक ही हों, जो एक ही पदानुक्रम व्यवस्था का पालन करते हों तथा जिसका अनुपालन ऐसे लोग करते हों, जो एक जातीय समुदाय का निर्माण कर सकने में सक्षम हों।"*

सी. एच. कुले ने जाति को परिभाषित हुए कहा है कि *"जब एक वर्ग विशेष मुख्य रूप से वंशागत पदानुक्रम व्यवस्था पर आधारित हो, तो हम उसे जाति का नाम दे सकते हैं।"*

रॉबर्ट बीरस्टीड ने जाति प्रथा की एक सामान्य परिभाषा देते हुए लिखा है, *"जब वर्ग प्रथा का ढांचा एक या एक से अधिक विषयों पर पूर्णतया बंद होता है तो उसे जाति प्रथा कहते हैं।"*

मैकाइवर एवं पेज के जाति के संबंध में विचार है कि *"जब प्रस्थिति (Status) पूर्वनिश्चित तथा लोगों को इसमें सुधार की कोई संभावना नज़र न आए तब वर्ग जाति का रूप धारण कर लेता है।"*

श्री केतकर ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है, *"जाति एक सामाजिक समूह है, जिसकी दो विशेषताएँ हैं- एक जाति की सदस्यता उन व्यक्तियों तक सीमित है, जो कि जाति विशेष के सदस्यों से ही पैदा हुए हैं और इस प्रकार उत्पन्न होने वाले सभी व्यक्ति जाति में आते हैं, दो- जिसके सदस्य एक अविछिन्न सामाजिक नियमों के द्वारा अपने समूह के बाहर विवाह करने से रोक दिए गए हैं।"*

उपरोक्त विवेचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि जाति मुख्यतः जन्म के आधार पर सामाजिक संस्तरण और खंड विभाजन की वह गतिशील या कुछ प्रतिबंधों कोअपने सदस्यों पर लागू करती है।

उक्त विद्वानों की परिभाषाओं से जाति प्रथा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत है

श्री एन. के दत्ता ने जाति प्रथा की छह विशेषताओं का उल्लेख किया है

1) एक जाति के सदस्य जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते।
2) प्रत्येक जाति में दूसरी जातियों केसाथ खाने-पीने के कुछ-न-कुछ प्रतिबंध होते हैं।
3) अधिकांश जातियों के पेशे निश्चित होते हैं।
4) जातियों में उँच-नीच का संस्तरण है, जिसमें ब्राह्मण जाति की स्थिति सर्वमान्य रूप से सबसे ऊपर है।
5) जन्म ही एक व्यक्ति की जाति को जीवन-पर्यंत निश्चित करता है, केवल जाति से नियमों को तोड़ने पर उसे जाति से बहिष्कृत किया जा सकता है, एक जाति से दूसरी जाति में जा नहींसकते।
6) समस्त व्यवस्था ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर निर्भर है।

डॉ. घुर्ये ने जाति-प्रथा की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया हैं-

1) समाज का खंडात्मक विभाजन
2) भोजन और सामाजिक सहवास पर प्रतिबंध
3) संस्तरण
4) पेशों के अप्रतिबंधित चुनाव का अभाव
5) विभिन्न जातियों की सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यताएँ तथा विशेषाधिकार एवं
6) विवाह संबंधी प्रतिबंध।

जाति की उत्पत्ति

ज्ञान शांति मैत्री

भारतीय जाति-प्रथा अत्यधिक जटिल संस्था है। भारत में जाति की उत्पत्ति के संबंध में अलग-अलग सिद्धांत प्रतिपादित किए गए है। जाति की उत्पत्ति के संबंध में निम्नवत सिद्धांत प्रमुख माने जा सकते हैं

1. **परंपरागत सिद्धांत** इस सिद्धांत की विवेचना मनु ने प्रस्तुत की है और इसकी सबसे प्राचीन व्याख्या ऋग्वेद की ऋचाओं में मिलती है। इस सिद्धांत के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्म के मुख से, क्षत्रीय बाहु से, वैश्य जाँघ से और शूद्र पैर से पैदा हुए है। मनु ने इसी आधार पर प्रत्येक जाति के कार्यों को निश्चित कर दिया है। ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुख से हुई इसलिए ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन करना, शिक्षा देना आदि है, जिससे वेदों की रक्षा हो सके। बाँह शक्ति का द्योतक है, इसलिए क्षत्रियों का कार्य शक्ति संबंधित कार्य था। वैश्यों का कार्य कृषि करना, व्यापार करना आदि है, और पैरों से उत्पत्ति होने के कारण शूद्रों का कार्य ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना है।
2. **धार्मिक सिद्धांत:** इस सिद्धांत के प्रवर्त्तकों में होकार्ट और सेनार्ट इन दो विद्वानों का नाम उल्लेखनीय है। **होकार्ट का सिद्धांत-** इनके अनुसार समाज का विभाजन धार्मिक सिद्धांतों और

प्रथाओं के कारण हुआ है। इनका कहना है कि जाति प्रणाली देवताओं को भेंट चढ़ने का संगठन है। प्राचीन भारत में धर्म का महत्व अत्यधिक था और उसकी एक सामान्य अभिव्यक्ति देवताओं को बलि चढ़ाने की प्रथा थी। पशुओं को बलि देने का काम करने को प्रत्येक व्यक्ति राज़ी नहीं हो सकता, क्योंकि इस प्रकार पशुओं की हत्या धर्म से सम्बद्ध होने पर भी कुछ निकृष्ट या अपवित्र स्तर का कार्य है। अतः ऐसे कार्यों को करने के लिए कुछ ऐसे लोगों की सेवाओं की आवश्यकता हुई , जिनकी स्थिति समाज में नीची थी, जो दास आदि होते थे। कालांतर में आर्थिक कृत्यों से संबंद्ध विशिष्ट सेवाओं को करने वालों का एक अलग-अलग समूह बन गया और जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई।

सेनार्ट के सिद्धांत में हेकार्ट के द्वारा दिए गए सिद्धांत की कमियों को दूर करने का प्रयत्न किया है। इन्होंने भोजन संबंधी निषेध के आधार पर जाति प्रथा की उत्पत्ति को समझाया है।

3. **प्रजातीय सिद्धांत:** इस सिद्धांत का प्रतिपादन हरबर्ट रिजले द्वारा किया गया है। इनके सिद्धांत का अनुमोदन घुर्ये, मजूमदार, वैस्टरमार्क और आदि विद्वानों ने किया है। इस सिद्धांत के अनुसार संस्कृतियों के संघर्ष तथा प्रजातियों के संपर्क से भारत में जाति के निर्माण की प्रक्रिया संभव हुई। रिजले ने जाति प्रथा के विकास के क्रम में छह प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया है जो निम्नलिखित हैं:
   - I. परंपरागत व्यवसाय में परिवर्तन
   - II. प्रव्रजन
   - III. रीति-रिवाजों में परिवर्तन
   - IV. पुरानी परंपराओं की सुरक्षा
   - V. हिंदुओं की श्रेणी में अपने आपको मिलाना
4. **राजनैतिक सिद्धांत**: प्रारंभिक यूरोपीय विद्वानों ने जाति प्रथा को ब्राह्मणों द्वारा आयोजित एक चतुर और राजनैतिक योजना का रुप दिया है। इस सिद्धांत से श्री अबे डुबोयस का नाम विशेष रुप से जुड़ा हुआ है। इनके अनुसार, *''जाति प्रथा ब्राह्मणों के लिए और ब्राह्मणों के द्वारा बनाई गई एक चतुर योजना है, जो कि ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता को चिरस्थायी बनाए रखने के लिए रची थी।''* अन्य प्राचीन संस्कृतियों की भांति भारतवर्ष में भी प्राचीनकाल में धर्म का महत्व अत्यधिक था और धर्म से संबंधित व्यक्तियों अर्थात ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति सर्वमान्य रुप से सबसे ऊँची रही। अपनी इस ऊँची स्थिति से फायदा उठाने के लिए ब्राह्मणों ने चतुराई से काम लिया और सामजिक संस्तरण की एक ऐसी योजना बनाई, जिनके अंतर्गत उनका अपना स्थान सबसे उंचा रहा है और उन समर्थकों को दूसरा स्थान मिला, जो कि अपने बाहुबल से ब्राह्मणों के स्वार्थ की रक्षा कर सकें। अपनी स्थिति से ही लाभ उठाकर ब्राह्मणों ने यह प्रमाणित कर दिया कि उनका

तथा उनके समर्थकों का पेशा अन्य लोगों से श्रेष्ठ है। जाति प्रथा की उत्पत्ति इसी के परिणामस्वरुप हुई।

5. **व्यवसायिक सिद्धांत:** इस सिद्धांत का प्रतिपादन नेसफील्ड द्वारा की गई। इनके सिद्धांत का केंद्रीय भाव यह है कि *"पेशा और केवल पेशा ही जाति प्रथा की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी है।"* इसे और स्पष्ट करते हुए इन्होंने कहा हैं कि विभिन्न जातियों में भेद केवल पेशा या कार्य के आधार पर है और पेशे की ऊंच-नीच या अच्छाई-बुराई के अनुसार ही जाति का संस्तरण हुआ है। यह संस्तरण स्वाभाविक है और सभी समाजों में विद्यमान हैं। इस संदर्भ में नेसफील्ड का कहना है कि जाति प्रथा के संबंध में धर्म का कोई भी महत्व नहीं है और न ही प्रजातीय सम्मिश्रण या शारीरिक लक्षणों के आधार पर जातियों को एक दूसरे से अलग किया था। जो कुछ भी भिन्नता या भेदभाव है, वह सभी पेशों की ऊंच नीच पर आधारित है।
6. **आर्थिक या उद्विकासीय सिद्धांत:** इस सिद्धांत का प्रतिपादन श्री डेनजिल इबेटसन द्वारा किया गया है। इनका मानना है कि जाति-प्रथा की उत्पति चार वर्गों के आधार पर नहीं, बल्कि आर्थिक संघों से हुई है। वर्ग से संघ और संघ से जाति का विकास हुआ है।

1.3 अनुसूचित जातियां की संवैधानिक स्थिति

'अनुसूचित जाति' (Scheduled Caste) मूलतः एक संवैधानिक संकल्पना है। ब्रिटिश सरकार ने इसका पहली बार प्रयोग 1935 के भारत सरकार अधिनियम में किया था। अप्रैल 1936 में ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार (अनुसूचित जाति) आदेश जारी किया था जिसमें असम, बंगाल, बिहार, मुंबई, मध्य प्रांत, उड़ीसा, पंजाब और संयुक्त प्रांत के तत्कालीनप्रांतों की कुछ जातियों, वर्गों व जनजातियों को 'अनुसूचित' विनिर्दिष्ट किया गया था। इसके पहले ये जातियाँ दलित वर्ग (Depressed Classes) कहलाती थी। 1931 की जनगणना के अनुसार आगे दिए गए मानकों के आधार पर पहचान की गई- ऐसे वर्ग, जिन्हें ब्राह्मणों, नाइयों, भिश्तियों, दर्जियों और ऐसी ही अन्य सेवाओं से वंचित किया गया,साथ ही, जिन्हें हिंदू मंदिरों और अन्य सार्वजनिक सुविधाओं,जैसे-सड़कों, नौकाओं, कुओं अथवा विद्यालयोंके प्रयोग से वंचित किया गया और अस्पृश्य के मानदंड के आधार पर सुव्यवस्थित ढंग से वर्गीकृत किया गया था। 1936 में जारी की गई अनुसूचित जातियों की सूची दलित वर्गों की पहली सूची जैसी ही थी। 1950 में, जो सूची बनाई गई वह पहली सूची में परिवर्धन करके बनाई गई।

भारत के संविधान के अनुच्छेद341 और 342 में किसी राज्य अथवा केंद्र शासित प्रदेशों में अनुसूचित रहने वाली जातियों को परिभाषित किया गया हैं। तत्संबंधित संवैधानिक प्रावधान निम्नवत हैं

अनुच्छेद 341 (1)राष्ट्रपति किसी राज्य अथवा केंद्र शासित प्रदेश के संबंध में और जहां यह राज्य है, में राज्यपाल के परामर्श से सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा जातियों, वर्गों अथवा जनजातियों या जातियों, वर्गों अथवा जनजातियों के हिस्सों या जाति के भीतर कुछ समूहों को, इस संविधान के प्रयोजन से, संबंद्ध राज्य अथवा केंद्र शासित प्रदेश, जो भी लागू हो, के संबंध में अनुसूचित जाति घोषित कर सकते हैं।

अनुच्छेद 341 (2) संसद कानून बनाकर, इस अनुच्छेद की धारा (1) के अंतर्गत जारी किसी अधिसूचना में निर्दिष्ट अनुसूचित जातियों की सूची में किसी जाति, वर्ग अथवा किसी जाति के अंतर्गत किसी हिस्से या समूह को शामिल या उससे निकाल सकती है। किंतु उपरोक्त धारा के अधीन जारी किसी भी परवर्ती अधिसूचना से अलग नहीं होनी चाहिए।

अनुच्छेद 15(4) में कहा गया है कि इस अनुच्छेद कि या अनुच्छेद29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई सुविधा उपलब्ध करने से नहीं रोकेगी।

अनुच्छेद 16(4) में स्पष्ट किया गया है कि इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपलब्ध करने से वंचित नहीं करेगी।

अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता के उन्मूलन की बात कही गई है, और किसी भी रूप में उसके आचरण को निषिद्ध किया गया है।

अनुच्छेद 15(2) के ज़रिए वे सभी निर्योग्यताएं, दायित्व, निर्बंधन या शर्तें हटाई गई हैं, जो दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या पूर्णतः या अंशतः राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग से संबंधित हैं।

अनुच्छेद 25(2) के तहत हिंदुओं के सार्वजनिक धार्मिक स्थलों को हिंदुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध किया गया है।

संविधान अनुसूचित जाति आदेश1950 में कहा है कि हिंदू या सिक्खधर्म से अलग किसी धर्मावलंबी को अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं माना जाएगा। परंतु अनुसूचित जनजाति समझे जाने के लिए कोई धार्मिक प्रतिबंध नहीं है। वर्तमान में, आरक्षण का लाभ उन अनुसूचित जातियों के सदस्यों को भी पहुंचाने की व्यवस्था की गई है, जिन्होंने बाद में धर्म परिवर्तन करके बौद्ध धर्म अपना लिया है।

1.4 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग

मूलतः संविधान का अनुच्छेद338 अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति का उपबंध करता है जो अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के संवैधानिक संरक्षण से संबंधित सभी मामलों का निरीक्षण करें तथा उनसे संबंधित प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करे। उसे अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयुक्त कहा जाएगा तथा उसे उक्त कार्य सौंपे जाएंगे।1978 में, सरकार ने अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए एक गैरसंवैधानिक बहुसदस्यीय आयोग की स्थापना की। अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयुक्त का कार्यालय का भी निर्माण किया।1987 में आयुक्त के कार्यों में संशोधन किया और आयोग का नाम बदलकर राष्ट्रीय अनु.जाति एवं जनजाति आयोग कर दिया। 1990 के 65वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा एक विशेष अधिकारी के स्थान पर एक उच्च स्तरीय

बहुसदस्यीय राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग की स्थापना की गई। पुनः2003 के 89वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा राष्ट्रीय आयोग का दो भागों में विभाजन कर दिया गया तथा राष्ट्रीय जाति आयोग एवं राष्ट्रीय जनजाति आयोग नामक नए आयोग बना दिए गए। यह 2004 वर्ष में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग अस्तित्व में आया। आयोग में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष एवं तीन अन्य सदस्य हैं। वे राष्ट्रपति द्वारा उसके आदेश एवं मुहर लगे आदेश द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। उनकी सेवा शर्तें एवं कार्यकाल भी राष्ट्रपति द्वारा ही निर्धारित किए जाते हैं।

आयोग के कार्य

1) अनुसूचित जातियों के संवैधानिक संरक्षण संबंधित सभी मामलों का निरीक्षण एवं अधीक्षण करना तथा उनके क्रियान्वयन की समीक्षा करना।
2) अनुसूचित जातियों के हितों का उल्लंघन करने वाले किसी मामले की जांच-पड़ताल एवं सुनवाई करना।
3) अनुसूचित जातियों के समाजार्थिक विकास से संबंधित योजनाओं के निर्माण के समय सहभागिता निभाना एवं उचित परामर्श देना तथा संघशासित प्रदेशों एवं अन्य राज्यों में उनके विकास से संबंधित कार्यों का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करना।
4) इनके संरक्षण के संबंध में उठाए गए कदमों एवं किए जा रहे कार्यों के बारे में राष्ट्रपति को प्रतिवर्ष या जब भी आवश्यक हो, प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।
5) इन संरक्षात्मक उपायों के संदर्भ में केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा उठाए गए कदमों की समीक्षा करना एवं इस संबंध में आवश्यक सिफ़ारिशों तथा अनुसूचित जातियों के समाजार्थिक विकास एवं लाभ के लिए प्रयास करना।
6) यदि राष्ट्रपति आदेश दें तो अनुसूचित जातियों के समाजार्थिक विकास हितों के संरक्षण एवं संवैधानिक संरक्षण से संबंधित सौंपे गए किसी अन्य कार्य को संपन्न करना।

आयोग का प्रतिवेदन

आयोग अपनी वार्षिक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है। वह जब भी उचित समझे, अपनी प्रतिवेदन दे सकता है। राष्ट्रपति, इस प्रतिवेदन को संबंधित राज्य के राज्यपाल को भी भेजता है, जो उसे राज्य के विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा और उसके साथ राज्य से संबंधित सिफ़ारिशों पर की गई या किएजाने के लिए प्रस्थापित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफ़ारिश अस्वीकृत की गई है, तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा।

आयोग की शक्तियां

आयोग को अपने कार्यों को संपन्न करने के लिए शक्तियां प्रदान की गई हैं। जब आयोग किसी कार्य की जांच-पड़ताल कर रहा है या किसी शिकायत की जांच कर रहा है, तो याचिका दायर की जा सकती है तथा विशेषकर निम्नांकित मामलों में:

- भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को सम्मन करना और हाजिर करना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना।
- किसी दस्तावेज़ को पेश करने की अपेक्षा करना।
- शपथपत्रों पर साक्षी ग्रहण करना।
- किसी न्यायालय या कार्यलय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की अपेक्षा करना।
- साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए सम्मन निकालना।
- कोई अन्य विषय, जो राष्ट्रपति, नियम द्वारा अवधारित करे।

संघ और प्रत्येक राज्य सरकार अनुसूचित जातियों को प्रभावित करने वाले सभी महत्वपूर्ण नीतिगत विषयों पर आयोग से परामर्श करेगी। यह आयोग पिछड़े वर्गों एवं आंग्लभारतीय समुदाय के संबंध में भी उसी प्रकार कार्य करेगा। जिस प्रकार अनुसूचित जातियों के लिए करता है, साथ ही उनके संवैधानिक संरक्षण एवं विधिक संरक्षणों के संबंध में भी जांच करेगा और इस संबंध में राष्ट्रपति की रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

1.5 अनुसूचित जातियों के विकास

विकास के प्रयास- देश के आज़ादी के पहले अनुसूचित जातियों के कल्याण का कार्य नियोजित ढंग से नहीं किया जाता था। स्वतंत्रता के बाद अनुसूचित जातियों की समस्याओं की समयसमय पर अनेक आयोगों और समितियों द्वारा समीक्षा की गई और उनके सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए उठाए गए कदम संक्षेप में निम्नलिखित है

अनुसूचित जातियों के विकास के लिए एक त्रिमुखी नीति बनाई गई वह इस प्रकार हैं

1. केंद्रीय मंत्रालयों व राज्य सरकारों की विशेष संघटक योजनाएं।
2. राज्य की अनुसूचित जातियों के लिए विशेष संघटक योजनाओं को विशेष केंद्रीय सहायता।
3. राज्यों में विकास निगम की स्थापना।

अनुसूचित जाति विकास(सामाजिक न्याय व सशक्तिकरण मंत्रालय की रिपोर्ट, 2002-03)

अनुसूचित जातियों का आर्थिक रूप से, सामाजिक रूप से और राजनीतिक रूप से सशक्तिकरण राष्ट्रीय विकास एजेंडा पर प्राथमिकता पर रहा है, क्योंकि ये अपने सामाजिक आर्थिक पिछड़ेपन के कारण शेष समाज से पिछड़े हुए हैं। संविधान के अंतर्गत संसद अनुच्छेद 341 के खंड 1 के अंतर्गत जारी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जातियों की सूची में या उससे कानून द्वारा किसी समुदाय को शामिल या निकाल सकती है। इस समय अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, अंडमान व निकोबार और लक्षद्वीप को छोड़कर, भारत भर में फैले 1206 समुदायों को, अनुसूचित जातियों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है।

1991 की जनगणना के अनुसार उनकी जनसंख्या 13.82 करोड़ अथवा कुल जनसंख्या का 16.73 प्रतिशत थी। अनुसूचित जातियों की 81 प्रतिशत आबादी ग्रामीण इलाकों में निवास करती है। भारत की अनुसूचित जातियों की कुल जनसंख्या का 20 प्रतिशत अकेले उत्तर प्रदेश में है। भारत में अनुसूचित जातियों की अधिकता वाले अन्य राज्यों में पश्चिमी बंगाल, बिहार, तमिलनाडू और आंध्र प्रदेश शामिल हैं।

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय एक नोडल मंत्रालय है जो अनुसूचित जातियों के हितों की देखभाल करता है। मंत्रालय राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्रों एवं अन्य केंद्रीय मंत्रालयों द्वारा अनुसूचित जातियों के हितों के संरक्षण और उन्नयन के लिए किए जा रहे कार्यक्रमों की निगरानी करता है। वह अनुसूचित जातियों को शैक्षिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से समर्थ बनाने के लिए जा रहे परसों में पूरक भूमिका भी अदा करता है।

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय अनुसूचित जातियों के विकास के लिए निम्नांकित योजनाएं लागू करता है:

1) **शैक्षिक विकास**: अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए मैट्रिकोत्तर छात्रवृति(PMS) योजना, जो देश में अपनी तरह की सबसे बड़ी शैक्षिक छात्रवृति योजना है, जिसका लक्ष्य अनुसूचित जातियों में उच्च शिक्षा को प्रोत्साहित करना है। अन्य योजनाओं में अस्वच्छ व्यवसायों में लगे लोगों के बच्चों के लिए छात्रावास, पुस्तक बैंक, अ. जा. छात्रों में योग्यता प्रोत्साहित करने के लिए प्रशिक्षण और अन्य शायक योजनाएं शामिल हैं।
2) **आर्थिक विकास:** राष्ट्रीय अनुसूचितजाति वित्त एवं विकास निगम (NSFDC), राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी वित्त एवं विकास निगम (NSKFDC) और राज्य अनुसूचित जाति विकास निगम क्रमशः केंद्र और राज्यों के स्तर पर अनुसूचित जातियों से संबंधित व्यक्तियों के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।
3) **संरक्षणात्मक उपाय**: सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989, के माध्यम से अस्पृश्यता की कुप्रथा समाप्त करने और अनुसूचित जातियों पर अत्याचार की घटनाओं को रोकने के लिए वैधानिक उपाय किए गए हैं।
4) **स्वयंसेवी संगठन**: शैक्षिक योजनाओं, व्यावसायिक प्रशिक्षण और जागरूकता पैदा करने संबंधी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में स्वयं सेवी संगठनों का चूंकि लक्षित समूहों के साथ सीधा संबंध होता है, इसलिए सामाजिक बदलाव और विकास में इन संगठनों ने कारगर भूमिका निभाई है।
5) **अनुसूचित जातियों के लिए विशेष घटक योजना और विशेष केंद्रीय सहायता की व्यवस्था**: 1979-80 में शुरू की गई और अनुसूचित जातियों के समग्र विकास के लिए संसाधनों में समानतापूर्ण हिस्सेदारी सुनिश्चित करने में सर्वाधिक प्रभाव निभाई है।

नौवीं पंचवार्षिक योजना में अनुसूचित जातियोंके कल्याण के लिए 3569.87 करोड़ रुपए जारी किए गए। अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए दसवीं योजना अवधि में5786.00 करोड़ रुपए के परिव्यय को मंजूरी दी गई।

अनुसूचित जातियों के प्रतिभाशाली छात्रों के लिए डॉ अंबेडकर राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना2002-03 में शुरू कर दी गई, जिसका उद्देश्य उच्च अध्ययन के लिए कमज़ोर वर्गों के प्रतिभाशाली छात्रों की पहचान करना, प्रोत्साहित करना और सहायता करना है। इसके अंतर्गत कुल208 छात्रवृत्तियां (अ. जा. और अ. जजा, प्रत्येक के लिए 104) दी जाती है। इसके अतिरिक्त 250 विशेष छात्रवृत्तियां राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की आबादी के अनुपात में प्रदान की जाती है।

वर्तमान में चल रही है कुछ योजनाएं:

केंद्र प्रायोजित योजनाएं

1. मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति योजना
2. मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति
3. जोखिमपूर्ण व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के बच्चों के लिए
4. बाबू जगजीवन राम छात्रावास योजना
5. अनुसूचित जाति के छात्रों की योग्यता का उन्नयन

1. मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति योजना

इस योजना का उद्देश्य मैट्रिकोत्तर अथवा माध्यमिकोत्तर स्तर पर पढ़ने वाले अनुसूचित जाति के छात्रोंको वित्तीय सहायता प्रदान करना है, ताकि वे अपनी शिक्षा पूरी कर सकें।

मुख्य विशेषताएं

वित्तीय सहायता में अनुरक्षण भत्ता, शैक्षिक संस्थानों द्वारा प्रभारित अप्रतिदेय अनिवार्य फीस की प्रतिपूर्ति बुक बैंक सुविधा तथा अन्य भत्ते शामिल हैं। यह छात्रवृत्ति केवल भारत में पढ़ने के लिए उपलब्ध है तथा राज्य/संघ राज्य क्षेत्र सरकारों द्वारा वास्तव में उनसे संबंधित आवेदक को प्रदान की जाती है।

इस योजना को अप्रैल 2013 पुनःसंशोधित किया गया, जिसमें शैक्षिक सत्र 2013-14 से माता-पिता की आय सीमा को 2.00 लाख रुपए से बढ़ाकर 2.5 लाख रुपए कर दिया।

पात्रता:

इस योजना के तहत पात्र होने के लिए छात्र द्वारा निम्नलिखित अपेक्षाएं पूरी करनी चाहिए:

- वह अनुसूचित जाति का हो तथा उसके माता-पिता/अभिभावक की आय 2.5 लाख रूपए प्रतिवर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- वह किसी अन्य केंद्रीय रूप से वित्त पोषित मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति का प्राप्त कर्ता नहीं होना चाहिए।

ज्ञान शांति मैत्री

- वह सरकारी विद्यालय अथवा सरकार अथवा केंद्रीय/राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त किसी विद्यालय में अध्ययनरत नियमित पूर्णकालीक छात्र होना चाहिए।

लाभार्थियों द्वारा योजनाओं के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने की कार्यविधि: सभी पात्र छात्र मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति योजना के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत करने के लिए स्कूल प्राधिकारियों तथा जिला समाहर्ता से संपर्क करें।

2. मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति

कक्षा नौवीं और कक्षा दसवी में पढ़ रहे अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिए मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति सरकार ने दिनांक 01.07.2012 से कक्षा नौवीं और दसवी में पढ़ रहे अनुसूचित जाति के समुदायों से संबंधित विद्यार्थियों के लिए मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति की एक केंद्रीय प्रायोजित योजना की शुरूआत करने का निर्णय लिया। इस योजना का उद्देश्य कक्षाएं नौवी और दसवी में पढ़ रहे अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के माता-पिता को सहायता प्रदान करना है, जिससे विशेषतः प्रारंभिक से माध्यमिक स्तर के संक्रमण के दौरान विद्यार्थियों द्वारा स्कूल छोड़ने को आंकडों मे कमी आ सके। योजना की मुख्य विशेषताएं निम्नानुसार हैं-

(क) इस योजना के अंतर्गत पात्र होने के लिए, विद्यार्थी को निम्नलिखित पात्रता पूरी करनी होगी:-

- वह अनुसूचित जाति से संबंधित हो और उसके मातापिता/अभिभावक की वार्षिक आय 2 लाख रुपए से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- विद्यार्थी को केंद्र से वित्तपोषित कोई अन्य मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति नहीं मिल रही हो।
- किसी सरकारी या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त या केंद्रीय/राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त विद्यालय में नियमित और पूर्णकालिक विद्यार्थी होना चाहिए।

किसी भी कक्षा में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति सिर्फ एक वर्ष ही उपलब्ध होगी। यदि विद्यार्थी कक्षा दोहराता है, तो उसे दूसरे(उत्तरवर्ती) वर्ष के लिए उस कक्षा के लिए छात्रवृत्ति नहीं मिलेगी।

(ख) छात्रवृत्ति के मूल्य में पाठ्यक्रम की अवधि के लिए निम्नलिखित शामिल हैं:-

छात्रवृत्ति तथा अन्य अनुदान

मद	दिवा छात्र	छात्रावासी
छात्रवृत्तियां (प्रतिमाह रुपए में) (10 महीनों के लिए)	150	350
पुस्तकें और तदर्थ अनुदान(प्रतिमाह रुपए)	750	1000

- निजी गैर-सहायता प्राप्त मान्यता प्राप्त विद्यालयों में अध्ययनरत विकलांग विद्यार्थियों के लिए अतिरिक्त भत्ता।

(ग) यह योजना केंद्रीय प्रायोजित योजना है और राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों द्वारा कार्यान्वित की जाएगी, जिसमें इस योजना के अंतर्गत भारत सरकार से उसकी प्रतिबद्ध देयता से अधिक कुल व्यय के लिए १००% केंद्रीय सहायता प्रदान की जाती है। किसी वर्ष के लिए किसी राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन की प्रतिबद्ध देयता का स्तर पूर्ववर्ती पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्ष के दौरान इस योजना के अंतर्गत उनके द्वारा किए गए वास्तविक व्यय के स्तर के समतुल्य होगा और उनके द्वारा अपने स्वयं के बजट में प्रावधान करके वहन किया जाना अपेक्षित होगा।

इस समय अनेक राज्य/संघ राज्य क्षेत्र अनुसूचित जाति विद्यार्थियों के लिए कुछ प्रकार की मैट्रिकपूर्व छात्रवृत्ति योजना अपने स्वयं के संसाधनों से कार्यान्वित कर रहे हैं।

लाभार्थियों द्वारा योजनाओं के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने की कार्यविधि सभी पात्र छात्र, जो उपर्युक्त योजना के अंतर्गत छात्रवृत्ति प्राप्त करना चाहते है उन्हें अपने छात्रवृत्ति आवेदनों को स्कूल प्राधिकारियों को प्रस्तुत करना चाहिए।

3., जोखिमपूर्ण व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के बच्चों के लिए

सफाई तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से, जोखिमपूर्ण व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के बच्चों के लिए मैट्रिक-पूर्व वित्तीय सहायता योजना है। यह योजना 1977-78 में शुरू की गई थी। आरंभ में यह योजना केवल छात्रावासियों को कवर करती थी। तत्पश्चात् वर्ष १९९१ में दिवा छात्रों को भी इस योजना के कार्य क्षेत्र में लाया गया। इस योजना के अंतर्गत निम्नलिखित लक्षित समूहों यथा

I. शुष्क शौचालयों को साफ करने वाला व्यक्ति
II. स्केवेंजिंग की परंपरागत प्रथा में संलग्न स्वीपर
III. चमड़ा रंगने वाले व्यक्ति
IV. चमड़ा उतारने वाले व्यक्ति
V. मेंहोल तथा खुली नालियों की सफाई करने वाला व्यक्ति
VI. कूड़ा बिनने वाले के बच्चों को मैट्रिक पूर्व शिक्षा हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है

प्रमुख विशेषताएं

इस योजना के अंतर्गत सहायता के दो घटक हैं, यथा -

- मासिक छात्रवृत्ति (10 माह के लिए),
- वार्षिक तदर्थ अनुदान (स्टेशनरी, यूनीफार्म आदि जैसे आकस्मिक व्यय को कवर कसे के लिए),
- सपात्रता के लिए कोई आय सीमा अथवा जाति प्रतिबंध नहीं है,
- लक्षित समूह में विकलांग विद्यार्थियों के लिए विशेष प्रावधान है।

योजना के मुख्य प्रावधान

यह योजना अंतिम बार दिसंबर, 2008 में संशोधित की गई थी और मुख्य प्रावधानों का सार निम्नलिखित है-

योजना का घटक	01.04.2008 से संशोधित		
1.मासिक छात्रवृत्ति	कक्षा	दिवा	छात्रवासी
2.वार्षिक तदर्थ अनुदान (रुपए प्रतिवर्ष)	I-II	110	-
3.प्रतिबद्ध देयता के अतिरिक्त केंद्रीय सहायता का पैटर्न	III-X	110	700

4. बाबू जगजीवन राम छात्रावास योजना

इस योजना का उद्देश्य माध्यमिक विद्यालयों, उच्च माध्यमिक विद्यालयों, कालेजों, विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे अनुसूचित जाति के लड़कों और लड़कियों को छात्रावास सुविधाएं प्रदान करना है।

प्रमुख विशेषताएं:

राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन और केंद्रीय तथा राज्य विश्वविद्यालय/संस्थाएं नएछात्रावास भवनों के निर्माण और मौजूदा छात्रावास सुविधाओं के विस्तार,दोनों के लिए केंद्रीय सहायता के पात्र हैं, जबकि गैर-सरकारी संगठन तथा निजी क्षेत्र के मानित विश्वविद्यालय केवल उनकी मौजूदा छात्रावास सुविधाओं के विस्तार करने के लिए ऐसी सहायता के पात्र हैं।

5. अनुसूचित जाति के छात्रों की योग्यता का उन्नयन

इस योजना का उद्देश्य आवासीय विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम से समग्र विकास हेतु सुविधाएं प्रदान करके अनुसूचित जाति के छात्रों की योग्यता का उन्नयन करना है।

- उनकी शैक्षिक कमियों को दूर करके,
- उनकी योग्यता का उन्नयन करके व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में उनके प्रवेश को सुगम बनाना,
- उनमें आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता लाकर किए जाने का प्रस्ताव है। कक्षा 9 से कक्षा 10 में पढ़ने वाले अनुसूचित जाति के छात्र इस योजना के तहत पात्र है।

प्रमुख विशेषताएं:

25000 रुपए प्रति छात्र प्रति वर्ष के पैकेज अनुदान के माध्यम से राज्यों/संघ राज्य क्षेत्र को 100 % केंद्रीय सहायता उपलब्ध कराना है। विशेष भत्ते, जैसे-

- पाठक भत्ता
- यातायात भत्ता
- सहायक भत्ता आदि विकलांग छात्रों को प्रदान किया जाता है।

01.08.2013 से प्रभावी संशोधित इस योजना इस प्रकार है:- (क) प्रत्येक राज्य के लिए स्लॉटों की संख्या में वृद्धि की गई है।(ख) छात्रवृत्ति की दरों को 15000 रुपए से बढ़ाकर 25000 रुपए वार्षिक कर

दिया गया है; तथा (ग) विकलांगता सहायता की दर को दुगुना कर दिया गया है।(स्रोत: सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार)

1.6 सारांश

इस इकाई में हमने अनुसूचित जातियों के विकास के मूलभूत पक्षों पर चर्चा की। अनुसूचित जाति हमारे समाज का सबसे अधिक शोषित एवं उत्पीड़ित वर्ग है। भारतीय संविधान द्वारा समान अधिकार प्राप्त हैं किंतु व्यावहारिक तौर पर देखें तो वे आज भी हरप्रकार के भेदभाव और पक्षपात का सामना करते हैं। उनका सामाजिक स्तर विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत निम्न है एवं आर्थिक तौर पर वे हमारे समाज की सबसे कमज़ोर कड़ी हैं। उनमें से अधिकतर आज भी भूमिहीन मज़दूर, छोटे कृषक, चर्मकार एवं सफाई कर्मचारी आदि है। अनुसूचितजातियों की आवासीय स्थिति आज भी दयनीय है और उनका शैक्षिक स्तर बहुत ही निम्न है। इसके पश्चात हमने जाति का अर्थ, विशेषताएँ, जाति की उत्पत्ति के सिद्धांतों एवं संवैधानिक स्थिति आदि पर विस्तार से बात की है। हमने यह भी देखा है कि जातियों के विकास में वृद्धि के लिए एक राष्ट्रीय जाति आयोग एवं जातियों के शैक्षिक विकास की योजनाओं की भी चर्चा की है साथ ही जातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास से संबंधित नीतियों एवं कार्यक्रमों को भी देखा है।

1.7 बोध प्रश्न

1. जाति की अवधारणा को परिभाषित करते हुए उसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. जाति की उत्पत्ति सिद्धांतों की चर्चा करें।
3. अनुसूचित जातियों के संरक्षण एवं उत्थान के लिए संविधान में किए गए उपायों की चर्चा कीजिए।
4. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के कार्यों को स्पष्ट करें।
5. अनुसूचित जातियों के शैक्षिक विकास संबंधित योजनाओं का विवरण दें।
6. अनुसूचित जातियों के विकास से संबंधित मुख्य पहलुओं की चर्चा कीजिए।

ज्ञान शांति मैत्री

1.8 संदर्भ एवं अन्य पुस्तकें

कुमार, जी. (सं.) (2013).*समाज कार्य के क्षेत्र*. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

हसनैन, एन. (2009).*समकालीन भारतीय समाज एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य*. लखनऊ: भारत बुक सेंटर.

राय, रमाश्रय. (1999). दलित डेवलपमेंट एंड डेमोक्रेसी. दिल्ली: शिप्रा पब्लिकेशन.

लक्ष्मीकांत, एम. (2015). *भारत की राजव्यवस्था*. नई दिल्ली: एमसीग्रव हिल एडुकेशन प्राइवेट लि..

चौरसिया, बी. पी. (1990).*शिड्यूल्ड कास्ट एंडशिड्यूल्ड ट्राइब्स* इलाहबाद: चुघ पब्लिकेशन.

पाण्डेय, गणेश. (2008).*भारतीय सामाजिक व्यवस्था*. नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स.

इकाई 2 अन्य पिछड़े वर्ग

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 अन्य पिछड़े वर्ग की संकल्पना
2.3 पिछड़े वर्गों की समस्याएं
2.4 अन्य पिछड़े वर्ग आरक्षण की पृष्ठभूमि
  2.4.1 काका कालेलकर आयोग
  2.4.1 बी. पी. मंडल आयोग
2.5 अन्य पिछड़ा वर्ग के संवैधानिक प्रावधान
2.6 राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग
2.7 अन्य पिछड़े वर्ग के विकास कार्यक्रम
2.8 सारांश
2.9 बोध प्रश्न
2.10 उपयोगी एवं संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने पश्चात आप -

- अन्य पिछड़े वर्ग की अवधारणा समझेंगे तथा उनकी समस्याओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- अन्य पिछड़े वर्ग से संबंधित विभिन्न आयोगों की जानकारी प्राप्तकर सकेंगे।
- अन्य पिछड़े वर्ग की संवैधानिक स्थिति को स्फ्ट कर पाएंगे।
- भारत में अन्य पिछड़े वर्ग के विकास के लिए चल रहे विकास कार्यक्रमों का वर्णन कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

हमने पूर्व के इकाई में देखा कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति क्याहोती है, अब इस इकाई में हम यह जानेंगे कि अन्य पिछड़ा वर्ग किसे माना जाता है, उनकी ऐतिहासिक पृष्टभूमि क्या है औरसाथ ही उनके विकास के लिए किए गए प्रयासों के बारे में जानेंगे। 'पिछड़ा वर्ग' (Backward Classes) एक ऐसा ही शब्द है, जिसके अंतर्गत अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति एवं वैसी तमाम जातियाँ आती हैं, जो शैक्षणिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं तथा हिंदू धर्म व्यवस्था में द्विज की श्रेणी में नहीं आते हैं। वैसे ही लोगों के लिए राजनीतिक कारणों से उन्हें दलित कहकर पुकारा गया है और ब्राह्मणवादी

व्यवस्था पर प्रहार किया गया है, लेकिन वर्तमान समय में 'पिछड़ा वर्ग' शब्द ने तीन खंडों में विभक्त होकर विशिष्ट अर्थ को प्राप्त किया, जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC)।

2.2 अन्य पिछड़े वर्ग की संकल्पना

पिछड़ा वर्ग तथा अन्य पिछड़ा वर्ग एक-दूसरे के पर्यायवाची नहीं है। अन्य पिछड़ा वर्ग(OBC) पिछड़ा वर्ग(BC) का एक छोटा-सा हिस्सा है। आरक्षण का प्रावधान आने के बाद अन्य पिछड़े वर्ग को दो भागों में विभक्त किया गया है Creamy Layer Non-Creamy Layer OBC 'अन्य पिछड़ा वर्ग' भारतीय समाज का सबसे बड़ा घटक है, जो राजनैतिक, शैक्षणिक और आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर और उपेक्षित है। सामाजिक वैज्ञानिकों ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों का काफ़ी अध्ययन किया, लेकिन अन्य पिछड़ा वर्ग तबका उपेक्षित रहा। 'पिछड़े वर्ग' शब्द का संदर्भ पहले 1917-18 में प्रचलित हुआ। 1930-31 में इसका उपयोग विशिष्ट रूप से किया गया था। 1937 में त्रावनकोर राज्य में शैक्षणिक दृष्टि से सभी पिछड़े समुदाय के लिए पिछड़े वर्ग शब्द का प्रयोग हुआ। भारत का संविधान भारतीय समाज में तीन 'पिछड़े' अंगों को मान्यता देता है- अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग। आरंभ से ही प्रथम दो श्रेणियों पर कोई मतभेद नहीं रहा है, लेकिन तीसरी श्रेणी, अस्पष्टता से घिरी रही है। आम तौर पर यह माना गया है कि इस श्रेणी में मध्य स्तर की उन सभी जातियों को रखा जा सकता है , जिनकी सामाजिक प्रस्थिति अनुसूचित जातियों से ऊपर है। सरल तथा लोकप्रिय अर्थों में अगड़े के अंतर्गत ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ण से निकली हुई जातियाँ आती हैं, जिन्हें 'द्विज' भी कहा जाता है। इस श्रेणी में उत्तर भारत के कायस्थ, बंगाल के वैद्य और केरल के नायर भी आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रशानिक शक्ति प्राप्त करके शामिल हो गए। इसके विपरीत पिछड़े वर्ग के अंतर्गत अस्पृश्य जातियों को छोड़कर उन सभी निम्न जातियों को शामिल किया जा सकता है, जिनका (राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक) शक्ति स्रोतों पर अधिकार नहीं रहा है। अनुसूचित जातियां तथा अनुसूचित जनजातियां संविधान की सूची में शामिल हैं। इस प्रकार गैर-द्विज, गैर-अनुसूचित जातियां, जो संविधान में सूचित नहीं हैं'अन्य पिछड़े वर्गों' के अंतर्गत रखी जा सकती हैं इस जनसंख्या में लगभग 3,700 जातियां रखी जा सकती हैं। संविधान निर्माताओं ने भारतीय जनसंख्या के इस पिछड़े अंग को जातियों के रूप में नहीं,बल्कि वर्गों के रूप में वर्णित किया है। इसके कई कारण हो सकते हैं। पहला कारण शायद ऐतिहासिक प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। आज़ादी के पहले 'दलित वर्ग'(Depressed Classes) का प्रयोग सभी निम्न व वंचित जातियों के लिए किया जाता था, जिनमें अस्पृश्य जातियां (वर्तमान की अनुसूचित जातियाँ) भी सम्मिलित थी। दूसरा यह कारण हो सकता है कि आधुनिक भारत के निर्माताओं व प्रहरियों के लिए जाति(Caste) शब्द रूढ़िवादिता से जुड़ा हुआ था, इसलिए वे जाति की अवधारणा के पोषण को हतोत्साहित करना चाहते थे। तीसरा कारण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, चूंकि अनुसूचित जातियों की श्रेणी में केवल हिंदू अस्पृश्य जातियों को ही शामिल किया गया था और उसके समक्ष मुस्लिम व ईसाई दलित जातियाँ छूट गई थी।

इसलिए इस 'अन्याय' को सुधारने के लिए ऐसी गैर हिंदू जातियों को किसी तीसरी श्रेणी में ही शामिल किया जा सकता था। चूंकि मुस्लिम व ईसाई समाजों में 'जाति' को सामाजिक धार्मिक मान्यता नहीं है, इसलिए ऐसी पिछड़ी जातियों के लिए 'जाति' शब्द का इस्तेमाल न करके 'वर्ग' का प्रयोग किया गया, जिसमें ऐसी सभी हिंदू, मुस्लिम, सिख व ईसाई धर्म की पिछड़ी जातियों को शामिल कर लिया गया।

गैर-द्विज, मध्य स्तर की या निम्न जातियाँ (अनुसूचित जातियों को छोड़कर) भी जाति व्यवस्था का शिकार रही हैं। ऐसी अधिकतर पिछड़ी जातियाँ दस्तकार (artisans) या छोटे कृषक हैं। गरीबी व वंचन की मार सहते हुए इनका जीवनयापन होता रहा है। मोटे तौर पर अन्य पिछड़े वर्गों को दो प्रकार की पिछड़ी जातियों में बांटा जा सकता है। पहली श्रेणी में पिछड़ी कृषक जातियाँ रखी जा सकती हैं जबकि दूसरी में दस्तकार या शिल्पकर जातिया, जैसे बुनकर, बढ़ई, लोहार सुनार आदि आती हैं। यद्यपि जनसंख्या दृष्टि से ऐसी कृषक जातियाँ 60-70 प्रतिशत से अधिक हैं, लेकिन उनमें अधिकतर कृषकों के पास छोटी जोतें हैं या वे बटाईदार व खेतिहर मज़दूर हैं। इस प्रकार पहली श्रेणी की पिछड़ी जातियों की अर्थव्यवस्था कृषि पर ही निर्भर है। उत्तर प्रदेश, बिहार की यादव व कुर्मी जैसी जातियों व दूसरे क्षेत्रों में भी कुछ ही पिछड़ी जातियों के पास अच्छी मात्र में भूमि है। दस्तकार पिछड़ी जातियों की स्थिति अधिकतर दयनीय है। बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण के कारण उनकी पारंपरिक कलाएं विनाश के कगार पर पहुँच चुकी हैं। बुनकरों, कुम्हारों, बढ़ई, मछुआरे व मल्लाह, लोहार, सब्जी बेचने वाले, मांस बेचने वाले तथा अनेकों ऐसी जातियों की स्थिति संपूर्ण ग्रामीण भारत में अच्छी नहीं है। शैक्षिक वंचन ने स्थिति को और खराब किया है।

संगठित औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वालों को आसान ऋण, संसाधनिक समर्थन और करदाताओं की कीमत पर अनेकों को लाभ व सुविधाएं उपलब्ध हैं लेकिन दस्तकार पिछड़ी जातियों के लिए राज्य समर्थित प्रयास बहुत कम व कमज़ोर रहे है। इन हालात के परिणामस्वरूप यह कमज़ोर वर्ग गरीबी व वंचन की चक्की में पिस रहा है। देश के विभिन्न क्षेत्र में किए गए सर्वेक्षणों व अध्ययनों से पता चला है कि 'अन्य पिछड़े वर्गों' की पहुँच रोज़गार व शिक्षा में बहुत कम है, इनमें साक्षरतादर निम्न स्तर की है और यह चिरकालिक ऋण से ग्रस्त रहे हैं। इनमें ऋणग्रस्तता की ऊंची दर, फैली हुई निरक्षरता व शिक्षा, गरीबी व सामाजिक प्रथाओं के द्वारा भी समझी जा सकती है।

जाति व्यवस्था नामक सामाजिक वर्गीकरण के एक रूप के सदियों से चले आ रहे अभ्यास के परिणामस्वरूप भारत अनेक अंतर्विवाही समूहों, या जातियों और उपजातियों में विभाजित है। आरक्षण नीति के समर्थकों का कहना है कि परंपरागत रूप से चली आ रही जाति व्यवस्था में निचली जातियों के लिए घोर उत्पीड़न और अलगाव है और शिक्षा समेत उनकी विभिन्न तरह की आज़ादी सीमित है।

2.3 पिछड़े वर्गों की समस्याएं

गणेश पाण्डेय ने अपनी किताब *भारतीय सामाजिक व्यवस्था* में पिछड़े वर्गों की कुछ समस्याओं की चर्चा की है, जो विभिन्न सरकारी सुविधाओं के बावजूद भी आज बरकरार हैं। वे निम्नलिखित हैं:

भूमिहीन कृषक की समस्या: भारत के अधिकतर भाग में ऊंची जातियों का एकाधिकार माना जाता है। इस कारण पिछड़े वर्गों के सदस्यों का भूमि पर अधिकार बहुत कम होता है। वे गांवों में अधिकतर भूमिहीन कृषक के रूप में ही बने रहते हैं एवं उस रूप में उन्हें उच्च जातियों के खेतों में कार्य करना पड़ता है। सुबह से शाम तक खेतों में कड़ी मेहनत करते हैं लेकिन उनको उनकी मेहनत का मेहनताना उसी रूप में नहीं मिलता। वे शोषण का शिकार बनते हैं वह उन मालिकों की दया पर अपना जीवनयापन करते हैं इसलिए उन्हें किसी भी प्रकार से आर्थिक रूप से समृद्ध होने का अवसर नहीं मिल पाता है।

व्यवसाय (पेशा) चुनने की समस्या: पिछड़े वर्गों के सदस्य सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक तौर पर अन्य वर्गों से पिछड़े हुए होते हैं। इस कारणवश उनके सामने पेशों को चुनने की समस्या स्वतः ही उत्पन्न होती है। अच्छे किस्म के व्यवसाय को चुनने के लिए आर्थिक एवं शैक्षणिक तौर पर समृद्ध होना आवश्यक है, परंतु पिछड़े वर्ग के सदस्य इस मामले में पिछड़े हुए होते हैं इस कारणवश प्रतियोगी परीक्षाओं में वे अन्य वर्गों के साथ समान स्तर की प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते हैं एवं उन्हें अच्छी नौकरियां नहीं मिल पाती हैं। उसी प्रकार से व्यवसाय भी शुरू नहीं कर पाते हैं। परिणामस्वरूप वे आर्थिक रूप से समृद्ध होने से वंचित रह जाते हैं।

श्रम विभाजन में विभिन्न स्थान: अपने पिछड़ेपन के कारण मिल, फैक्ट्री आदि में पिछड़े वर्गों के सदस्यों को अच्छे पदों पर कम करने का अवसर ही नहीं मिल पाता है। उन्हें वहीं काम मिल पाते हैं जो निम्न स्तर के होते हैं। अर्थात श्रम विभाजन में उनके हिस्से में अच्छे काम नहीं आते हैं। वे ज़िंदगीभर अकुशल श्रमिक ही बने रहते हैं। उन्हें वेतन कम मिलता है एवं उनकी आर्थिक स्थिति गिर जाती है।

पारिश्रमिक की समस्या: उन्हें काम का उचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता है। वे लोग, जो गांव खेतों में काम कर रहें हैं, उन्हें नगद वेतन कम ही मिलता है। अधिकतर मामलों में खेत का मालिक उन्हें काम के बदले अनाज दे देता है, जो की पर्याप्त नहीं होता है। गांव एवं शहरों में धोबी, कुम्हार, नाई आदि अपना छोटा-छोटा धंधा करते हैं पर इससे कमाई बहुत कम होती है एवं उनके परिवार का भरण-पोषण मुश्किल से ही हो पाता है। इस प्रकार से वे आर्थिक रूप में पिछड़े ही रह जाते हैं।

शिक्षा संबंधी समस्या: अपने पिछड़ेपन के कारण पिछड़े वर्गों के लोग अपने बच्चों के लिए उचित शिक्षा का प्रबंध नहीं कर पाते हैं। वैसे भी भारत में शिक्षा विशेषकर उच्च एवं तकनीकी शिक्षा बहुत मंहगी है। उस शिक्षा तक पहुँचना पिछड़े वर्गों के बच्चों के लिए दूर का सपना-सा लगता है। इस परिणामस्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक दोनों स्तर पर ये बच्चे पिछड़ते चले जाते हैं एवं देश की प्रगति में सच्चे भागीदार नहीं बन पाते।

ऋणग्रस्तता की समस्या: अधिकतर पिछड़े वर्गों में आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण ऋणग्रस्तता की समस्या हमेशा बनी रहती है। उनकी आमदनी कम होने से वे भोजन, कपड़ा एवं मकान की बुनियादी आवश्यकता भी उचित ढंग से पूरी नहीं कर पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बीमारी, जन्म, मृत्यु, विवाह, दुर्घटना आदि के समय उन्हें अनिवार्य रूप में उधार मांगकर अपनी आवश्यकताओं को पूरा

करना होता है। यह ऋण वे अधिकतर साहूकार, जमींदार या महाजनों से ले लेते हैं, जो कि एक ओर ब्याज की ऊंची दर पर ऋण देते हैं एवं दूसरी ओर ऋण के कागज़ात में हेराफ़ेरी करके ऋण लेने वाले को हमेशा के लिए अपने चंगुल में फंसा लेते हैं। परिणामस्वरूप ऋण पीढ़ीदर-पीढ़ी चलता रहता है।

उच्च वर्गों द्वारा भेदभाव एवं अत्याचार की समस्या: आज़ादी के बाद संवैधानिक तौर पर भारत के प्रत्येक नागरिक को समान दर्जा एवं समान अधिकार दिया गया ताकि भेदभाव एवं अत्याचार कम हो जाएगा एवं पिछड़े वर्गों को सामाजिक न्याय एवं बराबरी का दर्जामिल जाएगा, लेकिन वास्तव में ऐसा हुआ नहीं। उच्च वर्गों द्वारा पिछड़े वर्गों पर अनेक प्रकार की निर्योग्यताएं लादी जाती हैं बल्कि उनके प्रति भेदभाव एवं अत्याचार का सिलसिला भी जारी रखा जाता है। गांव में उच्च जातियों के हाथों में आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियाँ होती हैं तथा उसी शक्ति के बल पर वे गांव के निर्बल वर्गों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते हैं, उनकी बस्तियों में आग लगा देते हैं, उन्हें बेघर कर देते हैं, बंदूक की नोक पर उनकी बहू-बेटियों की इज्जत लूटते हैं तोड़फोड़ एवं लूटपाट करते हैं। चुनाव के समय एक विशेष प्रत्याशी के पक्ष में ज़ोर-जबरदस्ती वोट डलवाने के लिए पहले से ही अत्याचार एवं आतंक का माहौल भी बनवाते हैं।

2.4 अन्य पिछड़े वर्ग आरक्षण की पृष्ठभूमि

परंपरागत व्यवसायों के आधार पर कुछ जातियों को हिंदू और गैरहिंदू दोनों समुदायों में स्थान प्राप्त है। जातियों के सूचीकरण का एक लंबा इतिहास है, मनु के साथ इस इतिहास के प्रारंभिक काल की शुरुआत होती है। मध्ययुगीन वृतांतों में देश के विभिन्न भागों में स्थित समुदायों के विवरण शामिल हैं। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान, 1806 के बाद व्यापक पैमाने पर जातियों के सूचीकरण का काम किया गया था। 1881 से 1931 की जनगणना के दौरान इस प्रक्रिया में तेज़ी आई।

विंध्य के दक्षिण में प्रेसीडेंसी क्षेत्रों और रियासतों के एक बड़े क्षेत्र में पिछड़े वर्गों(बीसी) के लिए आज़ादी से बहुत पहले आरक्षण की शुरुआत हुई थी। महाराष्ट्र में कोल्हापुर केमहाराजा छत्रपति साहूजी महाराज ने 1902 में पिछड़े वर्ग से गरीबी दूर करने और राज्य प्रशासन में उन्हें उनकी हिस्सेदारी देने के लिए आरक्षण का प्रारंभ किया था। यह भारत में दलित वर्गों के कल्याण के लिए आरक्षण उपलब्ध कराने वाला पहला सरकारी आदेश है। पिछड़े वर्गों का आंदोलन भी सबसे पहले दक्षिण भारत, विशेषकर तमिलनाडु में ज़ोर पकड़ा। देश के समाज सुधार को रेत्तामलई पेरियार, अयोथीदास, फुले, अंबेडकर, साहूजी महाराज आदि ने सतत प्रयासों से अगड़े वर्ग द्वारा अपने और अछूतों के बीच बनायी गई दीवार को तोड़ने का प्रयास किया।

1882 - हंटर आयोग की नियुक्ति हुई तो आयोग के सामने ज्योतिराव फुले ने निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के साथ सरकारी नौकरियों में सभी के लिए आनुपातिक आरक्षण/प्रतिनिधित्व की मांग की थी। त्रावनकोर के सामंती रियासत में 1891 के आरंभ में सार्वजनिक सेवा में योग्य मूल निवासियों की अनदेखी करके विदेशियों को भर्ती करने के खिलाफ प्रदर्शन के साथ सरकारी नौकरियों में आरक्षण के

लिए मांग की गई। 1908 में अंग्रेज़ों द्वारा बहुत सारी जातियों और समुदायों के पक्ष में तथाप्रशासन में, जिनका थोड़ा-बहुत हिस्सा था, उनके लिए भारत सरकार अधिनियम 1909 में आरक्षण शुरू किया गया। भारत सरकार अधिनियम 1919 में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया था।

1935 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया, जो पूना समझौता कहलाता है, जिसमें दलित वर्ग के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र आवंटित किए गए। साथ ही भारत सरकार अधिनियम 1935 में आरक्षण का प्रावधान किया गया। 1942 में अंबेडकर ने अनुसूचित जातियों की उन्नति के समर्थन के लिए अखिल भारतीय दलित वर्ग महासंघ की स्थापना की थी। उन्होंने सरकारी सेवाओं और शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण की मांग की थी।1947 में भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात डॉ॰ अंबेडकर को भारतीय संविधान के लिए मसौदा समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। भारतीय संविधान ने केवल धर्म, नस्ल, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध करता है, बल्कि सभी नागरिकों के लिए समान अवसर प्रदान करते हुए सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछडे वर्गों या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की उन्नति के लिए संविधान में विशेष धाराएं भी रखी गई हैं। 10 सालों के लिए उनके राजनीतिक प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए अलग से निर्वाचन क्षेत्र आवंटित किए गए हैं। (हर दस साल के बाद सांविधानिक संशोधन के ज़रिए इन्हें बढ़ा दिया जाता है)।

2.4.1 काका कालेलकरआयोग

अन्य पिछड़े वर्गों के सामाजिक-आर्थिक उन्नयन के लिए 1953 में अनुच्छेद 340 (1) के अंतर्गत तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने काका कालेलकर की अध्यक्षता में एक पिछड़ा वर्ग आयोग गठित किया गया। आयोग अपनी रिपोर्ट 1955 में भारत सरकार को अपनी संस्तुतियों सहित दे दी। रिपोर्ट के अनुसार भारत में पिछड़ा वर्ग आयोग द्वारा घोषित 2399 पिछड़ी जातियों में केवल 9313 जातियाँ बहुसंख्यक थी। आयोग ने विभिन्न विवादास्पद मुद्दों को ध्यान में रखते हुए, सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों को चिन्हित करने के लिए निम्नलिखित आधार प्रस्तुत किए।

1) हिंदू समाज की पारंपरिक जाति पदसोपानी में निम्न स्थान
2) किसी जाति या समुदाय विशेष के बड़े वर्ग में शैक्षिक उत्थान की कमी
3) सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व का अभाव या बिल्कुल न होना
4) व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग में प्रतिनिधित्व का अभाव

पिछड़े वर्गों की सूची बनाने में 'जाति' को प्रमुख कारक माना गया था। आयोग का मत था कि जातिग्रस्त समाज की समस्याओं की सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टिसे कमज़ोर वर्गों को बढ़ावा देकर कम किया जा सकता है। यद्यपि आयोग के पास जाति पर पर्याप्त आंकड़े नहीं थे, फिर भी आयोग ने प्रस्ताव दिया कि

कम-से-कम 25 प्रतिशत आरक्षण प्रथम श्रेणी कि सेवाओं में 33.5 प्रतिशत द्वितीय श्रेणी में और 40 प्रतिशत तृतीय और चतुर्थ श्रेणियों की सेवाओं में पिछड़ी जातियों के लिए किया जाए। आयोग द्वारा पिछड़ा वर्ग कल्याण के लिए अलग मंत्रालय बनाने की सिफ़ारिश भी कीगई थी।
उस पर तत्कालीन गृहमंत्री पं गोविंद वल्लभ पंत ने लोकसभा में भारत सरकार की तरफ से स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि रिपोर्ट के अनुसार भारत की करीब 35 करोड़ 69 लाख आबादी में पिछड़ा वर्ग आयोग द्वारा घोषित 2399 पिछड़ी जातियों में केवल 9313 जातियों की जनसंख्या ही 11 करोड़ 50 लाख है। शेष पिछड़ी जातियों की जनसंख्या को जोड़ने से इनकी तादाद और बढ़ जाएगी। पिछड़े वर्ग के उत्थानार्थ इतनी बड़ी जनसंख्या वाले पिछड़े वर्ग के लिए आयोग की सिफारिशों को लागू करने हेतु भारत सरकार के पास पर्याप्त साधन नहीं है। अतः काका कालेकर के पिछड़े वर्ग आयोग की संस्तुतियाँ भारत सरकार लागू करने में असमर्थ है। साथ ही न्यायालय ने जाति के आधार पर आरक्षण को असंवैधानिक करार देते हुए खारिज कर दिया आयोग द्वारा सूझाई गई बातों का यह हश्र देखकर पिछड़ी जाति के पढ़ेलिखे एवं राजनेता लोग काफ़ी आहत और हताश होकर शांत बैठ गए। इसके बाद राज्य सरकारों को अन्य पिछड़े वर्गों की सूची बनाने के लिए अपने स्वयं के आधार द्वारा यह कसौटियाँ निश्चित करने की अनुमतिदे दी गई। कर्नाटक जैसे कुछ राज्यों ने अन्य पिछड़े वर्गों के लिए कुछ प्रावधान अवश्य बनाए। विशेष आयोग नियुक्त किया गया तथा इन वर्गों को पहचानने के लिए विशेष सूचियाँ तैयार की गईं । सरकार द्वारा आरक्षण या विशेष सुविधाएं देने के लिए समुचित कानून बनाए। दक्षिण केकतिपय अन्य राज्यों ने भी ऐसे ही कदम उठाए। इधर दूसरी ओर वे राज्य जहां ऐसे प्रावधान नहीं थेया आधे-अधूरे थे वहां पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण की मांग आंदोलन के रूप कही जाने लगी। जब यह यह मांग समस्या का रूप लेने लगी तो केंद्रीय सरकार ने इस कार्य के लिए मंडलआयोग की नियुक्ति की।

2.4.1 बी. पी. मंडल आयोग

जनता पार्टी ने 1977 के चुनाव घोषणा-पत्र में यह वादा किया था कि वह जातिगत गैर-बराबरी को यथाशीघ्र समाप्त कर देगी। इस पार्टी ने यह भी घोषणा कि थी कि वह पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण कोटे में वृद्धि करेगी। पिछड़ों के आंदोलन के फलस्वरूप 1977 में केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बनी। इन्हीं वादों के अंतर्गत पार्टी ने सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी जाति की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए 1978 में मंडल आयोग का गठन अनुच्छेद340 के अंतर्गत किया। इस आयोग को निम्नलिखित बाते तय करनी थी।

1) सामाजिक व शैक्षिक तौर पर पिछड़े वर्गों को परिभाषित करने के उद्देश्य से आधार सुनिश्चित करना।
2) इस प्रकार से चिन्हित सामाजिक व शैक्षिक पिछड़े वर्गों के उन्नयन के लिए संस्तुतियों प्रस्तुत करना।

3) नागरिकों के ऐसे पिछड़े वर्गों के लिए नौकरियों में आरक्षण के प्रावधान पर गौर करना , जिनका सार्वजनिक सेवाओं में प्रतिनिधित्व संतोषजनक नहीं है।
4) राष्ट्रपति को अपने द्वारा खोजों से अवगत कराना और अपनी नज़र में उपयुक्त संस्तुतियों को प्रस्तुत करना।

इस आयोग को 31 दिसंबर 1980 तक अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा गया। कार्य की विशालता और अनुपयुक्त समय के कारण आयोग ने तेज़ी के साथ कम किया। आयोग ने सामाजिक, शैक्षिक पिछड़ेपन को समझने के लिए तीन आधार सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक के अंतर्गत 11 मानक निर्धारित किए गए, जो निम्नलिखित हैं:

सामाजिक

1. जातियाँ/ वर्ग, जो दूसरों के द्वारा सामजिक रूप से पिछड़े माने जाते हैं।
2. जातियाँ/ वर्ग, जो अपनी जीविका के लिए मुख्यतः शारीरिक श्रम पर ही आश्रित हैं।
3. जातियाँ/ वर्ग, जो राज्य के औसत से ग्रामीण क्षेत्र में 10 प्रतिशत पुरुष व 25 प्रतिशत महिलाएं 17 वर्ष से पूर्व विवाह कर लेते हों तथा इसी क्रम में नगरीय क्षेत्रो में 5 प्रतिशत पुरुष व 10 प्रतिशत महिलाएं विवाह करते हों।
4. जातियाँ/ वर्ग जहां राज्य के औसत से 25 प्रतिशत अधिक महिलाएं काम करती हैं।

शैक्षिक

1. जहां 5 से 15 वर्ष के बीच जातियाँ/ वर्ग के कभी स्कूल न जाने वाले बच्चों का प्रतिशत राज्य के औसत से 25 प्रतिशत से अधिक हो।
2. जातियाँ/ वर्ग, जहां 5-15 वर्ष के बीच स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों का प्रतिशत राज्य के औसत से 25 प्रतिशत से अधिक हो।
3. जातियाँ/ वर्ग, जहां मैट्रिक पास लोगों का प्रतिशत राज्य के औसत से 25 प्रतिशत से कम है।

आर्थिक

1. जातियाँ/ वर्ग, जिसमें परिवार की कुल संपत्ति की कीमत राज्य के औसत से 25 प्रतिशत से कम है।
2. जातियाँ/ वर्ग, जिसमें कच्चे मकान में रहने वालों का प्रतिशत राज्य के औसत से 25 प्रतिशत से अधिक है।
3. जातियाँ/ वर्ग जिनके 50 प्रतिशत से अधिक घरों के लोगों को आधा से एक किलोमीटर दूर पानी लेने जाना पड़ता है।
4. जातियाँ/ वर्ग, जिसमें राज्य औसत से 25 प्रतिशत से अधिक लोगों ने उपभोगता ऋण ले रखा हो।

ओबीसी जातियों को इन मानकों के आधार पर सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग में रखा गया है। इस प्रकार से आयोग ने 3,743 जातियों को चिन्हित किया है। अन्य पिछड़ी जातियों का औसत देश की

ज्ञान शांति मैत्री

पूरी जनसंख्या का52 प्रतिशत से थोड़ा अधिक है। 1980 में आयोग ने एक रिपोर्ट पेश की और मौजूदा कोटे में बदलाव करते हुए 22% से 49.5% वृद्धि करने की सिफ़ारिश की। 13 अगस्त 1990 को एक मेमोरेंडम के माध्यम से भारत सरकार द्वारा मंडल कमीशन की सिफ़ारिशें मान ली गई हैं। मंडल कमीशन के विरोध में अनेक स्थान पर उग्र हिंसक प्रदर्शन हुए। विभिन्न न्यायालयों में इनके खिलाफ़ याचिका दायर की गई। सुप्रीम कोर्ट ने अन्य पिछड़ी जातियों के संदर्भ में क्रीमीलेयर को छोड़कर अन्य के लिए मंडल कमीशन की सिफ़ारिशों को मान लिया। सुप्रीम कोर्ट के आदेशानुसार सरकार ने पटना हाईकोर्ट के न्यायाधीश जे. एन. प्रसाद की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ समिति को सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ों का निर्धारण करने का कार्य दिया। भारत सरकार ने 1993 में इस समिति का रिपोर्ट स्वीकार करते हुए लोक सेवाओं और पदों प 27 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था इस वर्ग के लिए स्वीकार कर ली। 1993 से ही भर्तियों में यही आरक्षण व्यवस्था लागू की गई।

1998 में केंद्र सरकार ने विभिन्न सामाजिक समुदायों की आर्थिक और शैक्षिक स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए पहली बार राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण किया। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण का आंकड़ा 32% है। जनगणना के आंकड़ों के साथ समझौतावादी पक्षपातपूर्ण राजनीति के कारण अन्य पिछड़े वर्ग की सटीक संख्या को लेकर भारत में काफ़ी बहस चलती रहती है। आमतौर पर इसे आकार में बड़े होने का अनुमान लगाया गया है, लेकिन यह या तो मंडल आयोग द्वारा या राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा दिए गए आंकड़े से कम है। मंडल आयोग ने आंकड़े मे जोड़-तोड़ करने की आलोचना की है। राष्ट्रीय सर्वेक्षण ने संकेत दिया कि बहुत सारे क्षेत्रों में ओबीसी (OBC) की स्थिति की तुलना अगड़ी जाति से की जा सकती है। 2005 में निजी शैक्षिक संस्थानों में पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिए आरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए 93वां सांविधानिक संशोधन लाया गया। इसने अगस्त 2005 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को प्रभावी रूप से उलट दिया। 2006 में सर्वोच्च न्यायालय के सांविधानिक पीठ में एम. नागराज और अन्य बनाम यूनियन बैंक और अन्य के मामले में सांविधानिक वैधता की धारा16(4) (ए), 16(4) (बी) और धारा 335 के प्रावधान को सही ठहराया गया। 2006 से केंद्रीय सरकार के शैक्षिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण शुरूहुआ। कुल आरक्षण 49.5% तक चला गया। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 10 अप्रैल 2008 को सरकारी धन से पोषित संस्थानों में 27% ओबीसी (OBC) कोटा शुरू करने के लिए सरकारी कदम को सही ठहराया। न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अपनी पूर्व स्थिति को दोहराते हुए कहा कि "क्रीमीलेयर" को आरक्षण नीति के दायरे से बाहर रखा जाना चाहिए।

क्रीमीलेयर को पहचानने के लिए विभिन्न मानदंडों की सिफ़ारिश की गई, जो इस प्रकार हैं:

साल में 250,000 रुपये से ऊपर की आय वाले परिवार को क्रीमीलेयर परत में शामिल किया जाना चाहिए और उसे आरक्षण कोटे से बाहर रखा जाए। इसके अलावा, डॉक्टर, इंजीनियर, चार्टर्ड एकाउंटेंट, अभिनेता, सलाहकारों, मीडिया पेशेवरों, लेखकों, नौकरशाहों, कर्नल और समकक्ष रैंक या उससे ऊंचे पदों पर आसीन रक्षा विभाग के अधिकारियों, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों,

सभी केंद्र और राज्य सरकारों के 'ए' और 'बी' वर्ग के अधिकारियों के बच्चों को भी इससे बाहर रखा जाए। अदालत ने सांसदों और विधायकों के बच्चों को भी कोटे से बाहर रखने का अनुरोध किया है।

2.5 अन्य पिछड़ा वर्ग के संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान में प्रस्तावना के ज़रिए भारतीय गणतंत्र को अपने नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, आज़ादी, समानता और भ्रातृत्व सुनिश्चित करने के उद्देश्य की प्राप्ति की परिकल्पना की गई है। यह सामाजिक न्याय के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अनुसरण की जाने वाली रीतिविधान भी प्रतिपादित करता है।

अनुच्छेद 14- राज्य को किसी व्यक्ति की कानून के समक्ष समानता या कानून की समान रक्षा की मनाई नहीं करने का आदेश देता है।"समानता के अधिकार" के सिद्धांत को अनुच्छेद15 से 18 में सकारात्मक और स्वीकारात्मक शब्दों में पुनः दुहराया गया है।

अनुच्छेद 15-किसी नागरिक से विभेद नहीं करने पर विचार करता है और अनुच्छेद15 के खंड (5) के तहत राज्य को शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश के मामले में नागरिकों के किसी सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिए कानून द्वारा विशेष प्रावधान करने की शक्ति दी गई है।

अनुच्छेद 16- द्वारा आम रोज़गार के मामले में अवसर की समानता घोषित करने का विशेष ध्यान रखा गया है। इस अनुच्छेद का खंड(1) घोषित करता है कि राज्य के अधीन किसी कार्यालय में रोज़गार या नियुक्तियों के मामले में इस देश के सभी नागरिकों को समान अवसर होगा। इसी के साथ खंड(4) घोषित करता है कि उक्त अनुच्छेद में कुछ भी राज्य को नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए कोई प्रावधान बनाने से नहीं रोकेगा, जिसका राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।

अनुच्छेद 46- समाज के कमज़ोर वर्गों के शैक्षिक व आर्थिक हित को संदर्भित करता है।

अनुच्छेद 15 के खंड (5) और अनुच्छेद 16 के खंड (4) के अंतर्गत राज्य सरकारें भी आयोग की नियुक्त करके विभिन्न पिछड़ी जातियों की आर्थिक और शैक्षिक समस्याओं की जानकारी ले सकती है। ऐसे आयोगों की रिपोर्ट के आधार पर शैक्षिक संस्थाओं और सरकारी संस्थाओं में आरक्षण लागू कर सकती है। चूंकि पिछड़ेपन की कसौटियाँ विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है, इसलिए पिछड़ेपन को मापने का कोई अखिल भारतीय मापदंड नहीं है।

2.6 राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग

आयोग का गठन उच्चतम न्यायालय के इस निदेश के अनुसार भारत सरकार ने केंद्र में राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग स्थापित करने के लिए 2 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1993 को अधिनियमित किया।इस अधिनियम की धारा 3 में यह प्रावधान है कि आयोग में पांच सदस्य होंगे, जिनमें से एक अध्यक्ष होगा, जो उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होगा या रह चुका होगा, दूसरा समाजविज्ञानी होगा, दो सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे, जिन्हें पिछड़े वर्गों से संबंधित मामलों में

विशेष ज्ञान हो और एक सदस्य सचिव होगा, जो भारत सरकार के सचिव के स्तर का केंद्र सरकार का कोई अधिकारी होगा या रह चुका होगा। आयोग के प्रत्येक सदस्य की पदावधि उसके कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से 3 वर्ष की होगी।

आयोग के कार्य

- अन्य पिछड़ा वर्ग के सूचियों में नागरिकों के किसी वर्ग को पिछड़ा वर्ग के रूप में शामिल करने के अनुरोध की जांच करेगा और इस सूची में किसीअधिक समावेशन या कम समावेशन की शिकायतों की सुनवाई करेगा और केंद्र सरकार को ऐसी सलाह देगा, जिसे वह उचित समझे। इस आयोग की सलाह समान्यतः केंद्र सरकार पर बाध्यकारी होगी।
- केंद्र सरकार को इस अधिनियम के लागू होने से दस वर्ष की समाप्ती पर और उसके बाद अगले प्रत्येक दस वर्ष की समाप्ती पर पिछड़ा वर्ग की सूचियों के संशोधन का कार्य करने का आदेश दिया गया है। इन सूचियों से उन वर्गों को हटाने, जो पिछड़ा वर्ग नहीं रह जाते अथवा इस सूची में नए पिछड़े वर्गों को शामिल करने के दृष्टिकोण से किसी भी समय इन सूचियों को संशोधित करने की शक्ति प्रदान की गई है। केंद्र सरकार के लिए इन सूचियों का संशोधन करते समय आयोग से सलाह लेना आवश्यक होगा।
- आयोग को विशेष तौर पर भारत के किसी भी भाग में किसी व्यक्ति को समन करने और उसकी उपस्थिति को अनिवार्य करने और शपथ दिलाकर उससे पूछताछ करने, किसी दस्तावेज का पता लगाने और उसे पेश करने के लिए कहने, शपथपत्र पर साक्ष्य प्राप्त करने, गवाह से पूछताछ करने और दस्तावेज प्राप्त करने के लिए नोटिस जारी करने और किसी भी अन्य मामले, जो निर्धारित किए जाएं, के संबंध में वाद का परीक्षण करने वाले सिविल न्यायालय की शक्तियाँ प्राप्त है।
- आयोग प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए अपनी रिपोर्ट तैयार करेगा, साथ ही आयोग द्वारा दी गई सलाह पर की गई कारवाई के ज्ञापन और इनमें से कोई सलाह स्वीकार नहीं की जाती है, तो उसके कारण और लिखित परीक्षा रिपोर्ट के साथ केंद्र सरकार द्वारा संसद के दोनों सदनों के समक्ष पेश की जाएगी।
- आयोग की सलाह एकमत से या सर्वसम्मति से या बहुमत से तैयार की जाए। यदि एकमत या सर्वसम्मति नहीं बनती है, तो बहुमत की सलाह आयोग की सलाह के रूप में दी जाएगी, लेकिन विसम्मति सूचक सलाह भी सरकार को भेजी जाएगी।

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग वास्तव में आने के बाद निम्नलिखित कदम उठाए है:

- पिछड़ा वर्ग की केंद्रीय सूची में पिछड़े वर्गों शामिल करने के अनुरोध और सूची में अधिक समावेशन या कम समावेशन की शिकायतों की जांच की प्रक्रिया तैयार की गई थी।

ज्ञान शांति मैत्री

- केंद्रीय सूची में पिछड़े वर्गों को शामिल करने के अनुरोध औरकम समावेशन की शिकायतों पर विचार के लिए दिशानिर्देश तैयार किए गए थे।
- जातियों/समुदायों को शामिल करने के अनुरोध के संबंध में आंकड़े प्राप्त करने के लिए प्रश्नावली तैयार की गई थी।
- आयोग अनुभव और आवश्यकता के आधार पर समय-समय पर इस प्रक्रिया में संकलन और सुधार करता आ रहा है।

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं है। पिछड़े वर्गों से संबंधित कल्याण और शिकायत के मुद्दे को देखने की शक्ति अभी भी संविधान के अनुच्छेद338 की खंड (10) के अंतर्गत राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग को सौंपी गई है। परिणामस्वरूपराष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के पास पिछड़े वर्गों से संबंधित कल्याण और शिकायत के मुद्दे को देखने की शक्ति नहीं है। वर्तमान में इसकी भूमिका केवल अन्य पिछड़ा वर्ग की केंद्रीय सूची में जातियों के समावेशन और अपवर्जन तक सीमित है।

2.7 अन्य पिछड़ा वर्ग विकास कार्यक्रम

आर्थिक विकास

भर्ती के लिए रियायती मानक, आयु में छूट और प्रयासों की संख्या में वृद्धि सरकार ने 13 अक्तूबर, 1993 से अनुसूचित जाती एवं जनजाति उम्मीदवारों की तरह ही अन्य पिछड़े वर्गों को लिखित परीक्षा और साक्षात्कारों में रियायती मानक के लाभ प्रदान किए हैं। भारत सरकार ने 25 जनवरी 1995 को अनुदेश जारी किया है, जिससे सीधी भर्ती में अन्य पिछड़े वर्गों के उम्मीदवारों के लिए अधिकतम आयु सीमा में तीन वर्ष की छूट तथा सिविल सेवा परीक्षाओं में अन्य पिछड़े वर्गों के उम्मीदवारों के लिए, जो अन्यथा पात्र हैं, प्रयासों की संख्या सात वर्ष तक बढ़ा दी गई है।

1 जनवरी, 2005 तक केंद्र सरकार की सेवाओं में अन्य पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व निम्नलिखित है

वर्ग	कुल	अ. पि. वर्ग	प्रतिशत
(क)	80589	3791	4.7
(ख)	139958	3252	2.3
(ग)	20.36103	119968	5.9
(घ)	767224	32973	4.3
सफाई कर्मचारी	81174	1834	2.3
कुल	3105048	161818	5.21

(स्रोत- भारत 2014)

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त और विकास निगम: राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त और विकास निगम आय अर्जन की विभिन्न गतिविधियों के लिए उन लोगों को ऋण सुविधाएं प्रदान करता है, जो गरीबी रेखा के

नीचे जीवनयापन करने वाले तथा , जिनकी वार्षिक आय बी.पी.एल. वालों से दुगनी से कम है। इसमें महिला समृद्धि योजना को लागू करना भी शामिल है।31 मार्च 2012 तक निगम की 1000 करोड़ रुपए की अधिकृत पूंजी में से 672.80 करोड़ रुपए प्रदान की गई है। निगम से ऋण प्राप्त करने वाले लाभार्थियों की संख्या बढ़ाकर 139100 हो गई है। (भारत 2011)

शैक्षिक विकास

नौवीं योजना में अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याणार्थ कार्यान्वयनाधीन योजनाएं: पिछड़े समुदाय के सामाजिक तथा आर्थिक स्तर में सुधार लाने तथा विशेष कोचिंग कार्यक्रमों के माध्यम से सुनिश्चित करने के लिए छात्रावास सुविधाओं सहित मैट्रिक पूर्व और मैट्रिकोत्तर एवं साथ ही अन्य उच्च शिक्षा का अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्ति देने हेतु भारत सरकार द्वारा नौवीं योजना शुरू की गई। इनका समीक्षात्मक दृष्टि से मूल्यांकन एवं संशोधन किया जा रहा है ताकि अन्य पिछड़े वर्ग के प्रतिभावान उम्मीदवारों का उच्चत्तर एवं व्यावसायिक संस्थाओं में प्रवेश सुनिश्चित किया जा सके।

अन्य पिछड़े वर्गों के लिए मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्तिअन्य पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति की योजना का उद्देश्य मान्यता प्राप्त स्कूलों में मैट्रिक-पूर्व चरण पर अध्ययन करने वाले अन्य पिछड़े वर्गों के छात्रों को प्रेरणा प्रदान करना है। इस योजना के अंतर्गत उस छात्रों को छात्रवृत्ति मंजूर की जाती है, जिसके माता-पिता/ अभिभावकों की सभी स्त्रोतों से आय प्रति वर्ष 44,500 रुपए से अधिक न हो। यह छात्रवृत्ति उन संस्थाओं में तथा उन मैट्रिकपूर्व पाठ्यक्रमों के लिए तर्कसंगत है जिन्हें संबंधित राज्य सरकार तथा संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन द्वारा विधिवत मान्यता प्रदान की जाती है।

अन्य पिछड़े वर्ग के छात्रों को भारत में अध्ययन के लिए मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति: इस योजना का उद्देश मैट्रिकोत्तर अथवा पोस्ट सैकेंडरी स्तर पर अध्ययनरत अन्य पिछड़े वर्ग के निर्धन छात्रों को अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करके उनके उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना है। ये छात्रवृत्तियाँ भारत में अध्ययन के लिए ही उपलब्ध होंगी और राज्य सरकार/ संघ राज्य क्षेत्र द्वारा प्रदान की जाएंगी जिनसे आवेदक वास्तविक रूप से संबंधित है। इस उद्देश्य के लिए राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों को उनकी प्रतिबद्ध देयता के अलावा 100 प्रतिशत केंद्रीय सहायता प्रदान की जाती हैं।

अन्य पिछड़े वर्गों के लड़कों और लड़कियों के लिए होस्टल: इस योजना का उद्देश्य केंद्रीय/राज्य/संघ क्षेत्र प्रशासन की पिछड़े वर्गों की सूचियों के रूप में अधिसूचित तथा समान्यतः अन्य पिछड़े वर्गों के रूप में उल्लिखित सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के छात्रों को शिक्षा केबेहतर अवसर प्रदान करना है। इस योजना के अंतर्गत क्रीमीलेयर को शामिल नहीं किया जाएगा। होस्टल निर्माण के लिए राज्यों को 50 प्रतिशत केंद्रीय सहायता एवं संघ राज्य क्षेत्रों को 100 प्रतिशत केंद्रीय सहायता प्रदान की जाती है। इन होस्टलों का निर्माण मिडिल, सैकेंडरी, कालेज तथा विश्वविद्यालय स्तर के छात्रों के लिए किया जाता है। इन होस्टलों में से एक तिहाई लड़कियों के लिए होते हैं। पांच प्रतिशत सीटें विकलांग छात्रों के लिए होस्टलों में आरक्षित होते हैं।

अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए स्वैच्छिक संगठनों को सहायता: इस योजना का उद्देश्य स्वैच्छिक क्षेत्र की सहायता से अन्य पिछड़े वर्गों की शैक्षिक और आर्थिक-सामाजिक स्थिति सुधारने का प्रयास करना है, जिससे वे आय बढ़ाने के लिए अपना काम-धंधा शुरू कर सकें और लाभप्रद रोज़गार प्राप्त कर सकें। इस योजना के तहत प्रशिक्षण केंद्र खोलने के लिए स्वीकृत खर्च का 90 प्रतिशत अनुदान के रूप में गैर-सरकारी संगठन को दिया जाता है। इन प्रशिक्षण केंद्रों में बढ़ईगिरी, कंप्यूटर, दस्तकारी, इलेक्ट्रिशियन, मोटर मैकेनिक, फोटोग्राफ, मुद्रण, कंपोजिंग, बुक बाइंडिंग, टाइप और वेल्डिंग, फिटिंग आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है।

2.8 सारांश

इस इकाई में हमने अन्य पिछड़े वर्ग के विकास के मूलभूत पक्षों पर चर्चा की। उनका सामाजिक स्तर विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत निम्न है, शैक्षिक एवं आर्थिक तौर पर वे अन्य उच्च जातियों की तुलना में पीछे हैं। हमने यह भी देखा है किअन्य पिछड़े वर्ग के विकासके लिए गठित राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग किस तरह से उनके विकास में सहयोग प्रदान करता है। इस इकाई में हमने आयोग के कार्य एवं संचालन का सिंहावलोकन भी किया है। इसी के साथ पिछड़े वर्ग के आर्थिक और शैक्षिक विकास की योजनाओं की भी चर्चा इसमें की गई है।

भारत में अन्य पिछड़ा वर्ग की अवधारणा में काफ़ी विभिन्नता दिखाई देती है। हर बार अलग-अलग कमिटियों ने इस वर्ग को अपनी तरह से परिभाषित तथा परिसीमित करने का कार्य किया है। इन सबके बावजूद जमीनी धरातल पर ओबीसी के नाम से जाना जाने वाला यह वर्ग, जिसमें विभिन्न जातियाँ शामिल है, खुद को मध्यवर्ग के रूप में देखता है। इसमें बदलाव न के बराबर चलते हैं किंतु इनकी संवैधानिक तथा सामाजिक स्थिति दोनों में भिन्नता दिखती है, क्योंकि भले ही सामाजिक रूप से स्वयं को दलितों से ऊपर मानने वाला यह वर्ग संवैधानिक स्थिति में आरक्षण की मांग करता नज़र आता है। इसपर आज भी इस मुद्दे को लेकर कई सारे आंदोलन चल रहे हैं कि ओबीसी को आरक्षणज़रूरी है कि नहीं या इस वर्ग को आर्थिक तर्ज पर आरक्षण देना चाहिए। कई तरह के विवादों के गिरफ्त में यह अन्य पिछड़ा वर्ग दलितों और द्विज जातियों से अलग अपना अस्तित्व बनाए रखने की लगातार कोशिश करता है।

2.9 बोध प्रश्न

1) अन्य पिछड़े वर्ग से क्या तात्पर्य है।
2) अन्य पिछड़े वर्गों की समस्याओं को रेखांकित कीजिए।
3) अन्य पिछड़े वर्गों से संबंधित विभिन्न आयोगों का संक्षेप में विवरण दीजिए।
4) राष्ट्रीय पिछड़े वर्ग आयोग के कार्यों का वर्णन कीजिए।
5) अन्य पिछड़े वर्ग के आर्थिक एवं शैक्षिक उत्थान एवं विकास के सरकारी प्रयासों की चर्चा कीजिए।

2.10 उपयोगी एवं संदर्भ ग्रंथ

हसनैन, नदीम (2009). *समकालीन भारतीय समाज एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य*. लखनऊ: भारत बुक सेंटर.

सिंह,जे. पी. (2016). *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन: 21 वीं सदी में भारत*. दिल्ली: पीएचएललर्निंग प्राइवेट लि.

शाह, घनश्याम (हिंदी अनु. रावत, एच.) (2004). *भारत में सामाजिक आंदोलन*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन्स.

वार्षिक रिपोर्ट 2013-14.*राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग*. भारत सरकार.

भारत 2014 (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ). *प्रकाशन विभाग*. सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार.

भारत 2011 (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ). *प्रकाशन विभाग*. सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार.

https://hi.wikipedia.org/wiki/भारत में आरक्षण

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3 विशेष योग्यजन

इकाई की रुपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 विशेष योग्यजन की अवधारणा
3.3 विशेष योग्यजनों का वर्गीकरण
 3.3.1 नेत्रहीन
 3.3.2 मूकबधिर
 3.3.3 मानसिक दृष्टि से मंदता
 3.3.4 शारीरिक व अन्य प्रकार की विशेष योग्यता
3.4 विशेष योग्यजनों की सहायता के उद्देश्य
3.5 समस्या समाधान के उपाय
3.6 विशेष योग्यजनों के लिए संवैधानिक एवं विधिक संरक्षण
3.7 विशेष योग्यजनों के पुनर्वास कार्यक्रम
3.8 सारांश
3.9 बोध प्रश्न
3.10 उपयोगी एवं संदर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- विशेष योग्यजन की अवधारणा को परिभाषित सकेंगे।
- विशेष योग्यजनों के वर्गीकरण को समझ सकेंगे।
- विशेष योग्यजनों की सहायता के उपायों का वर्णन कर सकेंगे।
- भारत में विशेष योग्यजनों के लिए उपलब्ध संवैधानिक एवं विधिक संरक्षणसे अवगत हो सकेंगे।
- विशेष योग्यजनों के पुनर्वास कार्यक्रम कोरेखांकित कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

अल्बर्ट आइंस्टाइन की सीखने की क्षमता कम थी, फिर भी उन्होंने सापेक्षता का सिद्धांत विकसित कर दिया, जिसने आज दुनिया को देखने और समझने के लोगों के दृष्टिकोण पर बहुत प्रभाव डाला। थॉमस अल्वा एडिसन ऊंचा सुनते थे, लेकिन जिस आधुनिक दुनिया में हम रह हैं उसके निर्माण में उसके

ज्ञान शांति मैत्री

आविष्कार बिजली जितना योगदान किसी और चीज़ ने नहीं किया। लुई ब्रेल देख नहीं सकते थे किंतु उनके ही नाम से प्रसिद्ध उनकी रचना ब्रेल ने दुनिया भर के नेत्रहीन लोगों को पढ़ने और लिखने की क्षमता दी। इन लोगों ने सिद्ध किया कि किसी की अक्षमता नहीं, बल्कि क्षमता महत्वपूर्ण होती है।
भारत में वर्ष 2001 से 2011 के बीच विशेष योग्यजनों की संख्या 22.4 प्रतिशत बढ़ गई है। 2001 में 2.19 करोड़ विशेष योग्यजन थे, जो वर्ष 2011 में 2.68 करोड़ हो गए, जिनमें 1.5 करोड़ महिलाएं थीं। विशेष योग्यजनों की संख्या में वृद्धि की दर शहरी क्षेत्रों में एवं शहरी महिलाओं में अधिक है। समूचे दशक के दौरान शहरी क्षेत्रों में 48.2 प्रतिशत और शहरी महिलाओं में55 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। अनुसूचित जातियों में विशेष योग्यजनों की वृद्धि दर 2.45 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष योग्यजनों की कुल संख्या 1.8 करोड़ से अधिक है और शहरों में केवल 81 लाख है। पुरुषों में 2.41 प्रतिशत तथा महिलाओं में 2.01 प्रतिशत विशेष योग्यजन हैं।(2011 की जनगणना)

3.2 विशेष योग्यजन का अवधारणा

1895 में मानसिक रूप से विकलांगता के लिए रिटार्डेड (मंदबुद्धि) शब्द का प्रयोग मिलता है।ऐसा कहा जाता है कि मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े कुछ पेशेवरों ने इस शब्द के उपयोग को हतोत्साहित करने के प्रयास किए। **रिटार्डेड** *लैटिन* भाषा के **रिटार्डेयर** शब्द से आया है, जिसका अर्थ- धीमी गति से, देरी से, पीछे की ओर या बाधा होता है। उसके बाद 'मानसिक विकलांगता' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। इस समय में मानसिक विकलांगता शब्द का उपयोग नैदानिक शब्द के रूप में होता था, जो मानसिक कामकाज के अतार्किक श्रेणियों के समूह की ओर संकेत करता है जैसे 'मूर्ख' 'हीन बुद्धि' और 'बेवकूफ' इसे प्रारंभिक बुद्धि परिक्षण के ज़रिए तय किया जाता था। विकलांगता शब्द का प्रयोग बेवकूफ, मूर्ख, हीनबुद्धि जैसे शब्दों की जगह इस्तेमाल किया गया जाने लगा, क्योंकि उस समय तक वह अपमानजनक शब्द नहीं माना गया था। हालांकि 1960 तक इस शब्द का उपयोग आंशिक रूप में अपमानजनक अर्थ में होने लगा था। वर्तमान में विकलांगता शब्द का उपयोग समाज में नकारात्मक संकेतार्थ के रूप में प्रतिबिंबित होने लगा है। इस कारण2010 से विकलांगता शब्द का प्रयोग सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थानों में और अन्य जगहों पर खत्म करने का प्रयास अंतरराष्ट्रीय सांठन और राष्ट्रीय संगठन कर रहे हैं।
आज 'विकलांग' शब्द धीरे-धीरे 'विशेष योग्यजन','चुनौती ग्रस्त','विकासात्मक देरी' जैसे नए शब्दों द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा है। व्यक्ति किसी भी स्थान पर हो, किसी भी उम्र का हो, स्त्री हो या पुरुष हो अथवा विकलांग या विशेष योग्यजन हो, प्रत्येक की एक जीवन योजना है, एक उद्देश्य है, एक मूल्य है। यह स्वीकार करने की आवश्यकता है कि विशेष योग्यजन व्यक्ति सर्वाधिक प्रेरणास्पद व्यक्ति होते हैं। विशेष योग्यजन कहने से सम्मानपूर्ण, प्रोत्साहित, आनंदमय, प्रेरणादायी वातावरण सृजन करने का और

उनके पास सामान्य व्यक्तियों से अलग क्षमता या विशेष योग्यता होने का अर्थबोध होता है, जो उन्हें आत्मविश्वास की भावना का विकास एवं कौशल्य विकास में सहायता देता है।

विशेष योग्यजन शब्द से तात्पर्य क्या है? जब किसी बालक को सीखने समझने में विशेष समस्या उत्पन्न होती है तो वह बालक विशेष योग्यजन कहलता है। यदि कोई बालक सामान्य बच्चों की तरह देख नहीं सकता है, तो वह दृष्टिहीन विशेष योग्यजन कहलाएगा। इसी प्रकार विशेष योग्यजन मानसिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक अथवा शैक्षिक क्षेत्र में रेखांकित किए जा सकते हैं। जिन बच्चों मेंकोई भी विशेष योग्यता पाई जाती है, वह विशेष योग्यजन कहलाता है। विशेष योग्यजन बच्चों का व्यवहार, स्वभाव और शारीरिक संरचना प्रायः स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। विशेष योग्यजन एक ऐसी अवस्था है, जो किसी भी व्यक्ति को किसी भी आयु में उसके सामान्य व्यवहार, कार्य शक्ति, विचार एवं भाषा को प्रभावित कर शारीरिक, मानसिक, समाजिक एवं भावात्मक असंतुलन पैदा कर देती हैं।

विशेष योग्यजन वे है कि जो अपनी व्यक्तिगत, शरीरिक, मानसिक और समाजिक सीमाओं और परिस्थितियों के कारण अपना जीवन सामान्य रुप से बिताने में असमर्थ है। वास्तवतः वेअपनी व्यक्तिगत समस्याओं के कारण अपना सामान्य जीवन बिना किसी सहायता के नहीं बिता सकते और इस प्रकार असंतुलन एवं असामंजस्य उनके जीवन की विकट समस्याएं बन जाती है। उनका व्यवहार एवं सामाजिक प्रकार्यात्मकता दूषित और कठिन हो जाती है और वे समाज पर भार बन जाते है। एक विकासशील, सजग और प्रजातांत्रिक समाज उनके विकास और पुनर्गठन के उत्तरदायित्व से अपने आपको अलग नहीं रख सकता।

विशेष योग्यजन समाज के उतने ही अनिवार्य अंग हैं जितना स्वस्थ व्यक्ति। उनके उत्थान या विकास एवं पुनर्वास हेतु प्रयत्न करना हमारा नैतिक कर्तव्य है। यहदेखा गया है कि आधिकांश मामलों में अशक्त व्यक्तियों में सामान्य जीवन जीने की इच्छा तथा जीवन के प्रति उत्साह होता है और केवल यह प्रमाणित करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा होती है कि वह भी अपने सुपुर्द कार्यों को उतने ही प्रभावी ढंग से पूरा कर सकते हैं, जैसे अन्य सामान्य व्यक्ति। थोडी सी सहायता से अशक्त व्यक्ति अपने दुर्भाग्य पर विजय पा सकते हैं। उनके कौशल एवं उनकी प्रतिभाओं का उपयोग राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। अतएव उनमें आत्मविश्वास की भावना का विकास किया जाना चाहिए, ताकि वे भी जीवन की मुख्यधारा में सम्मिलित हो सकें।

3.3 विशेष योग्यजनों का वर्गीकरण

हमारे समाज में असामान्य बच्चों के लिए कई नाम प्रचलित हैं अपंग, अपाहिज, असाध्य, रोगी, जडमति आदि। अतः हमें पहले इसके लिए एक शब्द का ही प्रयोग करना चाहिए और वह कदाचित विशेष योग्यजन ही सर्वोच्च प्रतीत होगा। विशेष योग्यजनों के प्रकारों का विवरण ही उनका वर्गीकरण है। यह वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है, लेकिन सबका उद्देश्य विशेष योग्यजनों की समस्या और

संभावनाओं को रेखांकित करना है। भारत सरकार के समाज कल्याण विभाग ने विशेष योग्यजन व्यक्तियों को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया है।

विशेष योग्यजनता के प्रकार	व्यक्ति	पुरुष	महिलाएं
देखने में	50,32,463	26,38,516	23,93,947
सुनने में	50,71,007	26,77,544	23,93,463
बोलने में	19,58,553	11,22,896	8,75,639
गतिशीलता में	54,36,604	33,70,374	20,66,230
मानसिक विक्षिप्तता में	15,05,624	8,70,708	6,34,916
मानसिक कमज़ोरी	7,22,826	4,15,732	3,07,094
अन्य	49,27,011	27,27,828	21,99,183
एकाधिक विशेष योग्यजनता	21,16,487	11,62,604	9,53,883
कुल	2,68,10,557	1,49,86,202	1,18,24,355

स्रोत: जनगणना 2011

3.3.1 नेत्रहीन

नेत्रहीनता का सामान्य अर्थ दृष्टि के पूर्ण आभाव से है। जन्म से नेत्रहीन और कुछ अन्य प्रकार के जैसे युद्ध, मारपीट, मस्तिष्क ज़ोर, सिर में चोट, मानसिक अपघात, लकवा आदि कारणों से दृष्टिविहीन रोगियों को नेत्रहीनों की परिभाषा में सम्मिलित किया जाता है।

नेत्रहीनों की समस्या: नेत्रहीन का जीवन बड़ा ही कष्टदायी होता है। प्राचीन काल में तो नेत्रहीनों के उपर कभी ध्यान नहीं दिया जाता था। उसे बिना किसी देखभाल के छोड़ दिया जाता था और वह भिक्षा मांग कर अपनी जीविका चलाता था। ऐसे बच्चे, जो जन्म से अंधे होते थे, फेक दिए जाते या मार दिए जाते थे। दुनिया के किसी भी भाग में अंधे को रखना अच्छा नहीं समझा जाता था।

नेत्रहीनता के कारण: नेत्रहीनता मूलतः एक चिकित्सकीय समस्या समझी जाती है, परंतु भारतीय संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इसके कारणों की दृष्टि से भारतीय जनसंख्या की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियां महत्वपूर्ण है, जो निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट है-

i. संक्रमण रोगों के दौरान असावधानी के कारण रोगी दृष्टिहीन हो जाते है। रक्त का विकार भी दृष्टिहीनता के कारण बन जाता है। बालकों की नेत्रहीनता अधिकतर कुपोषण के कारण होती है। आर्थिक और सामजिक कारक मुख्य रुप से भारतीय ग्रामीण जनसंख्या के अंसतोषजनक और असंतुलित आहार के लिए उत्तरदायी है। मोतियाबिंद एक ऐसी आंख की बीमारी है जो उपचार

ज्ञान शांति मैत्री

योग्य है, परंतु अज्ञानता के कारण लोग समय पर इलाज नहीं करते और नेत्रहीनता के शिकारहोते हैं।

ii. मारपीट व दुर्घटना व्यक्ति को दृष्टिहीन बना देती है। बालक के जन्म के समय एक साधारण चोट भी नेत्रहीनता का कारण बन सकती हैं। औद्योगीकरण के साथ-साथ औद्योगिक दुर्घटनाओं के कारण से उत्पन्न होने वाली अयोग्यताएं और अक्षमताएं भी बढती जा रही है। इसे भी नेत्रहीनता का कारण माना जा सकता है।

iii. परिवार में किसी भी व्यक्ति की अंधता संतानादि पर अपना प्रभाव छोडती है। परिणाम स्वरुप बालक वंशानुगत नेत्ररूप से विशेष नेत्रविहीन योग्यजनबन जाता है।

iv. साधारण रोग आंखों का रोग या शरीर के अन्य किसी रोग के कारण भी दृष्टिहीनता संभव है। परिवेश जन कारकों एवं धुल, धुआ और धूप भी आँखो के रोग और दृष्टिहीनता का कारण बन सकती है।

v. विषैले पदार्थों का प्रयोग, विष या मादक द्रव्यों के सेवन से भी व्यक्ति नेत्र हीनता का शिकार बन सकता है।

निराकरण के उपाय: नेत्रहीनों की समस्या के निराकरण के लिए सर्वप्रथम अंधापन को बढ़ाने वाले कारणों को दूर करना उचित होगा। तत्पश्चात नेत्रहीनों के लिए ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि उन्हें अंधा होने के कारण उन्हें किन्हीं कठिनाईयों का सामना न करना पड़े। नेत्रहीनों को शिक्षा देकर इस योग्य बना दिया जाए कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके तथा उन्हेंस्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर बनाना चाहिए। वे अपनी रोज़ी स्वयं कमा सकें तथा उन्हेंकिसी पर आश्रित रह कर जीवनयापन न करना पड़े। शिक्षा और अभ्यास से एक नेत्रहीन भी उतना ही कारगर हो सकता हैं, जितना कि सामान्यरूप से देख जाने वाला व्यक्ति हमारे देश में नेत्रहीनों की स्थिति दयनीय है। उन्हें गली-गली भटक कर भिक्षा मांग कर जीवनयापन करना पड़ता है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि जगह-जगह नेत्रहीनों के लिए स्कूल खोले जाएं, जहां उन्हें समुचित शिक्षा देकर ऐसा बना दिया जाएं कि वे भिक्षावृत्ति को छोडकर अन्य उत्पादकों में अपना हाथ बंटा सकें।

3.3.2 बधिया मूक

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह अकेला नहीं रह सकता। उसे अन्य व्यक्ति से संबंध स्थापित करने के लिए भाषा प्राप्त है। इस भाषा के मौखिक व्यवहार से व्यक्ति मनोभावों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। वाणी द्वारा वह प्राकृतिक दृश्यों, तथ्यों और घटनाओं को प्रकट करता हैं। इस मौखिक अभिव्यक्ति की सिद्धि वाक् शुद्धता पर निर्भर करती है। वाक् कमज़ोरी के अंतर्गत अस्पष्ट उच्चारण, असंगत ध्वानि, हकलाना, तुतलाना तथा ध्वनि उत्पन्न न कर पाना आदि व्यवहार सम्मिलित है।

'बधिर' वह है, जिसमें सुनने की शक्ति सामान्य कार्यों के लिए सहायक नहीं होती है या, जो अपने व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए सुन नहीं पाता और दोनों कानों से बहरा है। बधिरता के कारण

बालक/बालिका वाक् शक्ति का भी विकास नहीं कर पाता, इसलिए वह मुक बन जाता है। बधिरता दो प्रकार की होती है- 1) जन्मजात बधिर, जो वह जन्म से बधिर होने के कारण अपनी बोलने के शक्ति का विकास नहीं कर पाता है। 2) जिनका विकास सामान्य होता है, जो बोलने और सुनने की क्षमता तो विकसित कर लेते हैं, परंतु किसी बीमारी या दुर्घटना के कारण उनमें श्रवण शक्ति बंद पड़ जाती है। इनको विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती है, बल्कि उपचारात्मक उपायों से सुधारा जा सकता है।

मूकबधिरता के कारण: कुछ तो जन्म से ही बहरे और गूंगे होते हैं कुछ बधिरता का कारण पैतृक पारिवारिक, आर्थिक व सामाजिक भी हो सकता है तथा कुछ बाद में बीमारी के फलस्वरुप मूक और बधिर होते हैं। जैसे- माता को गर्भकाल में कुछ दवाएं देने के परिणामस्वरूप शिशु को बधिर बना सकती है। कुछ, जो अन्य कारक बहरेपन में योगदायी हैं, उनमें गले की बीमारियों-चेचक, कुपोषण, तेज ज्वर, मलेरिया, टायफायड, मध्य कर्ण शोध, सैप्टिक टान्सिल्स, संक्रामक बीमारियाँ, निमोनिया, क्षय रोग, मेनिंजाइटिस आदि उल्लेखनीय है। सामाजिक एवं आर्थिक कारणों में संतुलित आहार का अभाव,रहन-सहन का निम्न स्तर, असंतोषजनक चिकित्सा सुविधाएं और संबंधित ज्ञान का अभाव विशेष स्थान रखते है। बधिरता अचानक हो सकती है और धीरे-धीरे भी विकसित हो सकती है।

बधिर व्यक्ति विभिन्न प्रकार की बाधाओं के शिकारहोते हैं। उनकी मूल समस्या संचार का अभाव है। न सुन पाने का एकमात्र परिणाम यह होता है कि क्षमता रखते हुए भी वह बोल नहीं पाता है। वह केवल इशारों से अपने विचार प्रकट करता है और इस प्रकार उसका संवेगात्मक एवं मानसिक विकास शिथिल होता है।

3.3.3 मानसिक दृष्टि से मंदता

मानसिक विशेष योग्यजन के अंतर्गत मंदबुद्धि बालक से लेकर जड़मति शामिल है। अपूर्ण मानसिक विकास और अवरुद्ध होने के कारण वे स्वयं पर नियंत्रण नहीं रखपाते हैं और न ही वे अपना जीविकापार्जन कर पाते हैं तथा उनमें परिपक्वता के लक्षण नहीं दिखाई देते है। इसलिए वह दूसरे की सहायता एवं मार्गदर्शन पर अपना जीवन निर्भर करते हैं। मानसिक देरी (मंदता) को समझने के लिए विभन्न दृष्टिकोणों की आवश्यकता प्रतीत होती है। सामाजिक दृष्टिकोण के अनुसार यह बच्चे तथा व्यक्ति प्रारंभ से ही समाज तथा परिवेश से समायोजन नहीं करपाते हैं, क्योंकि इनमें मानसिक दुर्बलता होती है अतः इसे मानसिक (मंदता) कहा जाता है। वैधानिक दृष्टिकोण से मानसिक दुर्बलता का अर्थ उस व्यक्ति से होता है, जिसको नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित, सही-गलत आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। शिक्षा के क्षेत्र में, जो बच्चे दुर्बल पाए जाते हैंऔर सामान्य बच्चों के तुलना में कक्षा के स्तर के अनुसार विकास नहीं कर पाते हैं, उन्हें मानसिक देरी कहते है। बुद्धि के अभाव के कारण उसे किसी व्यवहार के लिए ज़िम्मेदार नहीं माना जा सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से जिस बच्चे की बुद्धिलब्धि70 से कम होती है उसे मानसिक देरी माना जाता है। मानक बुद्धि परीक्षणअंकों पर आधारित निम्नलिखित श्रेणियां

अमेरिकन एसोसियेशन ऑफ मेडिकन रिटार्डेशन, डायग्नोस्टिक एंड स्टेटिकल मैन्युअल ऑफ मेंटल डिजआडर्स-IV-टीआर और इंटरनेशनल क्लासिफिकेशन ऑफ डिजिजेज-10 पर आधारित है:

वर्ग	**बुद्धिलब्धि**
गहरी मानसिक विकलांगता	20 के नीचे
गंभीर मानसिक विकलांगता	20-34
मध्यम मानसिक विकलांगता	35-49
हल्की मानसिक विकलांगता	50-69
औसत बौद्धिक कार्य	70-84

मानसिक मंदता 3 प्रकार के होते हैं:

- **मूर्ख**: इनकी बुद्धिलब्धि 50 से 70 के बीच होती है यह मानसिक मंदता के पहली श्रेणी में आते है, अतः भेद करना भी कभी-कभी कठिन जाता है। ऐसे बच्चे का पढ़ने में मन नहीं लगता, समायोजन नहीं कर पाते, प्रत्येक विषय कठिन लगता है।
- **मूढ़**:इनकी बुद्धिलब्धि 25से 50 के बीच होती है। इनमें आत्म-नियंत्रण तथा आत्म-संयम की क्षमता नहीं होती है। ये किसी भी प्रकार की पढ़ने- लिखने की क्षमता नहीं रखते है।
- **जड़**: इनकी बुद्धिलब्धि 25 से नीचे होती है। ऐसे बालक न तो सुनते हैं न ही देखने का प्रदर्शन करते हैं। ये शारीरिक अंगों जैसे- हाथ-पैर का भी प्रयोग नहीं करते। इनमें संवेदनशीलता का पूर्णतः अभाव पाया जाता है।

मानसिक मंदता (देरी) के कारण- मानसिक मंदता के प्रमुख दो कारण होत है।

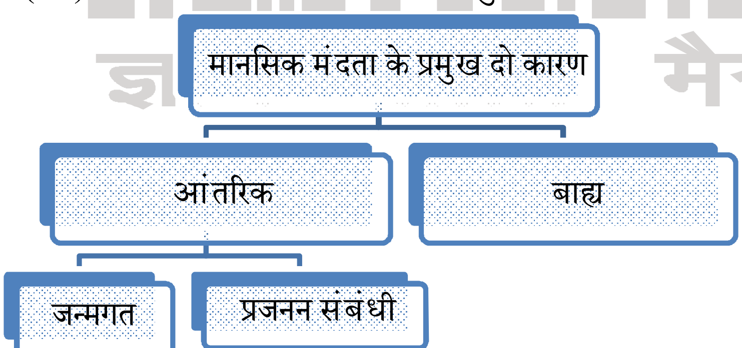

जन्मगत कारणों का संबंध अंग संरचना से होता है। अंग संरचना पर दबाव पड़ने के कारण मस्तिष्क का विकास बाधित हो जाता है। प्रजनन संबधी कारणों में गर्भाधारण के समय स्त्री, पुरुष का रोगी होना, गर्भाशय में बालक के विकास में अवरोध, गर्भ विकृति, स्त्रियों के गर्भाधारण के बाद मानसिक तनाव या शारीरिक दंड सहना आदि। जन्मजात कारणों में जुड़े अन्य कारण बालक के उत्पन्न होते समय घटित होते हैं, जैसे- जन्म के समय उचित देखभाल न होना, मस्तिष्क पर चोट लग जाना या अन्य असावधानी का प्रभाव।

बाह्य कारणों में 1) रोग और दुर्घटना 2) मनोसामाजिक, सांस्कृतिक प्रभाव, रोग और दुर्घटना गर्भावस्था से लेकर जीवनपर्यंत कभी भी घट सकती हैं। यह दुर्घटना की प्रकृति पर निर्भर है कि किस प्रकार कीबाधा (मंदता) अर्जित होती है। प्राणवायु की क्षति, शारीरिक ज्वर की तीव्रता भी मस्तिष्क में विकार पैदा कर देती है। कुछ दुर्घटनाएं किसी आयु में मस्तिष्क को असाधारण अवस्था में पहुंचा देती है। फलस्वरुप व्यक्ति में मानसिक मंदता आती है।

बालक पर गर्भ से ही वातावरण का प्रभाव पड़ने लगता है। जन्म के बाद वह सीधे समाज और संस्कृति के परिवेश में आ जाता है। परिवार का वातावरण तथा उनकी आर्थिक स्थिति भी बच्चों पर प्रभाव डालते हैं तथा कुपोषण का कुप्रभाव भी उन पर पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव भी मानसिक मंदता प्रदान करते हैं। भूतप्रेत कथाओं और भयावह रीति रिवाजों से भी मानसिक मंदता उत्पन्न हो सकती है। कुछ स्थितियों तथा अवस्थाओं में विषम व्यवहार, अनिर्णय की स्थिति उदासिनता आदि से जीवन में पूर्णरूपेण निराशा व्याप्त हो जाती है। ये प्रभाव भावात्मक रूप से कुसमायोजन का कारण होते हैं। रोज़मर्रा के सामान्य व्यवहार भी कई अवसरों पर इतना आवेग उगल देते है कि व्यक्ति का संपूर्ण मस्तिष्क ही नियंत्रण में नहीं रह पाता है, वह असंतुलित हो जाता है। अंततः अवस्था विक्षिप्तावस्था में परिणत हो जाती है। मादक द्रव्यों के सेवन से तो मानसिक मंदता को बहुत बल मिलता हैं। अज्ञान और कामुकता भी मस्तिष्क की बहुत क्षति कर बैठते हैं।

3.3.4 शारीरिक व अन्य प्रकार के विशेष योग्यजन

शारीरिक दृष्टि से बधित व्यक्ति उसे कहते है, जिसके शारीरिक अंग की कार्य करने की क्षमता किसी बीमारियों या दुर्घटनाओं के कारण क्षीण हो जाती है। साथ ही, जिनका उपचार होने पर भी शारीरिक अंग में कार्य करने की अक्षमता स्थायी रूप से विद्यमान होती है। ऐसे व्यक्तियों का सामंजस्य वास्तव में उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या बन जाती है। बाधाओं के स्थायी रुप के कारण जीवन के प्रति वे असंतुष्ट और निराश हो जाते हैं, क्योंकि वे विभिन्न प्रकार की मानसिक विषमताओं का शिकारहोते हैं। इसलिए वे निराशावादी मनोवृत्ति को अपनाते हैं। उनके उपचार और पुर्नवसन की प्रक्रिया ऐसी विस्तृत और व्यापक होनी चाहिए, जिसमें उनके उपयुक्त सामंजस्य प्राप्त हो सके।

शारीरिक असमर्थता दो प्रकार की होती है:

1) मस्तिष्क यंत्रों को प्रभावित करने वाली
2) मांसपेशियों व हड्डियों को प्रभावित करने वाली

शारीरिक व अन्य प्रकार की विशेष योग्यता के कारण: शारीरिक बाधाओं के कारणों को तीन श्रेणिओं में देखा जाता है।

1) अनुवांशिक बाधाएं जैसे जन्मजात बालक, जो माता-पिता से हस्तांतरित विकृति के साथ पैदा होता है।

2) ऐसी चोट एवं दुर्घटनाएं जिनके कारण हड्डी टूट जाती है जोड़ हट जाते हैं और कभी-कभी शरीर के किसी अंग को काटना पड़ता है।
3) बीमारियां के कारण शारीरिक अंग का क्षीण होना जैसे पोलियों, लकवा, क्षयरोग, कुष्ठरोग, वातरोग आदि।

इन बीमारियों और बाधाओं से पीड़ित व्यक्तियों की सहायता का मुख्य उद्देश्य उनकों पुनर्वास प्रदान करना है। पुनर्वास का तात्पर्य वास्तव में उस उपचार पद्धति से है, जो बाधित व्यक्तियों को उनकी पूर्ण-शरीरिक, सामाजिक, व्यवसायिक और आर्थिक क्षमता को पुनर्वसित कर सके। आधुनिक चिकित्सा और उपचार की विधियां इस उद्देश्य की प्रप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

3.4 विशेष योग्यजनों की सहायता के उद्देश्य

विशेष योग्यजनों की सहायता का प्रमुख लक्ष्य इनके पुनर्वास के लिए आवश्यक प्रयास करना है, क्योंकि इस प्रकार के व्यक्तियों को जीवन की मुख्यधारा में तभी जोड़ा जा सकता हैं, जब उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जाए। विशिष्ट रुप से विशेष योग्यजनों के विकास के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- विशेष योग्यजनों के लिए शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- विशेष योग्यजनों के सेवायोजन की व्यवस्था करना।
- विशेष योग्यजनों को उनकी विशेष योग्यताओं से संबंधित सहायक संयंत्रों को खरीदने के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध करना।
- विशेष योग्यजनों को चिकित्सकीय एवं स्वास्थ्य संबंधी सुविधाए उपलब्ध कराना।
- विशेष योग्यजनों को आवागमन की सुविधाएं उपलब्ध कराना।
- विशेष योग्यजनोंको कानूनी संरक्षण उपलब्ध कराना।

3.5 समस्या समाधान के उपाय

विशेष योग्यजनों के सामाजिक, आर्थिक एवं मनोसामाजिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न प्रकार के विशेष योग्यजनों द्वारा किए जा सकने वाले कुछ उपयुक्त व्यवसायों का विवरण निम्नलिखित है:

नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए उपयुक्त व्यवसाय:

सामान्यत: नेत्रहीन व्यक्ति वे ही सभी कार्य कर सकते है, जिन्हें करने के लिए दृष्टि की आवश्यकता न हो। तथापि उन्हें कौशल्य विकास प्रशिक्षण देकर निम्नलिखित व्यवसायों में अधिक सरलातापूर्वक सेवायोजित किया जा सकता है:

a) विभिन्न स्तरों पर शिक्षा देने का कार्य
b) कुर्सी, टोकरी बनाने का कार्य
c) बक्से पर लेबल लगाने का कार्य

d) टंकण एवं कार्यालय से संबंधित कुछ कार्य
e) गाने-बाजाने से संबंधित कार्य
f) टेलीफोन आपरेटर का कार्य
g) कागज के डिब्बे बनाने का कार्य
h) लिफ्ट परिचालन का कार्य
i) लिफाफे बनाने का कार्य
j) मोमबत्ती बनाने का कार्य इत्यादि।

मुक बधिर व्यक्तियों के लिए उपयुक्त व्यवसाय:

इस विशेष योग्यता श्रेणी के व्यक्तियों को कौशल्य विकास प्रशिक्षण देकर निम्नलिखित व्यवसायों में अधिक सरलतापूर्वक सेवायोजित किया जा सकता है

a) सिलाई, बुनाई, कढाई, रफूगीरी इत्यादि का कार्य
b) टर्नर, फिटर,वेल्डर, लोहागीरी, बढ़ईगीरी इत्यादि का कार्य
c) फोटोग्राफी का कार्य
d) कपड़ा छपाई एवं रंगसाजी का कार्य
e) टंकण एवं मानचित्र का कार्य
f) शीट मेटल का कार्य
g) सफाई एवं मिस्त्री का कार्य
h) डाक बांटने का कार्य इत्यादि।

मानसिक रूप से मंदता व्यक्तियों के लिए उपयुक्त व्यवसाय इस प्रकार है

a) डिब्बे बनाने का कार्य
b) मोमबत्ती बनाने का कार्य
c) बांस की तीलियां बनाने का कार्य
d) डलिया बनाने का कार्य
e) रस्सी बनाने का कार्य
f) चटाई बनाने का कार्य
g) खजुर या बांस के पंखे बनाने का कार्य इत्यादि।

शारीरिक व अन्य प्रकार के बधित व्यक्तियों के लिए उपयुक्त व्यवसाय:

यद्यपि सामान्य तौर पर इस श्रेणी में आने वाले बाधित व्यक्ति केवल उन कार्यों को छोडकर, जो विशिष्ट शारीरिक अक्षमता के कारण नहीं किए जा सकते, अन्य सभी कार्य कर सकते हैं फिर भी इस वर्ग के लिए सामान्य: उपयुक्त कार्य इस प्रकार है:

a) सभी स्तरों पर अध्यापन का कार्य

ज्ञान शांति मैत्री

b) सैन्य एवं पुलिस सेवाओं को छोडकर सभी सेवाओं में अधिकारी का कार्य
c) संपादक, प्रूफरीडर,कम्पोजीटर, प्रेस मैन इत्यादि का कार्य
d) सभी प्रकार के मानचित्र तैयार करने का कार्य
e) सभी वर्गों में लिपिक का कार्य
f) स्वागतकर्ता एवं विक्रेता का कार्य
g) सभी वर्ग के इजींनियरिंग सबंधी कार्य
h) लाइब्रेरियन का कार्य इत्यादि।

3.6 विशेष योग्यजनों को संवैधानिक एवं विधिक संरक्षण

भारत सरकार नेविशेष योग्यजनों के लिए निम्नलिखित कानूनों को लागू किया है जो इस प्रकार हैं:

- निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995, धारा 2(न), (जिसे पीडब्ल्यूडी अधिनियम, 1995 के रूप में भी जाना जाता है) 'विकलांग व्यक्ति कोष ऐसे व्यक्ति को' रूप में परिभाषित करता है, जो किसी चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा यथा प्रमाणित किसी विकलांगता से न्यूनतम40 प्रतिशत पीड़ित है। यह विकलांगता (क) दृष्टिबाधिता (ख) कम दृष्टि (ग) कुष्ठ रोग उपचारित (घ) श्रवण बाधिता (ङ) चलन विकलांगता (च) मानसिक रोग (छ) मानसिक मंदता (ज) स्वलीनता (ऑटिज्म) (झ) प्रमस्तिष्क अंगघात अथवा (ञ), (छ), (ज) और (झ) में से दो या अधिक का संयोजन, हो सकता है। ऐसे लोगों को शिक्षा, रोज़गार, अवरोधमुक्त वातावरण का निर्माण, सामाजिक सुरक्षा इत्यादि प्रदान करता है।
- ऑटिज्म, सेरीब्रल पाल्सी, मानसिक मंदबुद्धि व बहुविकलांगता के लिए राष्ट्रीय कल्याण ट्रस्ट अधिनियम 1999 में चारों वर्गों के कानूनी सुरक्षा तथा उनके स्वतंत्र जीवन हेतु सहसंभव वातावरण के निर्माण का प्रावधान है।
- भारतीय पुनर्वास परिषद् अधिनियम1992, पुनर्वास सेवाओं के लिएमानव-बल विकास का प्रयास करता है।
- आयकर अधिनियम, 1961 के अनुच्छेद 80 यू एवं 80 डी के अंतर्गत विकलांगों को छूट दी गई है।
- मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987 के अंतर्गत भी विशेष योग्यजनों के संरक्षण हेतु कुछ प्रावधान किए गए है। इस के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है
    1) स्वैच्छिक रूप से इलाज करवाने हेतु इच्छित ज्ञान न रखने वाले एवं इलाज के दौरान निरुद्ध किए गए मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों को मनोचिकित्सालयों एवं नर्सिंग गृहों में भर्ती को नियमित करना एवं इनके अधिकारों को संरक्षित करना।
    2) मानसिक रूप से अस्वस्थ्य व्यक्तियों से समाज का संरक्षण करना।

ज्ञान शांति मैत्री

3) मनोचिकित्सालयों एवं नर्सिंग गृहों में बिना किसी वांछिनीय कारण के निरुद्ध नागरिकों को संरक्षण प्रदान करना।
4) मनोचिकित्सालयों एवं मनश्चिकित्सकीय नर्सिंग गृहों में भर्ती हुए मानसिक रोगियों के अनुरक्षण शुल्कों के उत्तरदायित्व को नियमितकरना।
5) अपने कार्यों के कारण में असमर्थ मानसिक रोगियों के लिए संरक्षकत्व की सुविधा उपलब्ध कराना।
6) मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के लिए केंद्रीय प्राधिकरण एवं राज्य प्राधिकारियों की स्थापना कराना।
7) मानसिक रोगियों के लिए स्थापित होने वाले मनश्चिकित्सकीय अस्पतालों एवं मनश्चिकित्सकीय नर्सिंग गृहों को लाइसेन्स देने एवं इन पर नियंत्रण करने की शक्तियों को नियंत्रित कराना।
8) कुछ विशिष्ट प्रकार के मानसिक रोगियों को राज्य के खर्च पर कानूनी सहायता उपलब्ध कराना।

यह कानून सारे भारतवर्ष पर लागू है इस कानून के अंतर्गत मानसिक रोगियों के संरक्षण अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा मानसिक रोगियों के इलाज के लिए स्थापित मनश्चिकित्सकीय अस्पताल एवं मनश्चिकित्सकीय नर्सिंग गृह एवं मानसिक रोगियों के स्वास्थ्य लाभ हेतु स्थापित गृह आते हैं।

3.7 विशेष योग्यजनों के पुनर्वास कार्यक्रम

सरकारी क्षेत्र में पुनर्वास सेवाओं का इतिहास अर्वाचीन है। ऐतिहासिक रूप में विशेष योग्यजनों को सेवा प्रदान करने का कार्य पहले स्वयंसेवी क्षेत्र तक सीमित था। समाज कल्याण सेवा, विशेषतया चिकित्सा एवं पुनर्वास के क्षेत्रों में सहायता अधिकतर मिशिनरी कार्यकर्ता द्वारा ही दी जातीथी।, जो सामाजिक एवं आर्थिक विकास के सामान्य प्रोग्रामों का एक अंग था। परिणाम स्वरूप अशासकीय क्षेत्रों में अनेक समितियों की स्थापना हुई, जो रोगी, अशक्त, निराश्रित एवं विशेष योग्यता वाले व्यक्तियों की देखभाल करती थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार विशेष योग्यता को रोकने, पुनर्वास सेवाएँ प्रदान करने, क्षेत्रीय परीक्षणों द्वारा सेवाओं को बेहतर बनाने, सामाजिक एवं आर्थिक उपायों तथा विकास के लाभों को जनसंख्या तक पहुँचाने के लिए कार्यकारी आदेशों एवं अधिनियमों पर ध्यान केंद्रित कर रही है।

विशेष योग्यजन के पुनर्वास हेतु चलाए जा रहे प्रमुख कार्यक्रम निम्नलिखित है

निर्योग्यताओं की रोकथाम- भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा निर्योग्यताओं की रोकथाम के लिए पोलियो, डी. पी. टी., टिटनेस के विरुद्ध टीकाकरण जैसे कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। साथ ही नेत्रहीनता की रोकथाम एवं नियंत्रण, कुपोषण के निवारण हेतु कार्यक्रम, स्वास्थ्य एवं पोषण के संबंध में माताओं को जागृत एवं शिक्षित करने के राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

स्वयंसेवी संगठनों की सहायता एवं अनुदान उपलब्ध कराना: सामाजिक न्याय एवं सशक्तिकरण मंत्रालय की ओर से आवर्ती एवं अनावर्ती खर्च के लिए स्वयंसेवी संगठन के बजट के90 प्रतिशत अंश तक अनुदान राशि प्रदान की जाती है। सहायता प्राप्त स्वयंसेवी संगठनों से आशा की जाती है कि10 प्रतिशत धनराशि स्वयं अपने संसाधनों से जुटाकर विशेष योग्यता को रोकने विशेष शिक्षा देणे एवं कुशलता सिखाने, प्रशिक्षित जनशक्ति तैयार करने, शारीरिक एवं व्यवसायिक चिकित्सा प्रदान कराने में सहायक सिद्ध हों।

विशेष योग्यजनों के लिए छात्रवृत्तियां: केंद्रीय सरकार की शारीरिक रूप से विशेष योग्यता वाले विद्यार्थी एवं शोधार्थियों को छात्रवृत्तियां देने की योजनाहै। इस योजना का उद्देश्य विशेष योग्यजनों को आर्थिक रूप से सहायता करना है , जिससे वे अध्ययन कर सकें और अपना जीवन स्तर ऊँचा उठा सकें।

राष्ट्रीय विशेष योग्यता संस्थानों की स्थापना: सात राष्ट्रीय संस्थान हैं, जो मानव बल के विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं, ये निम्नलिखित हैं:

1. शारीरिक विकलांग संस्थान, नई दिल्ली
2. राष्ट्रीय दृष्टि विकलांग संस्थान, (1950) देहरादून।
3. राष्ट्रीय ऑर्थोपेडिक विकलांग संस्थान, (1978) कोलकाता।
4. राष्ट्रीय मानसिक विकलांग संस्थान, (1964) सिकंदराबाद।
5. राष्ट्रीय श्रवण विकलांग संस्थान, (1983) मुंबई।
6. राष्ट्रीय पुनर्वास तथा अनुसंधान संस्थान, (1975) कटक।
7. राष्ट्रीय बहु-विकलांग सशक्तीकरण संस्थान, (2005) चेन्नई।

इसके साथ ही पांच संयुक्त पुनर्वास केंद्र, चार पुनर्वास केंद्र तथा 120 विकलांग पुनर्वास केंद्र हैं जो लोगों को विभिन्न प्रकार की पुनर्वास सेवाएं प्रदान करते हैं।

इन राष्ट्रीय संस्थानों के माध्यम से प्रशिक्षण हेतु अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रोग्राम्, डिप्लोमा पाठ्यक्रम जैसे आवश्यक प्रशिक्षण एवं ज्ञानवर्धक कोर्स प्रदानकरते हैं। विशेष योग्यजनों के पुनर्वास से संबंधित सभी पक्षोंपर अनुसंधान प्रायोजित एवं आयोजितकरते हैं। इस क्रम में अन्य कार्य: कम लागत वाले सहायकों एवं यंत्रों को डिजाइन करना, सुधारात्मक उपचार विधियाँ, विशेष योग्यजनों के समस्याओं का पता लगाना, ब्रेल का विकास, जनता के जागरूकता प्रसार हेतु सामग्री तैयार करना, पुरुषों एवं महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण, संकट हस्तक्षेप सेवाएँ, परामर्शीय सेवाएँ आदि।

विशेष योग्यजनों के पुनर्वास संबंधी विभिन्न पंचवार्षिक योजनाओं में किए गए प्रयास निम्नलिखित है:

- नेत्रहीन और बधिर बच्चों के लिए आदर्श विद्यालयों की स्थापना की गई।

- विशेष योग्यजनों के लिए उनके घरों पर शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराने की योजना का संचालन किया गया।
- वयस्क नेत्रहीनों के लिए स्थापित प्रशिक्षण विद्यालयों में महिलाओं के लिए अनुभाग स्थापित किया गया।
- बच्चों में नेत्रहीनता को रोकने के उद्देश्य से विटामिन-ए के वितरण को सुनिश्चित किया गया।
- विशेष योग्यजनों के लिए छात्रवृत्तियां उपलब्ध की गई।
- उनके घरों व पड़ोस में कार्य उपलब्ध कराया गया।
- लाइब्रेरी, प्रशिक्षण केंद्र, आदर्श विद्यालय, ब्रेल प्रेस आदि की सुविधा।
- रोज़गार एवं स्वरोज़गार उपलब्ध करने में सहायता प्रदान करना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले विशेष योग्यजनों तक सेवाएँ पहुंचाने की व्यवस्था।
- इलाज के लिए टिकाकरण कार्यक्रम तथा बीमा योजना एवं दुर्घटना बचाव के लिए कानून बनाने की व्यवस्था।
- इनके लिए मनोरंजन की व्यवस्था की गई।

केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम:

राष्ट्रीय विकलांग-जन वित्त एवं विकास निगम

राष्ट्रीय विकलांग-जन वित्त एवं विकास निगम (NHFDC) की स्थापना 24 जनवरी, 1997 को विशेष योग्यजनों के लाभ हेतु आर्थिक विकास संबंधी गतिविधियों और स्वरोज़गार के संवर्धन की दृष्टि से की गई थी। यह विशेष योग्यजनों को ऋण प्रदान करता है, ताकि वे व्यावसायिक/तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर व्यावसायिक पुनर्वास/स्वरोज़गार हेतु सक्षम हो सकें। यह विशेष योग्यता वाले स्वरोज़गार प्राप्त व्यक्तियों की सहायता भी करता है, ताकि वे अपने उत्पादों और वस्तुओं का विपणन कर सकें।

भारतीय कृत्रिम अंग विनिर्माण निगम

एलिमको विभाग के अंतर्गत एक गैर लाभ प्राप्त करने वाली 5.25 करोड़ की मिनी रत्न कंपनी है। यह बड़े पैमाने पर सबसे किफायती विभिन्न प्रकार के सहायता उपकरणों का निर्माण करती है। सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को कवर करते हुए पूरे देश में आर्थोपेडिक बाधिता, श्रवण बाधिता, दृष्टि बाधिता और बौद्धिक विकास की मांग को पूरा करने के लिए, विशेष योग्यजनों को सशक्त करने और उनका आत्म सम्मान वापस दिलाने के लिए, इन सहायता उपकरणों का वितरण करता रहा है।

सांविधिक निकाय:

भारतीय पुनर्वास परिषद

भारतीय पुनर्वास परिषद को वर्ष 1992 में संसद के एक अधिनियम के तहत स्थापित किया गया था। पुनर्वास परिषद व्यावसायिकों और कार्मिकों के प्रशिक्षण का नियमन और इसको मॉनीटर करती है तथा पुनर्वास एवं विशेष शिक्षा में अनुसंधान को प्रोत्साहित करती है। साथ ही पुनर्वास और अनुरक्षण के लिए प्रशिक्षण और व्यावसायिक उपकरण उपलब्ध कराती है।

विकलांग व्यक्तियों के मुख्य आयुक्त(CCPD)

विशेष योग्यजनों के लिए मुख्य आयुक्त को निःशक्त व्यक्ति(समान अवसर, अधिकारसंरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995के अंतर्गत अपना कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए विशेष योग्यजनों के कल्याण तथा अधिकारों के संरक्षण हेतु बनाए गए कानूनों, नियमावली आदि को लागू न करने और विशेष योग्यजनों के अधिकारों को मना करने से संबंधित शिकायतों को देखने के लिए एक सिविल कोर्ट को शक्तियां दी गई हैं।

राष्ट्रीय न्यास

ऑटिज्म, प्रमस्तिष्क अंगघात, मानसिक मंदता और बहुविकलांगताओं इत्यादि से ग्रस्त व्यक्तियों के कल्याणार्थ राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999 के अंतर्गत वर्ष 2000 में राष्ट्रीय न्यास की स्थापना की गई थी। यह स्वयंसेवी संगठनों, विशेष योग्यजनों की संस्थाओं और उनके अभिभावकों की संस्थाओं के लिए एक तंत्र के माध्यम से कार्य करता है।इसके अंतर्गत देश भर में3 सदस्य स्थानीय स्तर समितियां स्थापित करना, जहां कहीं आवश्यक हो विशेष योग्यजनों हेतु कानूनी संरक्षक तैनात करने का प्रावधान है। राष्ट्रीय न्यास द्वारा प्रारंभिक हस्तक्षेप से लेकर गंभीर विशेष योग्यता से ग्रस्त व्यक्तियों हेतु आवासीय केंद्रों के लिए योजनाओं और कार्यक्रमों के समूह का संचालन किया जाता है।

3.8 सारांश

इस इकाई में हमने विशेष योग्यजन के विकास के मूलभूत पक्षों पर चर्चा की है। विशेष योग्यजनों को समाज कार्य अपनी विभिन्न विधियों के अंतर्गत सहायता प्रदान करने की लगातार कोशिश करता रहा है। शारीरिक रूप से अक्षम लोगों के लिए चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता उनके पुनर्वास के लिए कार्यरत है तथा मानसिक रूप से अक्षम लोगों की सहायता समाजकार्य मनोचिकित्सकीय समाज के अंतर्गत करता है। हालांकि भारत में इसमें विभिन्नता दिखाई देती है। विशेष योग्यता रखने वालों के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलना आज के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य होगा। इसके उद्देश्य पूर्ति की ज़िम्मेदारी समाज कार्य अपने कंधों पर उठाने की क्षमता रखता है।

3.9 बोध प्रश्न

1. विशेष योग्यजन की अवधारणा की विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. विशेष योग्यजनों के विभिन्न वर्गीकरणों का विवरण दीजिए।
3. विशेष योग्यजनों की सहायता के उद्देश्य एवं उपायों को रेखांकित कीजिए।

ज्ञान शांति मैत्री

4. मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987 में विशेष योग्यजनों के संरक्षणसंबंधी प्रमुख उद्देश्योंकी विवेचना करें।
5. विशेष योग्यजनों के पुनर्वास के लिए पंचवार्षिक योजनाओंके कार्यक्रमों की समीक्षा करें।

3.10 उपयोगी एवं संदर्भ ग्रंथ

कुमार, गिरीश. (सं.) (2013). *समाज कार्य के क्षेत्र*. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

पाण्डेय, बालेश्वर एवं शुक्ला, भारती. (2013). *समाज कार्य एक समग्र दृष्टि*. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान.

मिश्र, वी. के. (2008).*विकलांगों के अधिकार*. नई दिल्ली: कल्याणी शिक्षा परिषद.

कच्छल डी. (प्र.सं.) विकलांगता विशेष अंक योजना, मई 2016.

https://hi.wikipedia.org/s/yav मानसिक विकलांगता.

http://hi.vikaspedia.in/social-welfare विकलांगों के लिए राष्ट्रीय नीति.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 4 तृतीय पंथी जन

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 तृतीय पंथी जन की अवधारणा
4.3 तृतीय पंथी जन का इतिहास
4.4 समाज कार्य एवं तृतीय पंथी जन
4.5 गैर-सरकारी संगठन और एल.जी.बी.टी. अधिकार
    4.5.1 अंतरराष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन
    4.5.2 राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन
4.6 अधिकारों का आंदोलन
4.7 सारांश
4.8 बोध प्रश्न
4.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- तृतीय पंथी जन की अवधारणा को समझा सकेंगे।
- तृतीय पंथी जन के इतिहास से अवगत हो सकेंगे।
- तृतीय पंथी जन के अधिकारों से संबंधित कार्यरत गैरसरकारी संगठनों के बारे में जान सकेंगे।
- तृतीय पंथी जन के अधिकारों से संबंधित आंदोलन को रेखांकित कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

हमने पूर्व के इकाई में देखा कि विशेष योग्य जन किन्हें कहते हैं और उनके विकास से संबंधित चर्चा की। इस इकाई में हम यह जानेंगे कि तृतीय पंथी जन किन्हें माना जाता है? इनकी पहचान क्या है? उनके अधिकारों से संबंधित आंदोलन पर चर्चा करेंगे। वर्तमान में उनके विकास लिए कार्यरत गैरसरकारी संगठनों के संबंध में तथा उनके कार्यों की विस्तृत में चर्चा करेंगे।

4.2 तृतीय पंथी जन की अवधारणा

तृतीय पंथ यह शब्द अंग्रेजी *Third gender* का हिंदी रूपांतरण है। यह व्यापक अवधारणा है। इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता है। परिभाषित करना उसको सीमित करने जैसा प्रतीत होता है। *'थर्ड जेंडर'* या *'थर्ड सेक्स'* का विभाजन स्त्री-पुरुष के रूप में नहीं किया जाता है, बल्कि यह दोनों शब्द समाज

में ऐसे लोगों के लिए प्रयोग किए जाते हैं, जिन्हें समाज में स्त्री या पुरुष के रूप में शामिल नहीं किया जाता है। '*थर्ड*' शब्द को अन्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। भारत के संबंध में जब *थर्ड जेंडर* या अन्य लोगों की बात की जाती है तो एक अलग ही संस्थानीकृत समुदाय दिखाई देता है जिसे '*हिजड़ा*' कहा जाता है। स्त्री-पुरुष से परे इस समाज, में एक और समाज जिसे हम सभ्य समाज के लोग *किन्नर, ख्वाजा, सारा* जैसे विभिन्न नामों से संबोधित करते हैं। ये लोग अपने परंपरागत आचरण के कारण भीड़ में सबसे अलग-थलग नज़र आते हैं, पहनावा, बातचीत का तरीका, ताली बजाना, *मेकअप* आदि इन्हें बाकी समाज से भिन्न पहचान देता है।

तृतीय पंथी जन की यौनिकता और जेंडर आधारित पहचान- समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोग या सेम सेक्स की इच्छा रखने वाले लोग- इनमें वे भी शामिल हैं, जो अपने और दूसरे, दोनों लिंग के लोगों के प्रति आकर्षित हैं। यह ज़रूरी नहीं कि समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोग अपनी पहचानों (जैसे- औरत, मर्द, दलित, हिंदू, मुसलमान इत्यादि) में यौनिकता से जुड़ी पहचान भी शामिल करें।, जो लोग अपनी पहचान को यौनिकता से जोड़ते हैं जैसे *गे, लेस्बियन* इत्यादि, उनमें ज़्यादातर ऐसे लोग हैं, जिन्हें इस तरह की पहचान के बारे में जानकारी है।

समलैंगिक (Homosexual)- वे लोग, जो समान लिंग के प्रति आकर्षित हों।

द्विलैंगिक (Bisexual)- वे, जो औरत और मर्द दोनों के प्रति आकर्षित हों।

विषमलैंगिक (Heterosexual)- वे, जो केवल दूसरे लिंग की ओर आकर्षित हों।

लेस्बियन (Lesbian)- वे औरतें, जो औरतों के प्रति आकर्षित हों।

गे (Gay)- वे पुरुष, जो अन्य पुरुषों के प्रति आकर्षित हों।

ट्रांसजेंडर (Transgender)- औरत और मर्द की परिभाषा में नहीं बंधे हुए। उदाहरण के लिए कोई शारीरिक रूप से मर्द हो सकते हैं, लेकिन वो अपने जेंडर को 'मर्द' नहीं 'औरत' बताते हैं। या फिर वे अपने को इन दोनों में अलग-अलग खाकों में बंधकर नहीं देखते।

हिजड़ा- इस समुदाय में वे शामिल हैं, जो शारीरिक रूप से मर्द पैदा हुए थे, लेकिन, जिन्होंने या तो अपना लिंग कटवाया है या लिंग परिवर्तन की प्रक्रिया किसी भी स्तर तक कारवाई है या फिर अपने शरीर को बदले बिना 'हिजड़ा' पहचान अपनाई है। हिजड़ा समुदाय में वे भी शामिल हैं जिनके जन्म के समय लिंग और योनि, दोनों यौन अंग होते हैं। (इस श्रेणी में आने वाले लोगों को अंग्रेज़ी में इंटर-सेक्स्ड या हरमाफ्रोडाइट कहते हैं।)

कोथी- शारीरिक तौर पर मर्द, जो मर्दों के साथ यौन क्रियाएँ करते हैं और अपने को महिला महसूस करते हैं।

ट्रांससेक्शुअल व्यक्ति-, जो अपने जेंडर को बदलने के लिए चिकित्सीय उपाय अपनाते हैं और अपने शरीर में बदलाव लाते हैं, उन्हें ट्रांससेक्शुअल व्यक्ति कहा जाता है। शारीरिक जेंडर को बदलने के लिए ऑपरेशन, हॉर्मोनयुक्त दवाइयों एवं दूसरी प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है। वे स्वयं की पहचान

समलैंगिक, द्विलैंगिक या विषमलैंगिक व्यक्ति के रूप में कर भी सकते हैं और नहीं भी। हो सकता है वे 'पुरुष से महिला ट्रांससेक्शुअल या 'महिला से पुरुष ट्रांससेक्शुअल कहलाना पसंद करें या हो सकता है वे इनमें से किसी भी पहचान का चयन न करें।

इंटरसेक्स व्यक्ति- ज़्यादातर बच्चे जब पैदा होते हैं तो उनके बाहरी यौनांगों को देखकर बताया जा सकता है कि वे लड़के हैं या लड़कियाँ। पर कुछ बच्चों के यौनांगों को देखकर यह बता पाना मुश्किल होता है कि वे लड़के हैं या लड़कियाँ। हो सकता है कि उनके कुछ बाहरी यौनांग लड़के और कुछ लड़की की तरह हों या हो सकता है उनके बाहरी यौनांग लड़के की तरह हों पर भीतरी यौनांग लड़की की तरह या इसके विपरीत। ऐसे व्यक्ति, जिनमें जन्म से अस्पष्ट यौनांग होते हैं उन्हें इंटरसेक्स कहा जाता है।

ट्रांसवेस्टाइट व्यक्ति-, जो यौन संतुष्टी के लिए ऐसे कपड़े पहनते हैं जो विशिष्ट रूप से दूसरे जेंडर के लोगों द्वारा पहने जाते हैं, उन्हें ट्रांसवेस्टाइट कहते हैं। ट्रांसवेस्टाइट व्यक्ति ज़्यादातर पुरुष होते हैंजो महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले कपड़े पहनना पसंद करते हैं। ट्रांसवेस्टाइट लोगों कोक्रॉस ड्रेसर' भी कहते हैं।

एम.एस.एम.(Man who have sex with man)-वे मर्द, जो दूसरे मर्दों के साथ यौनिक क्रियाएँ करते हैं। इनमें उन मर्दों को शामिल करने का प्रयास है, जो अपने आपको 'गे' या 'बाइसेक्स्युअल' जैसी पहचानों से नहीं जोड़ते। एम.एस.एम. अपने आपको मर्द की तरह महसूसकरते हैं।

4.3 तृतीय पंथी जन का इतिहास

उक्त तृतीय पंथी जन की अवधारणा में यौनिकता और जेंडर आधारित पहचान जानने के बाद हम अभी उनके इतिहास को सरलता से पहचान कर सकते है। भारतीय समाज में तृतीय पंथी जन के इतिहास को देखते हैं, तो हिजड़ा या किन्नर तथा विभिन्न संस्कृति के अनुसार विभिन्न नामों का उल्लेख मिलता है। हिंदू धर्म ग्रंथ महाभारत में शिखंडीबृहन्नड़ा, क्लिबा, किन्नर आदि नामों मिलते हैं। महाभारत में अर्जुन जब अपने पिता इंद्र से मिलने स्वर्ग गया था, तो वहाँ उसने देवी उर्वशी को देखकर कामुक हावभाव किए तो उसने अर्जुन को शाप दिया कि 'क्लिबा' बनोगे। क्लिब संस्कृत शब्द है, जिसका प्रयोग व्यापक अर्थों में किया जाता रहा है, जैसे कि- "व्यक्ति, जो बांझ हो, नपुंसक हो, बधिया हो, विपरीत लिंग के वस्त्र पहनने वाले हो, ऐसा व्यक्ति हो, जिसने किसी अन्य व्यक्ति के साथ मुख-मैथुन करवाया हो, ऐसा व्यक्ति, जिसके जननांग विकृत अथवा अपूर्ण हो, ऐसा व्यक्ति, जिसने केवल लड़कियाँ ही पैदा की हो अथवा अंतिम श्रेणी में, जो उभयलिंगी हो (ल. त्रिपाठी,2013)। तृतीय पंथी जन के अन्य नामों से जुड़ी कहानियों का भी महाभारत में उल्लेख मिलता है। रामायण में हिजड़े से जुड़ी कहानी का उल्लेख मिलता हैकि "जब राम वनवास गए थे, तब आयोध्या के द्वार पर हिजड़े उनका इंतजार कर रहे थे। जब राम वनवास से लौटे तो देखा द्वार पर नगर के किन्नर इंतजार कर रहे है, जब उनसे पूछा गया तो उन्होंने जवाब दिया- आपने सभी नर-नारियों को लौट जाने के लिए कहा था और हम न नर(पुरुष) हैं और न ही नारी(स्त्री) तो हम यहीं पर आपके आने का इंतजार कर रहे थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न राम ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि

आज से तुम्हारा आशीर्वाद सब लोगों के लिए शुभ होगा। इसी धारणा से लोगों द्वारा आज भी किन्नरों का आशीर्वाद लिया जाता है तथा शुभ कार्यों में आना अच्छा माना जाता है(ल. त्रिपाठी,2013)।

बुद्धिस्त विनय के अनुसार दूसरी शताब्दी के आसपास बुद्ध ने अपने उपदेशों के द्वारा सेक्स/जेंडर को चार भागों में बांटा है- पुरुष, स्त्री, स्त्री-पुरुष दोनों की तरह प्रवृत्ति वाले और पंडक(जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों तरह की प्रवृत्ति होती है, परंतु पुरुष प्रवृत्ति की प्रधानता होती है)। विनय परंपरा के विकास के साथ पंडका अर्थात, जो चतुर्थ श्रेणी का जेंडर है, उसे उनकी शारीरिक और व्यावहारिक प्रवृत्तियों के आधार पर थर्ड जेंडर ही माना गया। प्रारंभिक तमिल व्याकरण तोलकप्पीयम (Tolkappiyam3rd century BC) ने भी तीन प्राकृतिक जेंडर की बात कही है। वैदिक खगोलशास्त्र(ज्योतिष), जो, ग्रहों को तीनों जेंडर का प्रतिनिधित्व करते हुए मानते है, जिसमें तीसरा जेंडर बुद्ध, शनि तथा केतु से जुड़े हुए हैं।

वात्स्यायन ने कामसूत्र में किन्नरों को 'तृतीय पंथी' के रूप में वर्णन करते हैं। किन्नरों की कामप्रवृत्ति को लेकर बृहद वर्णन किया गया है, साथ ही किन्नर शब्द को बड़े व्यापक रूप से परिभाषित किया है- 'किम अहं नरः इति किन्नर' ऐसा पुरुष, जिसको अपने पुरुष होने में संदेह उत्पन्न होता है किन्नर है। अपने को पुरुष न मानना ही किन्नरता के सीमा की शुरुवात है, इसका संबंध केवल प्रजनन अंगों से न होकर भावनात्मक और मानसिक स्तर पर ज़्यादा होता है। (मितवा संकल्प समिति, वेब पृष्ठ-3)

खिलजी वंश- खिलजी वंश के अलाउद्दीन खिलजी(1296-1316ई.) के काल में एक हिंदू हिजड़ा का वर्णन मिलता है, जिसे गुजरात सैन्य अभियान(1297ई.) के खंभात बंदरगाह के आक्रमण के दौरान एक हिंदू हिजड़ा दास के रूप में प्राप्त हुआ, जिसका नाम मालिक काफ़ुर रखा गया। इसे एक हजार स्वर्ण दीनारों में खरीदा गया था, इसलिए वह हजार दीनारी भी कहा जाता था। मालिक काफ़ुर ने अलाउद्दीन के दक्षिण अभियानों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मालिक काफ़ुर को ताज-उल-मुल्क काफुरी की उपाधि प्राप्त थी। खिलजी वंश में मालिक काफ़ुर का वर्णन एक वीर पराक्रमी योद्धा के रूप में किया जाता है। (डिसेन्ट कुमार, 2014)

मुगल काल- मुगल काल व उससे पहले भी हिजड़ों का उल्लेख राजा, नवाबों के हरम में, हरम के रक्षकों के रूप में होता रहा है। "मुगल काल में गरीब परिवार अपने बच्चों में से किसी एक को किन्नर बनाकर राजमहल भेज दिया करते थे। औरंगजेब के राज्य में लिंगच्छेद पर बंदी लगाई गई थी, लेकिन तब भी चोरी छुपे किया जाता था। लिंगच्छेद की प्रक्रिया हिजड़ों में निर्वाण प्राप्त करने या पूर्ण स्त्री बन जाने के रूप में देखा जाता है। उस समय मुस्लिम हिजड़ों तथा हिंदू हिजड़ों की आर्थिक स्थिति का भी पता चलता है "मुस्लिम हिजड़ों को सम्मान था और वे अमीर भी थे, लेकिन हिंदू हिजड़े उनसे गरीब थे(ल. त्रिपाठी,2013)।

आर्थिक स्थिति व व्यवसाय

वर्तमान में तृतीय पंथी जन समाज में हाशिये पर जिंदगी व्यतित कर रहे हैं जिनकी शैक्षिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति भी निम्न है। समाज में इनका अस्वीकार्यता इनकी प्रतिभा को उभरने नहीं देती इससे

इनके रोज़गार के समान्य अवसर भी छिन जाते हैं। इन्हें सरकारी या निजी कार्यों में रखना तो दूर की बात है, इन्हे समान्य छोटे-मोटे कामों पर भी नहीं रखा जाता है। इनकी अशिक्षा भी इनके रोज़गार के अवसरों पर विपरीत प्रभाव डालती है। कुछ लोग यह मानते हैं की इन लोगों के पास बहुत धन इकट्ठा होता है, इनके बीच काम करने वाले कार्यकर्ताओं का कहना है कि ये लोग बेहद गरीबी और अमानवीय परिस्थिति में जिंदगी बसर करते हैं जिस कारण यह बड़े पैमाने पर वेश्यावृत्ति का कामकरते हैं। संपत्ति की जरूरत जीवन की त्वरित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए होती है। ऐसे में इनके बीच कोई भी संपत्ति ज़्यादातर पूरे समूह की संपत्ति होती है। आज भी इनके आजीविका का साधन विभिन्न अवसरों पर नाच-गाना करके, शादी, जन्मोत्सव आदि में बधाई के द्वारा, लोगों से पैसे लेना, भिक्षावृत्ति तथा यौन कार्य के द्वारा यह समूह अपना उदर निर्वाह कर रहा है।

4.4 समाज कार्य एवं तृतीय पंथी जन

समाजकार्य का, जो वर्तमान स्वरूप हमारे सामने है, वह मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों का परिणाम है। इससे पहले भी समाज सेवा के रूप में व्यक्तियों द्वारा निर्धन, असहाय व्यक्तियों की सहायता की जाती रही है। ज़्यादातर विद्वान इस बात पर एक मत है कि समाज कार्य का व्यवसायिक स्वरूप प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उभरकर आया। यह वह समय था जब एक तरफ युद्ध के बाद की भयावह स्थिति थी, तो दूसरी तरफ औद्योगिकरण के परिणाम स्वरूप विभिन्न सामाजिक परिवर्तन भी हो रहे थे, जिसका सकारात्मक के साथ नकारात्मक प्रभाव भी समाज पर पड़ रहा था, जो सामाजिक समस्याओं के रूप में था। इन समस्याओं से संगठित रूप से निपटने के लिए सहानुभूति रखने वाले और प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता महसूस हुई।

समाज कार्य अपने स्वरूप में वैज्ञानिक ज्ञान और प्रशिक्षण पर आधारित है, जो समस्याग्रस्त व्यक्ति में समस्या समाधान की क्षमता विकसित करने में सहायता प्रदान करता है, ताकि भविष्य में आने वाली विभिन्न समस्याओं का निराकरण उस व्यक्ति द्वारा किया जा सके और बेहतर जीवन स्तर प्राप्त कर सके। इसकी यही विशेषता इसे 'समाज सेवा' तथा 'समाज सुधार' से अलग करती है।

पिछले दशकों में समाज कार्य के क्षेत्र में परिवर्तन आया है। इस दिशा में परिवर्तन का कारण कल्याणकारी राज्य की बढ़ती भूमिका को माना जा सकता है। समाज कार्य की दृष्टि से कल्याणकारी राज्य को सर्वोत्तम माना जाता है, क्योंकि इसका प्रमुख उद्देश्य ही कल्याण की भावना से प्रेरित होकर जनता के लिए कार्य करना है। चूँकि आधुनिक राज्यों को और भी बहुत से कार्य करने होते हैं ऐसे में वह इन कल्याण कार्यों के निष्पादन के लिए गैर-सरकारी संगठनों व स्वयं सेवी संगठनों की सहायतालेता है। इसके लिए राज्य इन संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। कुछ स्वयंसेवी एवं गैरसरकारी संगठन ऐसे भी है, जो बिना वित्तीय सहायता लिए अपने संसाधनों से इन कार्यों का निष्पादन करते हैं।

योजना आयोग, भारत सरकार द्वारा समाज कार्य के क्षेत्र को वर्गीकृत किया गया है, जो इस प्रकार हैं- परिवार कल्याण, बाल कल्याण, युवक कल्याण, महिला कल्याण, विकलांगों के लिए सेवाएँ,

सामुदायिक कल्याण सेवाएँ, चिकित्सकीय समाज कार्य, मनोसामाजिक तथा मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान हेतु सेवाएँअसमायोजित व्यक्तियों के लिए सेवाएँ और व्यक्तियों के समायोजन से संबंधित सेवाएँ इत्यादि।

तृतीय पंथी समुदाय समाज का सबसे वंचित वर्ग माना जाता है। उनके विकास के लिए तथा समाज में समायोजन के लिए समाज कार्य अपने प्रविधियों के माध्यम से सहायता कर के आत्मसम्मानपूर्ण, आत्मनिर्भर, जीवनयापन करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

4.5 गैर-सरकारी संगठन और एल.जी.बी.टी. अधिकार

वर्तमान समय में विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों द्वारा अंतरराष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर एलजी.बी.टी. अधिकार वा यौनिक अधिकारों पर काम किया जा रहा है। इस क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठनों का विकास पिछले दशकों की परिघटना माना जा सकता है। यह देखा जाता रहा है कि यौनिक अल्पसंख्यकों के साथ सरकार तथा लोगों द्वारा भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता रहा है। ऐसे मामले भी प्रकाश में आए हैं जो गंभीर मानवाधिकार उल्लंघन की स्थिति को दर्शाते हैं। मानव होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह अपने क्षमताओं का विकास करते हुए सम्मान तथा आत्मनिर्णय के अधिकारों के आधार पर अपना जीवनयापन कर सके। यहाँ कुछ अंतरराष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है, जिन्होंने पिछले कुछ वर्षों में यौनिक अधिकारों के मुद्दे पर काम करते हुए सफलता ही पाई है।

4.5.1 अंतरराष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन

1) गेट- ग्लोबल एक्शन फॉर ट्रांस* इक्वेलिटी(Gate-Global Action For Trans*Equality)

नई पीढ़ियों में एक अलग तरह का आंदोलन शुरू हुआ है जिसमें ट्रांस(Trans) का उदय महत्वपूर्ण है। समाज बाकी सारे मुद्दों के साथ इसे जोड़कर ट्रांसजेंडर का हाशिएकरण किया जा रहा है। इसलिए इससे बचने के लिए और जमीनी स्तर पर इस कार्य को पहुंचाने के लिए इस समूह का निर्माण हुआ है। डबल्यूएचओ एवं एपीए द्वारा international code of diseases एवं Diagnostic StatisticalManual (DSM)दिए जाने के पश्चात कार्यकर्ताओं के सामने कार्य के लिए एक चुनौती आ गई, जिसमें ट्रांस की पहचान का 'पैथालाईजेशन' महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया। खासकर लीगल, मेडिकल एवं सामाजिक परिस्थितियों में दुनियाभर के *ट्रांस* लोगों के लिए यह मुद्दा बन गया।

ज़्यादातर ट्रांस कार्यकर्ता बाहर खदेड़ दिए जाने की भावना से ग्रसित थे, इसलिए इस कार्य को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुंचाना ज़रूरी बन गया और इसके लिए एक स्वतंत्र संरचना की आवश्यकता थी जहां सिर्फ ट्रांस लोगों की समस्याओं पर प्रकाश डाला जाए। इस उद्देश्य से इस संगठन का निर्माण 2009 में होता है।

गेट(GATE) क्या है?

गेट (GATE) के ट्रांस लोगों के लिए बनाया गया सहकार्यात्मक नेटवर्क है। यह संगठन उन सभी मुद्दों जो ट्रांस से जुड़े हो, या उनसे जुड़े आंदोलन हो उन सभी के लिए स्थापित राष्ट्रीय, प्रादेशिक नेटवर्क प्रदान करता है। इसका मूल उद्देश्य ट्रांस को एकत्रित करना है। सहायक समूहों के साथ रचनात्मक विचार विमर्श करना भी इनका महत्वपूर्ण कार्य है।

इस संगठन ने ट्रांस संबंधी मुद्दों को लेकर डबल्यूएचओ,यूएन जैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत संगठनों से बातचीत शुरू की है, उसका कहना है कि ट्रांस पहचान को एक बीमारी या व्यक्तित्व विकृति के रूप में निर्धारित करना गलत है। इस तरह के मेडिकल क्लासिफिकेशन में सुधार करने की मांग प्रमुख है।

मिशन

- सभी ट्रांस लोगों के आत्मनिर्धारण के उद्देश्य से अन्य लोगों में उनके प्रति समान व्यवहार एवं उनके दृष्टिकोण परिवर्तन हेतु ट्रांस का सशक्तिकरण करना।
- ट्रांस लोगों के साथ होने वाली हिंसा, भेदभाव एवं असमान उपचार अनुभवों के विरुद्ध अभियान खड़ा करना।

लक्ष्य

- ट्रांस के मुद्दों पर क्षेत्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लांबी तैयार करना
- दुनिया के सभी जगहों पर ट्रांस लोगों से जुड़े आंदोलनों एवं संरचनाओं को सहायता प्रदान करना
- ट्रांस कार्यकर्ताओं के लिए जटिल ज्ञान की समझ हेतु संसाधन मुहैया करना।

संरचना

गेट समूह एक एक्टिविस्ट की तरह ट्रांस-एकता के लिए दुनियाभर में कार्य करता है। गेट एक तरह से Think-Tank का काम करता है, जो दुनियाभर में अपने सदस्यों तक पहुंचाता है।

कार्य(पिछले एक वर्ष में)

- ट्रांस लोगों की समस्याओं पर यूरोपीय स्तर पर लेखन,संपादन, प्रकाशन एवं वितरण।
- क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं से मिलकर नेटवर्क को मज़बूती प्रदान करना।
- इंटरनेशनल ट्रांस कान्फ्रेंस का आयोजन इसके साथ ही ये इंटरनेशनल Advisory board का काम भी करता है।

2) अल-फातिहा फाउंडेशन (Al-Fatiha Foundation)

यह फाउंडेशन एक अंतरराष्ट्रीय संगठन है जो मुस्लिम समुदाय के लेस्बियन, गे, बाइसेक्सुअल व ट्रांसजेंडर के पहचान(gender identity) के प्रति समर्पित है। 1997 में फैजल आलम, जो एक पाकिस्तानी अमेरिकन है। इसने एनजीओ के रूप में यूएस में रजिस्टर्ड किया और, जो 2011 तक कार्यरत रही। इसके वेबपेज को बाद में discontinue कर दिया गया है।

ज्ञान शांति मैत्री

दुनिया के 25 मुस्लिम देशों के लोगों के साथ जुड़कर इस संस्था के द्वाराकार्य किया गया है। कुछ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन भी आयोजित किए हैं, जैसे- 1990 व 2000 में न्यूयार्कएवं लंदन में, और 2005 में अटलांटा में। 2001 में इस संगठन के खिलाफ फतवा निकालकर मुस्लिम रूढ़िवादियों ने इस संगठन के सभी सदस्यों को murt add घोषित कर मृत्यु की घोषणा की। तब से इसके मेंबर गुप्त रूप से कार्यरत हैं।

उद्देश्य:

- मुस्लिम समुदाय के एलजी.बी.टी. का सेक्सुयल ओरिएंटेशन या जेंडर आइडेंटिटी को इस्लाम में स्थापित करने के लिए सहयोग करना है। साथ ही इस्लामिक स्वरूप से इनको सामाजिक न्याय दिलवाना है। रूढ़िवादी इस्लामियों से होने वाले भेदभाव एवं अन्याय के खिलाफ वैश्विक स्तर पर एकजुट होने का लक्ष्य मुख्य है।

3) अंतरराष्ट्रीय 'गे' और 'लेस्बियन' मानवाधिकार आयोग(InternationalGay And Lesbian Human Right Commission)

यह संस्था गे और लेस्बियन के अधिकारों के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काम करने वाली प्रमुख मानवाधिकार संस्था है। यह उन लोगों की पैरवी का काम भी करती है, जो समाज में अपने यौनिक रुझान, जेंडर आइडेंटिटी व एक्स्प्रेशन के कारण भेदभाव पूर्ण व्यवहार का शिकार होते हैं। यह संस्था दुनिया भर में एल.जी.बी.टी. अधिकारों का पैरवी करती है तथा यह इनके संघर्षों को मजबूती प्रदान करने व अधिक प्रभावी बनाने के लिए काम करती है। यह यूनाइटेड नेशन्स, क्षेत्रीय मानवाधिकार संगठनों तथा नागरिक समाज के साथ मिलकर काम करती है। यह एक गैर-सरकारी संस्था के रूप में मानवाधिकार तथा एल.जी.बी.टी. अधिकारों के लिए यूनाइटेड नेशन्स में परामर्शदाता की स्थिति रखती है।

स्थापना- अमरीकी कार्यकर्ता जुली डार्फ(Julie dorf) द्वारा अंतरराष्ट्रीय गे और लेस्बियन मानवाधिकार आयोग का गठन 1990 में किया गया। शुरुवात में यह संस्था यौनिक रुझान, जेंडर आइडेंटिटी और एच.आई.वी. से संबंधित अधिकारों से अपना कार्य प्रारंभ की।

हम क्या करें अखंडता, समानता, सम्मान, भिन्नता और भागीदारी जैसी मूल्यों को आधार बनाकर यह संस्था काम करती है। इनका सामान्य लक्ष्य 'मानवाधिकार सबके लिए, तथा सभी जगह' है।

प्रमुख मुद्दे

सार्वभौम मानवाधिकार घोषणा पत्र के अनुसार

- भेदभाव समाप्त कर समानता स्थापित करना

- निजी व परिवार संबंधी अधिकार- सभी लोगों को अपनी निजी जीवन व्यतित करने का अधिकार है, लेकिन समान्य रूप से देखा जाता है कि एल.जी.बी.टी. समूह के लोगों के साथ इस दृष्टि से भेदभाव पूर्ण व्यवहार का शिकार बनाया जाता है, उन्हें विवाह के लिए मजबूर किया जाता है।
- अत्याचार, हिंसा तथा शोषण से मुक्ति
- गैर-अपराधिकरण
- बोलने, एकत्रित होने तथा संगठन बनाने की स्वतंत्रता
- जेंडर पहचान और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
- स्वास्थ्य और मानवाधिकार के मुद्दे

मुख्य रूप से यह मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा पत्र को आधार बनाकर इन मुद्दों पर काम करती है तथा इनका प्रयास विश्व के सभी नागरिकों को उनके अधिकार प्रदान करवाना है।

4.5.2 भारतीय गैर-सरकारी संगठन

1) नाज इंडिया ट्रस्ट

नाज फाउंडेशन 1994 से एच.आई.वी./एड्स और यौनिक स्वास्थ्य पर कार्य करने वाली संस्था है। इसका मुख्य कार्यालय दिल्ली में है। मुख्य उद्देश्य एचआई.वी. संक्रमण को नियंत्रित करना तथा संक्रमित लोगों तक चिकित्सा सुविधाएं मुहैया कराना है। साथ ही इसका उद्देश्य समुदाय को अन्य यौनिकता एवं यौनिक स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दों से अवगत कराना है। धारा377 के खिलाफ 2001 से मुकदमे में मुख्य भूमिका नाज़ फाउंडेशन की ही रही है।

संस्थापक- 'अंजलि गोपालन' नाज फाउंडेशन की संस्थापक तथा वर्तमान कार्यकारी निदेशक है। उन्होंने एच.आई.वी. प्रभावित लोगों के साथ काम करने की शुरुवात अमेरिका से की। बाद में जब वे भारत आई तो उन्होंने यहाँ एच.आई.वी. मरीज़ो की स्थिति उसकी बढ़ती हुई संख्या तथा इसके प्रति सरकार और समाज के रवैये को देखकर निराश हुई। उनकी प्रतिक्रिया नाज़ इंडिया के रूप में सामने आई,जो समाज में कलंकित लोगों के साथ काम करें।

इसके मुख्य कार्यक्रम निम्नलिखित हैं-

- एमएसएम कार्यक्रम- ऐसे लोग, जो समलैंगिक हैं, उनके स्वास्थ्य को लेकर उनके बीच काम करना।
- ड्राप इन सेंटर(Drop in center)- इसके अंतर्गत एम.एस.एम. और ट्रांसजेंडर लोगों के साथ बातचीत, परामर्श, टेलीफोन द्वारा परामर्श, विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना है।
- गृह आधारित देख-भाल- इसके अंतर्गत प्रभावित लोगों तक चिकित्सा सुविधाएं, परिवार के लोगों द्वारा उत्साह वर्धन, मनोवैज्ञानिक परामर्श, वैधानिक समर्थन और क्षमता निर्माण वाले कार्यक्रमों को पहुंचाना है साथ ही रोज़गार के लिए भी प्रयास किए जाते हैं।

- समूह शिक्षा(Peer Education)- इसके अंतर्गत विभिन्न विश्वविद्यालयों व कालेज के युवकों को यौनिक स्वास्थ्य तथा यौनिक अधिकारों के मुद्दों पर प्रशिक्षित किया जाता है, ताकि वे इस जागरूकता अभियान को आगे बढ़ाए।
- केयर होम(Care Home)- भारत में दुनिया का एक बहुत बड़ा जनसंख्या एचआई.वी. अनाथ बच्चों की है, और यह लगातार बढ़ रही है। इन बच्चों को विभिन्न मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। 2001 से 'नाज़ इंडिया' अनाथ बच्चों के साथ काम कर रही है। केयर होम के सभी बच्चों को स्वास्थ्य, शिक्षा, एक सुरक्षित और कलंक मुक्त वातावरण व प्यार व मस्ती भरा बचपन मिले, इन मौलिक अधिकारों के सिद्धांत का पालन करते हुए इसकी स्थापना की गई।

प्रशिक्षण, शिक्षा और सामुदायिक भागीदारी

विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण और शिक्षा का कार्य किया जाता है। साथ ही नाज़ इंडिया विभिन्न समूहों की कार्यक्रम में भी भाग लेती है। इसका मुख्य उद्देश्य विभिन्न सामाजिक चुनौतियों के लिए जागरूकता फैलाना है।

2) छत्तीसगढ़ मितवा संकल्प समिति

'छत्तीसगढ़ मितवा संकल्प समिति' का गठन 12 नवंबर 2009 को ट्रांसजेंडर, किन्नर तथा कोथियों के समस्याओं को देखते हुए किया गया। यह संस्था अपने आप में महत्वपूर्ण इसलिए है कि इस संस्था के सभी सदस्य ट्रांसजेंडर, किन्नर व कोथी में से ही है। इसकी मुख्य कार्यालय रायपुर कुशालपुर में है। रायपुर के अलावा छत्तीसगढ़ के विभिन्न जिलों में भी इसकी शाखा है। *मितवा संकल्प समिति* के अनुसार राज्य में थर्ड जेंडर लोगों की संख्या लगभग 10 हजार हैं।

मुख्य उद्देश्य -

- सामाजिक असमानता को दूर करना
- आर्थिक रूप से सशक्त करने व रचनात्मक कार्य हेतु प्रोत्साहित करना
- कानूनी अधिकारों की जानकारी एवं नए कानून के लिए पैरवी करना
- स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता व सुविधाएं प्रदान करना

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन निम्नलिखित क्षेत्रों में सक्रिय रूप से कार्य कर रही है-

- ज़्यादातर थर्ड जेंडर घर से निकाल दिए जाते हैं, ऐसे में इन्हें शासकीय योजनाओं द्वारा आवास प्राप्ति में मदद की जाए।
- थर्ड जेंडर कल्याण प्रकोष्ठ के लिए कानूनी पैरवी करना। यह प्रकोष्ठ शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह, सामाजिक मान्यता, रोज़गार प्रशिक्षण व अन्य महत्वपूर्ण कार्यों को भी संपादित करना।

ज्ञान शांति मैत्री

- संगठन की उचित संचालन तथा संसाधन इकट्ठा करने के लिए इसे विभिन्न सरकारी,गैर-सरकारी संस्थाओं से इसेजोड़ा जा रहा है।
- गरीबी कार्ड, स्मार्ट कार्ड और पेंशन कार्ड का लाभ दिलाने हेतु संबंधित विभागों में जाकर ज्ञापन सौंपा जा रहा है। इसके साथ ही इनके सेक्स वाले विकल्प में अन्य को जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है।
- समुदाय के सदस्यों के लिए रोज़गारन्मुखी प्रशिक्षण व विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है।
- बच्चों में थर्ड जेंडर समुदाय के प्रति जागरूकता फैलाने व यौनिकता संबंधी सकारात्मक विकास के लिए इसे पाठ्यक्रम में शामिल करने का प्रयास किया जा रहा है।
- समुदाय के लोगों को जिन अपशब्दों से संबोधित किया जाता है, उस पर रोक लगाने के लिए प्रयास।
- सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था के लिए मांग की जा रही है, ताकि समाज में ये भी सर उठाकर अपना जीवनयापन कर सकें।
- समुदाय को स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के लिए एचआई.वी./एड्स, गुप्त रोग व अन्य बीमारियों से ग्रसित लोगों को निशुल्क चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराया जा रहा है। तथा इन बीमारियों से संबंधित जागरूकता बढ़ाने के लिए आई सी सामग्री व व्यक्तिगत स्तर पर सहयोग किया जा रहा है।

3) हमसफर

हमसफर ट्रस्ट समुदाय आधारित संगठन है जो ऐसे लोगों के लिए है, जिसे हमारा विषमलैंगिक समाज पसंद नहीं करता, इसके साथ ही समुदाय के लोगों को जागरूक तथा उनके क्षमता निर्माण के लिए परामर्श दिया जाता है। इसका गठन अप्रैल 1994 में समलैंगिक पुरुषों के द्वारा किया गया, जो मुंबई और आस-पास के क्षेत्रों में रहने वाले समलैंगिक लोगों को जोड़ना चाहते थे। बीते कुछ वर्षों में एल.जी.बी.टी. लोगों को मिली स्वीकार्यता राजनीतिक पैरवी, सामुदायिक भागीदारी तथा जागरूकता से संभव हो पाया है। हमसफर ट्रस्ट के अंतिम लक्ष्य एलजी.बी.टी. लोगों के साथ सभी प्रकार के भेदभाव को खत्म करना है। यौनिकता पर एक तर्कसंगत नज़रिए का विकास भी एक प्रमुख उद्देश्य है।2001 से धारा 377 पर भी पैरवी का काम कर रही है।

संस्थापक- 'मि. राव कवि' अमेरिका में गे अधिकार पर काम करते थे, अमेरिका में हो रहे इसको भारत में भी आगे बढ़ाने के लिए वे यहां आते हैं। वर्ष 1990 से ही उन्होंने अपने काम की शुरुवात करते हुए समुदाय के लोगों को जोड़ने का काम किया। पहला विचार उनके संबंध में समाचार पत्र निकालने को

आया। उसके बाद उन्होंने बाम्बे दोस्त नाम से पत्रिका निकालने की शुरुवात की। धीरेधीरे यह संस्था समलैंगिक लोगों को अपनी सेवाएं प्रदान करने लगी और 1994 तक यह संस्था अपने व्यापक स्वरूप में आ गई।

हमसफर की तीन प्रमुख शाखाएँ है-

1) समलैंगिक लोगों के लिए सुरक्षित और पोषक वातावरण तैयार करना
2) सामुदायिक कार्यक्रम
3) परामर्श

1) समलैंगिक लोगों के लिए सुरक्षित और पोषक वातावरण तैयार करना- मुख्य रूप से एच.आई.वी./एड्स इसके संबंध में जानकारी दी जाती है साथ ही ऐसे लोगों के लिए उपचार की व्यवस्था भी की जाती है। इसी संबंध मेंबॉम्बे दोस्त, जो इंडिया की पहली गे पत्रिका 1989 में प्रकाशित हुई। सन 1995 में हमसफर के अंतर्गत ड्राप इन सेंटर का निर्माण किया गया, जो एक चिकित्सालय की तरह काम करता है और समलैंगिक मुद्दों पर अनुसंधान करता है। आज हमसफर ट्रस्ट के अंतर्गत बहुत बड़े ड्रापिंग सेंटर अपनी सेवाएँ मुहैया कराती है।

Quentin BurkleLibrary- यह 90 के दशक में शुरू हुई, जिसके अंतर्गत बहुत सारी पुस्तकें, पत्रिकाएं, अनुसंधान, पत्र और रिपोर्ट इत्यादि एल.जी.बी.टी. मुद्दों पर संग्रह की गई है।

Hello dost- हमसफर के अंतर्गत हेलो दोस्त नए ड्राप इन सेंटर के रूप में बनाई गई, जिसके अंतर्गत संबंधित व्यक्तियों के लैंगिक समस्याओं का समाधान धार्मिक और मनोवैज्ञानिक विधि से परामर्श द्वारा की जाती है। ट्रस्ट के इस शाखा को हम लैंगिक समस्याओं का समाधान शाखा भी कह सकते है।

2) सामुदायिक कार्यक्रम- सामुदायिक कार्यक्रम के अंतर्गत दूसरा सामुदायिक कार्यक्रम बनाया गया है, जिसके अंतर्गत फ्राइडे वर्कशाप एक प्रभावी कार्यक्रम है जो पहली बार भारत में समलैंगिक लोगों के लिए चलाया गया। इसके अंतर्गत विविध प्रकार के शुक्रवारी कार्यशालाएं चलाई जाती हैं जिसमें एक से अधिक साथियों के साथ संबंध को रोकना आदि शामिल है। बिंगो हाउस के अंतर्गत विविध प्रकार के गीत और नृत्य का कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं तथा समलैंगिक लोगों को प्रोत्साहित किया जाता है।

3) परामर्श- यह सेवा 1995 से शुरू हुई, इसे वाइस मेल हेल्प लाइन के नाम से जाना जाता है। यह परामर्श आमने-सामने के संबंध के द्वारा तथा फोन के माध्यम से प्रदान की जाती है। विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है, जिसमें लैंगिक जानकारी तथा वैधानिक सहायता से संबंधित है।

4.6 अधिकारों का आंदोलन

आधुनिक पितृसत्तात्मक समाज में थर्ड जेंडर व्यक्तिअदृश्य ही रहा है। पहले समलैंगिकता को अपराध घोषित किया गया बाद में औपनिवेशिक काल के आपराधिक जनजाति अधिनियम के अंतर्गत हिजड़ा समुदाय को अपराधी माना गया। तब से लेकर आज तक कानून व समाज की मार थर्ड जेंडर समूह पर देखी जा सकती है। इनकी संवैधानिक स्थिति का अनुमानइसी बात से लगाया जा सकता है कि 1994 में

जाकर इन्हें मतदान का अधिकार मिल सका वो भी पहचान पत्र महिला के रूप में। अपनी पहचान की लड़ाई लड़ रहे इस समूह को 2011 के जनगणना में सेक्स वाले कालम में अन्य का विकल्प प्राप्त हुआ। एल.जी.बी.टी. समूह की यौनिकता को लेकर एक लंबी बहस चल रही है। वैश्विक स्तर की तुलना में भारत में बहुत बाद में समलैंगिकता के पक्ष में आवाज उठाई गई तथा धारा 377 को निरस्त करने के लिए संवैधानिक बदलाव के लिए लड़ाई लड़ी गई। धारा 377 के नकारात्मक प्रभावों को देखते हुए इसके खिलाफ़ संघर्ष की शुरुवात 1993 को माना जा सकता है। जब एड्स भेदभाव विरोधी आंदोलन(ए.बी.वी.ए.) ने पुलिस उत्पीड़न के खिलाफ एक विरोध आयोजित किया था। इसी विरोध ने पहली बार सार्वजनिक तौर पर धारा 377 को रद्द करने की भी बात रखी गई। दूसरा नकारात्मक पहलू तब सामने आया जब 1994 में डाक्टरों के एक समूह ने दिल्ली की एक जेल में कंडोम वितरित किए जाने का सुझाव दिया, क्योंकि वहाँ कैदियों में समलैंगिक सेक्स हो रहे थे, लेकिन जेल अधिकारियों ने कंडोम बाटने से मना कर दिया, क्योंकि समलैंगिक संबंध कानूनी रूप से अपराध है और कंडोम बाटने का अर्थ इसे जानबूझकर नज़रअंदाज कर देना है। इसके कारण पहली बार एबी.वी.ए. ने धारा 377 को कोर्ट में चुनौती दी, सुनवाई 2011 में हुई तो इन्हें बिना पता चले ही खारिज कर दिया गया।

अपराधीकरण के खिलाफ दूसरी मुहिम 2001 से ही शुरू हुई। जब नाज फाउंडेशन इंडिया ट्रस्ट और एच.आई.वी. एड्स पीड़ित लोगों की कानूनी सहायता के लिए कार्य कर रहे वकीलों के एक समूह ने दिल्ली हाईकोर्ट में धारा 377 से सहमति से बनाए गए वयस्क समलैंगिक संबंध का गैरअपराधीकरण के लिए याचिका दायर की। यह पहला बड़ा व्यापक प्रयास था, जिसने एल.जी.बी.टी. समुदाय को इकट्ठा किया तथा लोगों में जागरूकता लाने का प्रयास भी किया।

बॉक्स सं. 1 धारा 377 क्या है?

भारतीय दंड संहिता, धारा 377 (अप्राकृतिक अपराध): "जो भी कोई स्वेच्छा से किसी पुरुष, महिला या पशु के साथ प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कामुक संभोग करता है,उसे आजीवन कारावास या फिर 10 वर्षों तक बढ़ाई जा सकती है और जुर्माना भी हो सकता है।"

धारा 377 की मुख्य बातें- धारा यह स्पष्ट नहीं करती कि 'अप्राकृतिक' यौन में क्या-क्या शामिल है, न ही यह सहमतियुक्त तथा जबरन यौन आचरण में कोई फर्क करती है।

- धारा के तहत यह स्पष्ट कहा गया है कि 'लिंग प्रवेश यौनिक संभोग को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।" इस व्याख्या के कारण इसमें मुख व गुदा भी शामिल हो जाता है।
- विषमलैंगिक के संदर्भ में मुख व गुदा मैथुन,शादी के अंदर भी प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है।
- पूरे भारतीय कानून में यौनिक भिन्नता को कहीं भी मान्यता नहीं मिली हुई है।
- यह धारा भिन्नता पर एकरूपता थोपती है और इस तरह यह भिन्न यौनिकता का अपराधिकरण करती है।

नाज़ फाउंडेशन इंडिया से संबंधित याचिका के प्रमुख घटनाक्रम इस प्रकार से रही

2002- जाइंट एक्शन कन्नूर ने धारा 377 को बनाए रखने के समर्थन में कोर्ट में हस्तक्षेप जारी किया। इसमें कहा गया था कि एच.आई.वी. की वजह से एड्स नहीं होता, और एच.आई.वी. को फैलने से रोकने के लिए इस कानून की ज़रूरत है।

2003- भारत सरकार गृह मंत्रालय ने धारा 377 को बनाए रखने के लिए तर्क दिया कि कानून को समाज से अलग करके नहीं देखा जा सकता और समलैंगिकता भारतीय समाज के मूल्य और नैतिकता से मेल नहीं खाती।

2004- दिल्ली उच्च न्यायालय ने नाज़ की याचिका की इस वजह से खारिज कर दिया, क्योंकि धारा 377 से प्रभावित पक्ष वह नहीं है।

2006- नाज फाउंडेशन तथा लायर्स कलेक्टिव ने उच्चतम न्यायालय के सामने मामले को पुनर्विचार के लिए रखा। उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि याचिका खारिज किए जाने के पर्याप्त कारण नहीं थे और दिल्ली उच्च न्यायालय को इस मामले को सुनना ही होगा। मामले को मज़बूत करने के लिए धारा 377 से प्रभावित लोग भी इसमें शामिल हुए तथा मानवाधिकार तथा स्त्री अधिकारों से संबंधित बहुत सारे संगठन धारा 377 के विरुद्ध खड़े हुए।

2006- स्वास्थ्य मंत्रालय के एक उपविभाग नाको (NACO) ने नाज़ की याचिका के विचारों को सही ठहराते हुए एक शपथपत्र दायर किया। इसमें कहा गया कि धारा 377 के कारण वास्तव में एच.आई.वी./एड्स की जानकारी व रोकथाम के प्रयासों पर विपरीत असर पड़ता है।

2006- बी.पी.सिंघल (भाजपा नेता) ने हस्तक्षेप दायर किया, जिसमें कहा गया कि समलैंगिकता भारतीय संस्कृति के खिलाफ़ है।

2008- सी.जे.शाह और जे. मुरलीधर के सामने मामला अंतिम बहस के लिए आया।

2009- 2 जुलाई 2009 को दिल्ली उच्च न्यायालय के धारा 377 में सहमति से बनाए गए समलैंगिक संबंध को मान्यता प्रदान की।

धारा 377 और मानवीय गरिमा के आधारभूत संवैधानिक सिद्धांतों के विरोधाभास को दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले से समझा जा सकता है। सही मायने में इस फैसले से जिन मानवीय मूल्यों की बात की जा रही थी, उसे व्यापकता प्रदान की गई। आपराधी मान लिए जाने से न वे अपनी पहचान जान पाए और न ही अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा पाए। धारा 377 जिन मूल्यों को बढ़ावा देता है, वे यौनिकता के इर्द-गिर्द शर्म, गोपनियता तथा अपराधबोध की भावना है। ये वे हथियार है, जो पितृसत्ता के लिए बहुत फायदेमंद साबित हुए हैं, क्योंकि इसी कारण से विभिन्न यौनिक झुकाव वाले लोग तथा महिला अपना चुनाव नहीं कर पाती हैं। अब जब लोग अपनी यौनिकता और पहचान को समाज के सामने रख रहे हैं, ऐसे में उनकी यौनिकता को संस्कृति के विरुद्ध, अप्राकृतिक या पश्चिमी सभ्यता का

ज्ञान शांति मैत्री

प्रभाव कहकर नकार नहीं सकते हैं। एक लंबी बहस समलैंगिकता के अपराधीकरण को मानव अधिकारों के हनन के रूप में हुई है। संवैधानिक बहसो में जिन अधिकारों को लेकर चर्चा हुई है उनमें समानता, सम्मान, गोपनियता तथा भेदभाव व स्वतंत्रता शामिल है।

4.7 सारांश

इस इकाई में हमने तृतीय पंथी जन से संबंधित यौनिकताऔर जेंडर आधारित पहचान को देखा, साथ ही उनके इतिहास में अस्तित्व एवं स्थिति पर भी नज़र डालने का प्रयास किया है। समाज कार्य के विकास क्षेत्र के रूप में तृतीय पंथी जन को देखा गया, उनके आर्थिक एवं व्यवसायिक स्थिति के बारे में संक्षेप में विचार किया है।

वर्तमान में वैश्विक स्तर पर एवं भारत में एलजी.बी.टी. के अधिकारों से संबंधित कार्यरत गैस्सरकारी संगठनों की विस्तृत रूप में चर्चा की है। आगे यह भी देखा है कि भारत में तृतीय पंथी जन के अधिकारों से संबंधित मुद्दे ने एक नए आंदोलन का रूप धारण किया है। साथ ही न्यायालयमें संवैधानिक बहसो में जिन अधिकारों को लेकर चर्चा हुई है, उनमें समानता, सम्मान, गोपनियता तथा भेदभाव व स्वतन्त्रता से संबंधित घटना क्रम को जाना है।

4.8 बोध प्रश्न

1. तृतीय पंथी जन की यौनिकता और जेंडर आधारित पहचान से क्या तात्पर्य है।
2. तृतीय पंथी जन के ऐतिहासिक संदर्भों की चर्चा कीजिए।
3. गेट (GATE) क्या है? उसके मिशन, लक्ष्य और संरचना को स्पष्ट कीजिए।
4. एल.जी.बी.टी. के अधिकारों से संबंधित भारतीय गैस्सरकारी संगठनों का उल्लेख करें।
5. धारा 377 क्या है? तृतीय पंथी जनों के अधिकारों के आंदोलन की चर्चा करें।

4.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

अभिज्ञान, रंजीत और भारद्वाज, *पूर्वा (सं.) (2011).* जेंडर और शिक्षा रीडर भाग 1,2. नई दिल्ली: निरंतर

त्रिपाठी, ल. न. (2013).*मी हिजड़ा मी लक्ष्मी.* मनोविज्ञान प्रकाशन

साहू, डिसेन्ट कुमार (अप्रकाशित एम. फिल लघु शोध-प्रबंध) (2014). *थर्ड जेंडर वैयक्तिक, सामाजिक गतिकी और समाज कार्य.* म. गां. अं. हिं. वि. वर्धा.

पाण्डेय, ब. (2013). *समाज कार्य.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.

सिंह, य. (2013, दिसंबर 13). *अधिकार पर नई बहस,* दैनिक जागरण, पृ. 8

तृतीय समुदाय, छत्तीसगढ़ मितवा संकल्प समिति

http://en.wikipedia.org/wiki/Hijra_(South_Asia)

http://transactivists.org/

http://en.wikipedia.org/wik i/Al-Fatiha_Foundation

ज्ञान शांति मैत्री

खंड - 4

अन्य क्षेत्र

इकाई1. अपराधशास्त्र एवं सुधारात्मक सेवाएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अपराधशास्त्र का परिचय
1.3 अपराधशास्त्र के दृष्टिकोण एवं सिद्धांत
    1.3.1 अपराध के सिद्धांत
1.4 अपराध
1.5 अपराधी सुधार प्रशासन
    1.5.1 जेल
1.6 बाल अपराध
    1.6.1 बाल अपराधी सुधार कार्यक्रम
1.7 समाज कार्य और अपराधी सुधार सेवाएं
1.8 सारांश
1.9 बोध प्रश्न
1.10 संदर्भ एवं अन्य पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. अपराधशास्त्र की अवधारणा से अवगत हो सकेंगे।
2. अपराध के विभिन्न सिद्धांतों को रेखांकित सकेंगे।
3. अपराधियों के सुधार के लिए आयोजित कार्यक्रमों को जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. भारत में अपराध और सुधार कार्यक्रमों की रूपरेखा को विश्लेषित कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

जन्म से कोई व्यक्ति अपराधी नहीं होता है। सामाजिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य न होने के कारण व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है और उसकी प्रवृत्ति आपराधिक हो जाती है। अपराध से सीधे तात्पर्य है, नियम कानून का उल्लंघन अब सवाल उठाता कि व्यक्ति सामाजिक नियमों का उल्लंघन क्यों करता है? इसके कारणों की खोज के बाद पता चला कि व्यक्ति सामान्य रूप से अपने कुसमायोजन, गलत संगत आदि कारणों से आपराधिक व्यवहारों के गिरफ्त में आ जाता है।

विभिन्न देशों में अपराध के लिए संवैधानिक दंड निर्धारित किए गए है। भारतीय परिदृष्यअपराध एवं आपराधिक प्रवृत्तियों पर रोक लगाने के लिए पुलिस, न्यायालय एवं जेल है। इस संरचना का उपयोग अपराधी को दंड दिलाने के लिए किया जाता है। दंड देने के पीछे यह धारणा थी कि दंड के भय से व्यक्ति अपराध करना या उस प्रवृत्ति को छोड़ देगा, परंतु इसका परिणाम उलटा ही हुआ अपराधियों केलिए जेल एक ऐसी जगह बन गई है, जहाँ दो वक्त की रोटी नसीब होती थी। इस कारण छिट-पुट अपराधें में बढ़ोतरी ही हुई। अपराध पर किए गए अध्ययनों के बाद यह तय हुआ कि दंड के साथ-साथ सुधार को भी अपनाया जाए, जिससे अपराधी फिर इन गतिविधियों में न पड़े। इन्हीं सेवाओं कोसुधारात्मक सेवाओं के रूप में भी जाना जाने लगा।

सुधार आपराधिक न्यायव्यवस्था का ही एक हिस्सा है, जिसमें बार-बार होने वाले आपराधिक व्यवहारों को ''ढूँढना और असामाजिक व्यवहारों के कारणों को रेखांकित कर समझ बनाते हुए उसकी रोकथाम करना। इस प्रक्रिया का मूल उद्देश्य अपराधियों का पुन: समाज में पुनर्वास करना है। पुलिस और न्यायालय की धीमी प्रक्रिया और साथ ही अधिनियमों में दोष के कारण इनकी पुर्नबलन की प्रकिया बहुत ही लंबी(lengthy) हो जाती है। ऐसे में कई सारे मामले देरी के कारण खारिज भी हो जाते हैं या कभी-कभी अपराधी को अपराध से ज़्यादा दंड मिल जाता है। ऐसे में सुधारात्मक प्रक्रिया के अंतर्गत समाज कार्य अपराधियों के सुधार की ज़िम्मेदारी लेता है।

अपराध और अपराधी को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपने सिद्धांत दिए हैं। समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान के विद्वानों का इस क्षेत्र में योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है। अन्य विषयों के विशेषज्ञों ने भी अपराध और अपराधी को समझने का भरसक प्रयत्न किया है, जिसमें वकील, न्यायाधीश, चिकित्सक तथा मानववैज्ञानिक आदि हैं। इन्हीं विद्वानों के विचारों की बुनियाद पर अपराधशास्त्र का सूत्रपातहोता है। अपराधशास्त्र शब्द के उदय का श्रेय फ्रांसीसी मानवशास्त्री टोपिनार्ड (Topinard) (1889) को दिया जाता है। अपराधशास्त्र पर प्रथम पाठ्य पुस्तक 1920 में समाजशास्त्री मौरिस पार्माली (MauriceParmalee) द्वारा 'अपराधशास्त्र' (Criminology) शीर्षक से अमेरिका में लिखी गई।

भारत में अपराधशास्त्र का शिक्षण लखनऊ के जेल अधिकारी प्रशिक्षण महाविद्यालय में 1940 से शुरू हुआ। 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय में अपराधशास्त्र में एक डिप्लोमा कोर्स शुरू किया गया। बाद के समय में हम देखते हैं कि अपराधशास्त्र एक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा, जिसमें टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल सायंसेस (1954), सागर विश्वविद्यालय (1959), मद्रास विश्वविद्यालय (1965) आदि। 1950-70 के दशक तक ऐसे ही इसका विकास होता रहा; किंतु 1970-80 के बीच अपराधशास्त्र प्रचलन अधिक तीव्रता से हुआ इस कारण इसे एक अलग विषय के रूप में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, समाज-कार्य और कानून जैसे विषयों में शामिल किया जाने लगा।

जैसे कि समाज कार्य का संबंध लोगों के सुधार तथा अपराध का निरोध से है। जेल की अवधारणा में आए बदलावों के अनुसार जेल अब केवल दंड का उपकरण नहीं रहा, जेलों में कैदियों के सुधार पर ज़ोर

दिया जाने लगा है। बावजूद इसके बाल अपराध का अपना एक अलग दृष्टिकोण है, जिसमें बालकों के सुधार, शिक्षा आदि पर ज़ोर दिया जाता रहा है। समाज कार्य अपराधी सुधार प्रशासन के अंतर्गत अपनी भूमिका बखूबी निभा रहा है। इसी परिदृश्य में अपराधशास्त्र की अवधारणा, सिद्धांत तथा इसमें आए बदलाव एवं सुधारात्मक सेवाओं को समझने की कोशिश इस इकाई में हम करेंगे।

1.2 अपराधशास्त्र: एक परिचय

सामान्यत: अपराधशास्त्र से तात्पर्य एक ऐसा विज्ञान, जिसमें अपराध की व्याख्या की जाती है। शुरुआती समय में अपराधशास्त्र को दंडशास्त्र (Penology) के नाम से भी जाना जाता था, किंतु आज अपराधशास्त्र का प्रयोग इस संकुचित अर्थ में न करके विस्तृत अर्थ में किया जाने लगा, जिसमें दंडशास्त्र एवं अपराधियों के उपचार और सुधार को भी सम्मिलित किया जाने लगा है। *वेबस्टर डिक्शनरी* के अनुसार *अपराधशास्त्र अपराध का सामाजिक तथ्य के रूप में वैज्ञानिक अध्ययन है, तथा अपराधी और उसके मानसिक गुणों, आदतों एवं अनुशासन आदि का अध्ययन भी इसमें किया जाता है।* इस परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि अपराधशास्त्र समाज में मनुष्य के विचलित व्यवहारों का अध्ययन करता है।

सुदरलैंड एवं क्रेसी (Sutherlandand Cressey) अपनी किताब *principles of Criminology* () में लिखते हैं कि "अपराधशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है, जो सामाजिक तथ्य के रूप में अपराध की व्याख्या करता है। इसके क्षेत्र में हम कानून बनाना, कानून को तोड़ना तथा कानून को तोड़ने के प्रतिप्रतिक्रिया को सम्मिलित करते हैं।"

टेफ्ट डी. आर. एवं इंग्लैंड आर. डब्ल्यू. (Taft D. R.and England R. W.) अपनी पुस्तक *Criminology* में अपराधशास्त्र के बारें में अपने विचार रखते हुए लिखते हैं, "अपराधशास्त्र ऐसा अध्ययन है, जिसकी विषय-वस्तु के अंतर्गत अपराध का अर्थ और निरोध, अपराधियों और बाल अपराधियों के दंड तथा उपचार को सम्मिलित किया जा सकता है।' टेफ्ट की अपराधशास्त्र की यह परिभाषा समाज कार्य के भूमिका को एक उचित लक्ष्य प्राप्त कराती है। साथ ही अपराध शास्त्र के विषय-वस्तु का निर्धारण करने में मदद भी करती हैं।

न्यूमैन (Neuman) ने अपराधशास्त्र को सामाजिक विज्ञान की वह शाखा कहा है, जो आपराधिक व्यवहार से संबंधित हैं। धर्मवीर महाजन एवं कमलेश महाजन अपनी किताब 'अपराधशास्त्र' में बताते हैं कि अपराधशास्त्र मुख्यत: तीन प्रकार के परस्पर संबंधित तथ्यों का अध्ययन करता है-

1. अपराध की व्याख्या
2. अपराधों का प्रतिशोधन अर्थात दंड व्यवस्था
3. आपराधिक का उपचार, सुधार एवं पुनर्स्थापना

किसी भी ज्ञानशाखा का अपना विषय-क्षेत्र होता है। अपराधशास्त्र के विषय-क्षेत्र के बारें में यह बात महत्वपूर्ण है कि कुछ विद्वान इसे केवल विधि सम्मत व्यवहार तकसीमित रखना चाहते हैं, जबकि कुछ विद्वान इसे सामाजिक व्यवहार की ही श्रेणी मानते हैं। इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच एक तीसरा दृष्टिकोण उन विद्वानों का है, जो अपराध को सामाजिक-कानूनी दृष्टिकोण से देखते हैं। अपराधशास्त्रके विषय क्षेत्र पर विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार रखें है, जिसमें काडवेल, इलियट, सदरलैंड एवं क्रेसी तथा जेफरी आदि हैं। इन सभी के बावजूद वाल्टर सी. रैकलस (Walter C. Reckless, 1955) ने अपनी किताब The Crime Problem में अपराधशास्त्र के विषय-क्षेत्र पर विस्तृत बिंदुओंपर बात की है। उनके अनुसार अपराधशास्त्र के विषय-क्षेत्र में निम्नलिखित केंद्रीय रुचियाँ हैं-

1. कानून के उल्लंघनों का लेखा-जोखा रखना, गिरफ्तारियों की संख्या का संकलन करना तथा अपराधियों का तादात्मीकरण करना।
2. विभिन्न देशों के आपराधिक क़ानूनों का उनकी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप उनका तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. बाल तथा वयस्क अपराधियों के वैयक्तिक, सामाजिक तथा आर्थिक कारकों का विश्लेषण करना, ताकि उनके वैज्ञानिक अध्ययन हेतु समाजशास्त्रीय अध्ययन सामग्री उपलब्ध हो सके।
4. उन सिद्धांतों एवं उपकल्पनाओं का प्रतिपादन, परीक्षण एवं संशोधन करना, जो अपराध तथा बाल अपराध की घटनाओं का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में सहायक हैं।
5. अपराधी व्यवहार के उन तत्वों का स्पष्टीकरण करना, जिन्हें वैधानिक रूप से अपराध घोषित किया जाता है।
6. उन अपराधियों का वैयक्तिक तथा सामाजिक अध्ययन करना, जो अपनी मानसिक विकृतियों के फलस्वरूप प्रथम बार अपराध करते हैं पर स्वभाव से अपराधी नहीं होते हैं।
7. व्यवहार विचलन की उन समस्याओं का अध्ययन करना तथा उनके नियंत्रण की विधियों की खोज करना, जो असामाजिक कृत्यों जैसे- वेश्यावृत्ति, आत्महत्या, मादक पदार्थ व्यसन आदि आपराधिक व्यवहार को जन्म देने में प्रमुख योगदान देते हैं।
8. आपराधिक कानूनों के कार्यान्वयन हेतु उन वैज्ञानिक विधियों का अध्ययन एवं खोज करना, जिससे अपराध की समस्या का समाधान हो सके।
9. अपराधियों के सुधार एवं पुनर्वास की उन प्रमुख विधियों की सार्थकता एवं प्रभावशीलता का अध्ययन एवं मूल्यांकन करना, जिनका प्रयोग आज हो रहा है।
10. बाल तथा वयस्क अपराध के निरोधक कार्यक्रमों की संचालन व्यवस्था का मूल्यांकन एवं संशोधन करना।

अत: अपराधशास्त्र के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि अपराधशास्त्र अपराध के कारणों की जाँच पड़ताल कर उसके निरोध में सहयोग प्रदान करते हुए अपराधियों के सुधार में सहायक ज्ञान उपलब्ध

करता है। अपराधशास्त्र का महत्व इस कारण भी बढ़ जाता है, क्योंकि वह केवल अपराध ही नहीं, बल्कि अपराध एवं अपराधियों के निर्माण में शामिल सामाजिक कारकों, प्रक्रियाओं का अध्ययन भी यह करता है। जैसे- सामाजिक विघटन, सामाजिक विचलन, समाज विरोधी व्यवहार आदि प्रक्रियाओं का समाज मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर उसका कानून के साथ तालमेल बिठाने का कार्य इस ज्ञानशाखा में किया जाता है। अपराधशास्त्र के महत्व का विश्लेषण *धर्मवीर महाजन एवं कमलेश महाजन* निम्न बिंदूओं के आधार पर करते हैं-

1. विचलित व्यवहार का ज्ञान
2. अपराध के कारणों का ज्ञान
3. अपराध निरोध में सहायक
4. अपराधियों के सुधार में सहायक
5. जेल-सुधारों में सहायक
6. सामाजिक संगठन एवं विघटन को समझने में सहायक
7. अनेक व्यवसायों के प्रशिक्षण में सहायक
8. कानून के अध्ययन में सहायक
9. अपराधी प्रवृत्तियों का ज्ञान
10. समाज के दृष्टि से उपयोगी

1.3 अपराधशास्त्र के दृष्टिकोण एवं सिद्धांत

शुरुआत में ही हमने देखा है कि अपराधशास्त्र के निर्माण में विभिन्न ज्ञानानुशासनों(Discipline) एवं व्यवसायिकों (Professionals) का सहभाग रहा है। समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, मानव विज्ञान तथा विधि इसमें से महत्वपूर्ण हैं। दर्शनशास्त्र में भी अपराध पर बातचीत नज़र आती है। आधुनिक समाजशास्त्र में दुर्खीम, मर्टन तथा पारसन्स **अप्रतिमानता (Anomie)** की अवधारणा देते हैं। इसे विसंगति, आदर्श विहीनता, नियमहीनता भी कहा जाता है। अप्रतिमानता शब्द का प्रयोग पहली बार दुर्खीम के साहित्य में मिलता है। अप्रतिमानता से तात्पर्य है समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार से हटकर व्यवहार की प्रवृत्ति का बढ़ जाना। इसलिए अप्रतिमानता को सामाजिक संरचना से जुड़ा हुआ माना जाता है। दुर्खीम के अनुसार‘अप्रतिमानता आदर्शविहीनता अथवा आदर्शात्मक संरचना के अव्यवस्थापन की एक सामाजिक दशा है। अर्थात् यह अत्यंतिक अभिलाषा, लालच व अनगिनत आकांक्षाओं की सामूहिक नैतिक व्यवस्था द्वारा नियंत्रण की असफलता है।’ अपराधशास्त्र में अपराध को अप्रतिमानता के दृष्टिकोण के अंतर्गत देखा जाता है। जैसेअपराध सामाजिक विचलन की अवस्था है और यह विचलन सामाजिक मूल्यों के विरोध करने पर मजबूर करता है। पारंपारिक मूल्य और चेतना को आघात पहुँचाना तथा नियमों का उल्लंघन अपराध ही है।

अपराधशास्त्र में प्रचलित दूसरा दृष्टिकोण**सामाजिक व्याधिकी (Social Pathology)** है। सामाजिक व्याधिकी सामाजिक विघटन का ही एक रूप माना जाता है। इसके अंतर्गत समाज में उत्पन्न विकारों का अध्ययन किया जाता है, जो त्रुटिपूर्ण समायोजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। व्याधिकीय परिस्थिति में सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन पैदा होता है। ऐसे में सामाजिक व्याधिकी से ग्रस्तव्यक्ति का समाज में सामाजिक संसाधनों के साथ उचित समायोजन महत्वपूर्ण होता है इसका अध्ययन ही सामाजिक व्याधिकी कहलाता है। फेयरचाइल्ड एच. पी. **डिक्शनरी ऑफ सोशियोलोजी** में सामाजिक व्याधिकी को परिभाषित करते हुए लिखते हैं "सामाजिक व्याधिकी, सामाजिक विघटन या त्रुटिपूर्ण अनुकूलन का अध्ययन है, जो अनुकूलन को रोकते या कम करते हैं और वृद्धावस्था, अस्वस्थता, मानसिक दुर्बलता, पागलपन, अपराध, विवाह-विच्छेद, वेश्यावृत्ति और पारिवारिक तनाव की वृद्धि करते हैं।' कुल-मिलाकर सामाजिक व्याधिकी सामाजिक संरचना, सामाजिक समस्या को देखने का एक दृष्टिकोण है। बीसवी शताब्दी के शुरुआत में सभ्यता का पतन, समाज का विनाश आदि जुमले ने इस अवधारणा की पृष्ठभूमि प्रदान की थी। फ्रांस के पॉल वॉल लिलियनफेल्ड उन विद्वानों में से एक हैं, जिन्होंने सामाजिक व्याधिकी का विकास किया। उन्होंने अपने ग्रंथ Pathology Sociale (1886) में सामाजिक व्याधिकी पर बात रखी। सामाजिक व्याधिकी पर यह पहली पुस्तक थी। इस पुस्तक में वे लिखते है कि समाज में दो तरह के व्यक्ति होते हैं सामान्य और रोगी वैसे ही दो तरह के समाज भी होते हैं- सामान्य और रोगी समाज। इसलिए सामाजिक व्याधिकी वह विज्ञान है, जो समाज के तीन रोगों-उद्योग, न्याय और राजनीति के रोगों के अध्ययन, विश्लेषण और निराकरण से संबंध रखता है। उनका यह भी कहना था कि उद्योग के रोग उन्माद है, न्याय का रोग मानसिक दौरे हैं तथा राजनीति का रोग लकवा हैं। बदलते स्वरूप में आज इसको सामाजिक विचलन, असमान्यता, विसमान्यता आदि शब्दों में उपयोग में लाया जाता है, जिसका सीधा संबंध अपराधशास्त्र से है।

1.3.1 अपराध के सिद्धांत

आज के समय में अपराधशास्त्र ने एक बृहत विषय के रूप में विस्तार प्राप्त कर लिया है। इसके लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए सिद्धांतों का आधार इसमें लिया गया है। अपराधशास्त्र में मूलत: अपराध का अध्ययन किया जाता है। इसलिए हमें यह ज़रूरी है कि हम पहले अपराध को समझे। अपराध को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के सिद्धांतों एवं उनके संप्रदायों को देखना भी अनिवार्य बन जाता है। यहाँ हम इन पर संक्षेप में बात करेंगे।

अपराध के कारण और कारकों का विश्लेषण कर विभिन्न विद्वानों ने अपराधशास्त्र मेन अपराध के सिद्धांत दिए हैं। सदरलैंड ने इन सिद्धांतों को एकत्रित करने की कोशिश की है, जो निमन्वत है-

अ.क्र.	संप्रदाय सिद्धांत	समय	व्याख्या का आधार	पद्धतियाँ
1	शास्त्रीय सिद्धांत	1775	सुखवादी सिद्धांत	काल्पनिक

2	भौगोलिकवादी सिद्धांत	1830	परिस्थिति, संस्कृति और जनसंख्या की बनावट	सांख्यिकीय
3	समाजवादी सिद्धांत	1850	आर्थिक निश्चयात्मकवाद	सांख्यिकीय
4	प्रारूपवादी सिद्धांत		जैविक विशेषताएँ	क्लीनिकल
	a) लोम्ब्रोसो का सिद्धांत	1875	जन्मजात अपराधी	सांख्यिकीय
	b) मानसिक परीक्षण सिद्धांत	1905	मानसिक दुर्बलता	क्लीनिकल परीक्षण तथा सांख्यिकी
	c) मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत	1905	मानसिक चिकित्सा	क्लीनिकल
5	समाजशास्त्रीय सिद्धांत	1915	समूह तथा सामाजिक प्रक्रियाएँ	सांख्यिकीय

इसके बावजूद विभिन्न विद्वानों का संबंध इन सिद्धांतों से रहा है। इनमें से कुछ इस प्रकार है। जैसे
शास्त्रीय सिद्धांत – बेकेरिया, बेंथम तथा फ्यूरबैक।
भौगोलिक सिद्धांत – क्वेटलेट एवं ग्वेरी, मांटेस्क्यू तथा लोम्ब्रोसो।
पारिस्थितिकीय सिद्धांत- टार्दे, बैटग्लिया, लकेसन आदि।
समाजवादी सिद्धांत- मार्क्स एवं एंगेल्स, बोंगर आदि।
मानसिक परीक्षण वाला सिद्धांत- फैरी गौडर्ड।
मनोविश्लेषण सिद्धांत- फ्रायड, एडलर तथा ऑटोरैंक आदि।
बहुकारकीय सिद्धांत – ओगबर्न, रैकलस आदि।

इन सिद्धांतों में अपराध के कारकों के आधार पर अपराध को समझने की कोशिश की गई है, जैसे- शास्त्रीय सिद्धांत में सुखवादी दर्शन के आधार पर यह बताया गया है कि सुखदुख के कारण अपराध घटित होते हैं। भौगोलिक संप्रदाय का मानना है कि अपराध का संबंध संस्कृति और जनसंख्या की बनावट से हैं। परिस्थितिशास्त्रीय सिद्धांतकार अपराध को परिस्थिति संबंधित दशाओं का निर्माण मानते हैं।

समाजवादी संप्रदाय से जुड़े विद्वान आर्थिक निर्धारणवाद को अपराध का मुख्य स्रोत मानते हैं। मानसिक परीक्षण का आधार लेने वाले सिद्धांतकार मानसिक दुर्बलता को अपराध का महत्वपूर्ण कारकमानते हैं। मनोविश्लेषण से संबंध रखने वाले मनोवैज्ञानिक अपराध को मनोव्याधि के रूप में परिभाषित करते हैं। इसके बावजूद कुछ सिद्धांतकार अपराध को एक कारकीय के बजाय बहुकारकीय के रूप में परिभाषित करना पसंद करते हैं। इसलिए इनके सिद्धांत को बहुकारकीय सिद्धांत के रूप में जाना जाता है।

1.4 अपराध

किसी भी देश में कानूनी रूप से देश के कानून का उल्लंघन करने के लिए न्यायालय द्वारा सिद्ध दोषी व दंडित व्यक्ति ही अपराधी होता है। वह व्यक्ति, जो पुलिस द्वारा पकड़ा गया हो, लेकिन न्यायालय द्वारा छोड़ दिया गया हो, अपराधी नहीं कहा जा सकता। अर्थात् उस व्यक्ति के लिए तकनीकी दृष्टि से 'अपराधी' शब्द प्रयोग नहीं किया जा सकता।

भारत में अपराध की स्थिति:

भारत में एनसीआरबी के 2014 के आंकड़ों के अनुसार कुल1387 जेल हैं, जिसमें केंदीय जेल की संख्या 131 है, जिला स्तरीय 364 जेल हैं, उप-जेल की संख्या 758 हैं, तथा महिलाओं के जेल की संख्या19 है। प्रायोगिक जेलों में खुले जेल 54 हैं, बोर्स्टल स्कूल 20, विशेष जेल 37 तथा अन्य जेलों की संख्या 4 हैं। पूरे देश के जेलों की क्षमता 3,56,561 हैं, जिसमें प्रायोगिक जेलों की क्षमता सामान्य जेलों से बहुत ही कम हैं।2014 के अंत तक के आंकड़े बताते हैं कि जेलों में 18-30 वर्ष आयु वर्ग के अभिसंशित(Convicted) अपाधियों का प्रतिशत 30.6 है, 30 से 50 आयु वर्ग के अभिसंशित अपराधियों का प्रतिशत51.6 है तथा 50 से आगे के आयु वर्ग में आने वाले अभिसंशित अपराधियों का प्रतिशत 17.8 है।

2014 के अंत तक63,256 कैदियों को विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रशिक्षित किया गया।

कार्मिक स्तर पर इन जेलों में 52666 जेल ओफिशियल्स 4,18,536 कैदियों की देख-रेख के लिए उपलब्ध है। अर्थात 1 जेल आफ़िशियल्स 8 कैदियों पर कार्यरत है।

2014 के अंत तक कुल 32,890 कैदियों को पैरोल पर रिहा किया गया। हालांकि इसमें से374 कैदियों को फरार पाया गया। फरार कैदियों में से 225 कैदियों को पुन: गिरफ्तार कर लिया गया।

NCRB-2014 के आंकड़ों के अनुसार भारत में2014 के अंत तक33981 हत्याओं से संबंधित केस दर्ज हुए हैं,हत्या करने की कोशिश से संबंधित41791 मामले दर्ज हुए हैं, 777237 अपहरण, 38071 लूट के मामले, तथा महिलाओं से संबंधित अपराधों में36735 रेप, 8455 दहेज मृत्यु तथा महिलाओं के विरुद्ध किए गए अपराधों की संख्या142560 बताई जा रही है। बावजूद इसके बच्चों के विरुद्ध दलितों के विरुद्ध, वृद्धों के विरुद्ध किए जाने वाले अपराधों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है।

लेकिन वास्तविक व्यवहार में जब किसी व्यक्ति पर एक बार अपराधी का लेबल लग जाता है, ऐसे में समाज उसके उस दर्जे को भूलने नहीं देता है। वैसे तो अपराध की विभिन्न अवधारणाएँ हैं; बावजूद इसके कानूनी रूप में अपराध की परिभाषा अधिक सटीक मानी जाती है, क्योंकि यह माना जाता है कि अपराध की कानूनी परिभाषा यथार्थवादी, स्पष्ट अर्थ में तथा नाप के योग्य होती है।

अपराध की विधिक परिभाषा के अनुसार अपराध एक ऐसा व्यवहार या कृत्य माना जाता है, जो विधि संहिता का उल्लंघन है। पॉल टप्पेन(Paul Tappen, 1960) के अनुसार "इरादतन किया गया कारी या अपराधी कानून का उल्लंघन या अवहेलना, जो कि बिना किसी औचित्य या बचाव के किया गया हो और जिसे राज्य द्वारा गंभीर अपराध या साधारण अपराध के रूप में दंडके लिए अनुमानित किया गया है" इस परिभाषा में मूलत: छह बातों पर ज़ोर दिया गया है। इन्हें हम निमन्वत देख सकते हैं-

1. कृत्य वास्तव में किया गया हो या यह किसी वैधानिक कर्तव्य की अवहेलना हो
2. कृत्य एच्छिक होना चाहिए और तब किया जाना चाहिए जब कर्ता का अपने कृत्य के ऊपर पूरा नियंत्रण हो
3. कृत्य इरादतन होना चाहिए, भले ही इरादा सामान्य हो या विशिष्ट
4. कृत्य अपराधी कानून का उल्लंघन होना चाहिए, जो गैर अपराधी कानून, दीवानी या प्रशासनिक कानून से भिन्न होना चाहिए
5. कृत्य बिना औचित्य और बचाव के किया जाना चाहिए
6. कृत्य राज्य द्वारा गंभीर अपराध अथवा साधारण अपराध के रूप में संस्तुत होना चाहिए

कानूनी परिभाषा के अंतर्गत अपराध को इन तत्वों के आधार पर टटोलकर अपराध का निर्धारन किया जा सकता है। बावजूद इसके अपराध को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी परिभाषित किया गया है। यह बात महत्वपूर्ण है कि क्लासिकल, नव-विचलनवादी तथा मार्क्सवादी विद्वान अपराध की कानूनी परिभाषा को ही मान्यता देते हैं। किंतु कुछ अन्य समाजशास्त्रीहै, जिन्होंने अपराध को समाजशास्त्रीय परिघटना के रूप में परिभाषित किया है। थोर्स्टर्न सेलिन (Thorsten Sellin, 1970)व्यवहारवादी दृष्टिकोण से अपराध की परिभाषा करते हैं। इनके अनुसार "अपराध, व्यवहार आदर्श-प्रतिमान से विचलन या इसे भंग करना है। यह विचलन या भंग समाज द्वारा अपने दंडविधान द्वारा दंडित किया जाता है। परंतु दंड मूल्य का एकमात्र आधार नहीं है। धर्म, कला, शिक्षा व अन्य समाजशास्त्रीय अभिकरण भी मूल्य प्रकट करते हैं।" दूसरी परिभाषा के रूप में हम काल्डवेल आर. जी. (Caldwell R. G.,)अपराध की समाजशास्त्रीय परिभाषा देख सकते हैं, जिसमें वे कहते हैं कि "अपराध किसी निश्चित स्थान पर संगठित समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों के संग्रह का उल्लंघन है।" इससे तात्पर्य यह है कि सामाजिक रूप से किसी खास समाज या संगठन के मूल्यों का उल्लंघन अपराध है। रूढ़िवादी विद्वान अपराध को अलग दिशा देते हैं, जिसमें निस्बेट (Nisbet, 1970) महत्वपूर्ण हैं। रूढ़िवादियों के अनुसार अपराध वे कृत्य हैं जो सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा हैं, नैतिकता के लिए आघात हैं, तथा जान-माल के लिए खतरनाक हैं। परंपराओं

और लोगों की सत्ता के प्रति सम्मान पर आघात सामान्य समाज के लिए काफ़ी घातक है। अश्लील साहित्य और उत्तेजनात्मक फिल्में लोगों की नैतिकता का पतन करती हैं, इसलिए वे भी समाज के लिए उतनी ही खतरनाक हैं, जितना कि शत्रु का कोई गुप्तचर।

1.5 अपराधी सुधार प्रशासन

बीसवीं सदी में समाज में काफी परिवर्तन आए शायद इसीलिए इसे कुछ विद्वान सुधार का युग भी कहते हैं। इस समय में प्राचीन व्यवस्थाओं मे पाए जाने वाले दोषों को कम करने का कार्य बड़े पैमाने पर हुआ। अपराधी सुधार इसी समय की अवधारणा है। अपराधी सुधार से तात्पर्य है कि एक बार अगर कोई अपराधी अपराध कर लेता है, तो उसका इस तरह से उपचार किया जाना चाहिए कि वह फिर से उस रास्ते पर न जाए। प्राचीन व्यवस्था में केवल दंड का ही प्रावधान था और अपराधी के माथे पर अपराध एक कलंक के रूप में था, जिसे समाज कभी भुलाने नहीं देता था। विचारधारा के स्तर पर आए वैश्विक बदलाओं ने अपराधी तथा अपराध दोनों को पुनः परिभाषित करने की दिशा प्रदान की, जिसके फलस्वरूप अपराध के स्थान पर अपराधी को महत्व दिया जाने लगा। दंड की जगह उपचार और साथ ही उसके समाज में पूनर्वास पर ज़ोर दिया जाने लगा। सन 1957 में बनी फ़िल्म *दो आँखें बारह हाथ* इसी बदलाव का परिचायक थी। ऐसे में अपराधियों को समाज में फिर से समायोजित करने के लिए अपराधी सुधार कार्यक्रम की आवश्यकता महसूस की जाने लगी इसी के पूर्ति के लिए अपराधी सुधार प्रशासन की शुरुआत होती है। समाज कार्य से संबंध रखने वाले डॉ दिवाकर अपराधी सुधार प्रशासन के बारे में लिखते हैं कि *अपराधी सुधार के अंतर्गत वे समस्त कार्यक्रम सम्मिलित हैं जिनके द्वारा राजी स्वयं अथवा स्वैच्छिक प्रयासों से अपराध निरोध एवं अपराधी न्याय व्यवस्था की संपूर्णव्यवस्था के अंतर्गत उन व्यक्तियों को पुनर्लाभ, पुनर्शिक्षा एवं पुनर्वास के प्रयास करता है जिन्हें विधि संहिता का उल्लंघन करने पर दंड प्राप्त हैं।*जे. जे. पनाकल (1968) तथा इलियट स्टड (1964) जैसे समाज कारी के सुधार सेवाओं (Correctional service) से संबंध रखने वाले विद्वानों का मानना है कि अपराधी सुधार प्रशासन की आधुनिक अवधारणा में सुधार का अर्थ है अपराधी व्यक्ति को कानून का पालन करने वाले नागरिक की भाँति जीवनयापन योग्य बनाना तथा सुधार वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा आधुनिक समाज के कानून तोड़ने वाले व्यक्तियों की आपराधिक मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने तथा उनकी जीवन शैली को सामाजिक नियमों के अनुरूप ढ़ालने का प्रयत्न करना है।

अपराधियों के सुधार हेतु भारत में अनेक सुधार संस्थाएँ हैं जिनमें प्रमुख रूप से है- पुलिस, न्यायालय तथा जेल यह सभी सरकारी अभिकरण हैं, बावजूद इसके अनेक संस्थाएँ स्वैच्छिक प्रयास से भी अपराधी सुधार का कार्य करती हैं। इन सभी अभिकरणों में अपराधियों के सुधार की व्यवस्था के लिए जेल एक उचित अभिकरण माना जाता है। जेल बदले हुए स्वरूप में अपने आप में एक अलग समाज है। इस लिए यहाँ पर अपराधियों के सुधार हेतु विभिन्न कार्य किए जाते हैं, जिसमें एक खास प्रशासन की आवश्यकता होती है। अपराधी सुधार प्रशासन से संबंधित कार्यक्रम दो प्रमुख उद्देश्यों पर आधारित हैं

1. व्यक्ति के विचलित व्यवहार एवं दृष्टिकोण में ऐसी सहायता प्रक्रिया द्वारा परिवर्तन करना, जो उसके व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन में सहायक हो
2. व्यक्ति के पर्यावरण तथा परिस्थितियों में परिवर्तन तथा संशोधन द्वारा अनेक प्रकार के निरोधात्मक एवं सुधारात्मक साधनों की उपलब्धि करना, जो उसमें अपराधिता को जन्म देती हैं।

1.5.1 जेल

जेल प्रौढ़ो के लिए सुधारात्मक संस्थान है। इसके क्रम में केंद्रीय एवं स्थानीय जेल निहित है। भारत में अपराधी के अपराध को जाँचने-परखने एवं दंड के लिए The Indian Penal code (1880) , The code of Criminal procedure (at 1898, Revised in 1973) और The Indian Evidence act (1872) का उपयोग किया जाता है। विद्वानों का मानना है कि यह बहुत पुराने हैं। जेलों के रखरखाव के मेन्युएल्स भी बहुत आदिम है। 1960 में इसके मेन्युएल्स में परिवर्तन लाया गया है, जिसे All India jail manual committee निर्धारित करती है।

सुधार के स्वरूप को अपनाते हुए जेलों में अनेक प्रयोग किए गएहैं, जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं-

1. खुली जेल (Open Prison)
2. परिवीक्षा (Probation)
3. कारावास अवकाश (Parole)

यह जेल सामान्य जेलों से अलग होते हैं। खुले जेलों में स्वच्छंद जीवन को रोकने के लिए दिवारें,ताले नहीं होते। इन जेलों में प्रशासन विश्वास पर चलता है। इन जेलों में रहने वाले बंदीगृहों में अपराधियों में आत्म-संयम की भावना उत्पन्न हो जाती है। इसलिए वे अपने साथियों के प्रति उत्तरदायित्व का व्यवहार अपनाते हैं। वैसे ही परिवीक्षा एक ऐसी पद्धति है जिसमें दंड का निष्पादन न करके अपराधी को सशर्त निलंबित रखा जाता है तथा अपराधी को परिवीक्षा अधिकारी की देख-रेख में सुधारने का अवसर प्रदान किया जाता है। अगर परिवीक्षाधीन अपराधी इस अवधि में शर्तो का उल्लंघन करता है तो उसके निलंबित दंड को उसपर लागू किया जाता है या अवधि को बढ़ाया जाता है। कारावास अवकाश अपराधियों के पुनर्वास संबंधी एक पद्धति है, जिसका लक्ष्य अपराधी को समाज में सामान्य व्यक्तियों की प्रतिस्थापित करना है।, जो अपराधी जेल के भीतर अच्छा व्यवहार करते हैं तथा, जिनमें सुधार के चिह्न दिखाई देते हैं, उन्हें कुछ सजा काटने के बाद सशर्त मुक्त किया जाता है।

जेल सरकार द्वारा संचालित वह संस्था है जिसमें अपराधियों को दंड देने, उनका सुधार करने तथा समाज की रक्षा करने के लिए रखा जाता है। अपराधों के निवारण, समाज से अपराधियों की संख्या कम करने तथा अपराधी सुधार में जेल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जेलों द्वारा आयोजित प्रमुख सुधार कार्यक्रम अथवा गतिविधियाँ निम्नलिखित हैं-

1. मनोरंजनात्मक गतिविधियाँ
2. शैक्षिक सुविधाएँ

3. पंचायत व्यवस्था तथा सहभागी प्रबंधन
4. पुनर्वास
5. योग एवं मनन
6. कानूनी सहायता
7. विशिष्ट न्यायालय या लोक अदालत आदि

जेल के कैदियों के साथ सुधारात्मक प्रतिवेश (correctional setting) की जरूरत होती है जिसे एक बृहत वैश्विक मानव अधिकार के परिप्रेक्ष्य में देखना पडेगा। यु.एन. चार्टर में राज्य नीतियों के निर्देशक तत्व और मुलभूत अधिकारों की बात रखीगई है। इसे अपराधिक न्याय व्यवस्था की वास्तविकता के साथ, जोड़कर देखना पड़ेगा। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य अपराधियों की जेल में एक बड़ी जनसंख्या को किसी भी प्रकार का शिक्षण, प्रशिक्षण, और कार्यक्रम आयोजन के अंतर्गत उनकी सृजनशीलता को बढ़ावा देकर सहायता करता है।

1.6 बाल अपराध

बाल अपराध एक सामाजिक समस्या के रूप में समाज की सबसे बड़ी समस्या हो सकती है, क्योंकि बच्चे देश के भविष्य होते हैं। ऐसे में देश का भविष्य माने जाने वाले बच्चे किशोर अगर आपराधिक पृष्ठभूमि से हो तो देश की सामाजिक परिस्थिति खतरे में पड़ जाएगी। ऐसे में बाल अपराध को एक अलग दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता महसूस होती है।

गिलीन एवं गिलीन (GilinandGilin)के अनुसार –"समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक अपराधी या किशोर वह होता है, जिसके कार्य को समूह द्वारा गिरा हुआ समझा जाता है और जो हानिकर होने के नाते निषिद्ध है."

रैकलस (reckless)के अनुसार –"बाल अपराध शब्द आपराधिक-संहिता के उल्लंघन पर अथवा व्यवहार संरूपण के उस अनुसरण पर लागू होता है जिसे बच्चों या वयस्कों द्वारा अच्छा नहीं समझा जाता है।"

अमेरिका में *'राष्ट्रीय परिवीक्षा समिति'*(Nationalprobation Committee) ने बाल अपराधी की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है-

बाल अपराधी वह है, जिसने-

1. किसी प्रांत अथवा इसके क्षेत्र के कानून अथवा मान्यता का उल्लंघन किया हो
2. जो सुधार से परे, उदंड तथा अवज्ञाकारी हो और अपने माता-पिता, संरक्षक अथवा कानून अधिकारियों के नियंत्रण से परे हो
3. जिसको स्कूल से अनुपस्थित रहने की आदत पड़गई हो
4. जो इस प्रकार का व्यवहार करता हो, जिसमें जानबूझकर स्वयं उसकी या अन्य व्यक्तियों की नैतिकता अथवा स्वास्थ्य को हानि पहुँचती हो।

बाल अपराध का उनके कृत्यों के आधार पर वर्गीकरण किया गया है, जिसमें लोवेल जे. कार (Lowell J. Carr) का बाल अपराधियों के संबंध में किया गया वर्गीकरण महत्वपूर्ण है

1. किसी किशोर न्यायालय द्वारा दोषी पाए गए बाल अपराधी
2. किसी समाज-विरोधी व्यवहार के लिए किशोर न्यायालय के सम्मुख पेश किए गए बाल अपराधी
3. किसी संस्था द्वारा समाज-विरोधी व्यवहार करने के लिए दंडित बाल अपराधी
4. समाज-विरोधी व्यवहार के लिए किसी संस्था के सम्मुख पेश किए गए बाल अपराधी
5. समाज-विरोधी व्यवहार करने की प्रवृत्ति वाले बाल अपराधी
6. कानून द्वारा निर्धारित आयु के समस्त बाल अपराधी

बाल अपराध सुधारात्मक सेवाओं के क्षेत्रों में से एक है जिस पर तत्काल ध्यान देना आवश्यक है। भारतीय दंड संहिता के अनुसार बाल अपराधी को उम्र के आधारपर व्याख्यायित किया गया है। 7 वर्ष से 21 वर्ष पहले नियत किया गया था, जो फिलहाल 18 वर्ष पर सीमित किया गया है। बाल अपराध बच्चों द्वारा अनौपचारिक तरह से किया गया आपराधिक व्यवहार या असामाजिक कृत्य के रूप में परिभाषित किया जाता है। बाल अपराध के मुख्य कारणों में आम तौर पर परिवार से बच्चों का वंचित होना, तीव्र समाज-आर्थिक परिवर्तनों के दबाव में व्यक्ति और परिवारों का शहरों की ओर पलायन, शहरों के अगल-बगल बसने वाली मलीन बस्तियों के उभार के साथ बच्चे अधिक तर इस मामले में भेद्यतापूर्ण (Vulnerable) बनते जा रहें हैं। बाल अपराधियों की इजी मनी की लालसा, साहसिकता एवं मौज, और प्रेम की उत्तेजना आदि रास्ते इन्हें अपराध तक पहुँचाते हैं। वंचन की स्थिति में बाल्यावस्थामें सामाजिक उद्रेक को बढ़ावा देती है, जिसके कारण मनोवैज्ञानिक एवं मानसिक दबाव पैदा होता है इसका सीधा संबंध अपराध से है। बाल अपराध के प्रमुख कारक और कारण निम्नवत हैं-

Table 1बाल अपराध के कारक और कारण

पारिवारिक कारक	शारीरिक एवं व्यक्तिगत कारक	मनोवैज्ञानिक कारक	सामुदायिक कारक	आर्थिक कारक
टूटे हुए परिवार	शारीरिक असमान्यताएँ	मानसिक हीनता	बुरा पड़ोस	निर्धनता तथा पराश्रयता
मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नष्ट परिवार	शारीरिक दोष	संवेगात्मक संघर्ष और स्थिरता	स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन का अभाव	व्यापार चक्र
भौतिक दृष्टि से नष्ट परिवार	बीमारी	कम बुद्धिवाले	स्कूल की परिस्थिति	बेरोज़गारी
दुर्व्यसनी परिवार	वंशानुक्रम या पैतृकता		नगरीकरण	निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति
अपराधी प्रतिमानों वाले परिवार	अपूर्ण आवश्यकताएँ		आपत्तिजनक साहित्य	
माता-पिता का शून्य व्यवहार			अपराधी क्षेत्र	
अनैतिक परिवार			युद्ध	
सामाजिक प्रशिक्षण का अभाव				
परिवार में निर्धनता				
छोटा घर तथा गोपनीयता का अभाव				

ज्ञान शांति मैत्री

(स्त्रोत: महाजन ध., महाजन, कमलेश: अपराधशास्त्र पृ. 107-14.)

बाल अपराधी तीव्र गति से आने-वाले परिवर्तनों के दबाव में जीवन यापन कर रहें परिवारों एवं इन सामाजिक परिस्थितियों के शिकार हो जाते हैं। बाल अवस्था में अपरिपक्वता, कानून की अज्ञान होने के कारण उत्तेजित व्यवहार आकस्मिक रूप से अपराध में बदल जाते हैं। ऐसे में दंड उचित नही होगा, लेकिन उनके चारित्रिक पुनर्गठन के लिए सुधारों की आवश्यकता है। ऐसे में सामाज कार्य का यह उत्तरदायित्व है कि बाल अपराधियों को यथोचित, वांछित विकास में सेवा, सदस्यता प्रदान करें।

1.6.1 बाल अपराधी सुधार कार्यक्रम

भारत में बाल अपराध की रोकथाम एवं उपचार के लिए स्वातंत्र्य पूर्व समय से ही कदम उठाए जा रहें हैं। 1883 में डॉ. बुइस्ट (Dr. Buist) द्वारा मुंबई में सबसे पहले सुधारात्मक स्कूल बाल अपराधियों के लिए खोला गया, जो आज भी 'द डेविड ससुन इंडस्ट्रियल स्कूल के नाम से जाना जाता है और अपनी तरह का भारत में एक ही संगठन हैं। 1876 में सुधार स्कूलों के लिए कानूनी व्यवस्था की गई, जो बाद में 1897 में The Indian Reformatory SchoolsAct के रूप में पारित की गई। इसके अनुसार मुंबई में 16 वर्ष से कम और अन्य जगहों पर 15 वर्ष से कम अपराधी बच्चे सुधार स्कूल में भेजे जा सकते थे। स्वतंत्रता के बाद बाल अपराधियों के प्रति सरकार अधिक सतर्कता से काम करने लगी, किंतु वह भी केवल अधिनियमों तक ही सीमित था। संस्थागत रूप में बाल अपराधियों के सुधार के लिए **बोर्स्टल स्कूल, सुधार स्कूल, बाल बंदीग्रह, रिमांड होम, प्रमाणित स्कूल, बाल सलाह केंद्र, बाल क्लब, फोस्टर होम, प्रोबेशन हॉस्टल तथा किशोर न्यायालय** आदि के अंतर्गत बाल अपराधियों पर नियंत्रण रखा जाता रहा है।

भारत में 1974 में बाल नीति को सरकार ने अपनाया है और उसी आधार पर बच्चोंकी सहायता के लिए सरकारी यंत्रणा काम भी कर रही है। बाल अपराधियों के सुधार हेतु बाल न्यायालयों की स्थापना एवं सुधारगृह जैसी संरचनाओं को खड़ा किया गया है। बाल न्यायालयों को अपने निर्णय देने में बड़े विवेकाधिकार प्राप्त होता है। सामान्य न्यायालय मुकदमों को यह रद्द कर सकता है, बालक तथा उसके माता-पिता को चेतावनी दे सकता है या उन पर जुर्माना लगा सकता है। बालक को किसी सुधार कार्य करने वाली संस्था की देखरेख में रहने का आदेश दे सकता है या बाल सुधार संस्थाओं में रखे जाने का निर्णय दे सकता है।

सन 1986 में किशोर न्याय अधिनियम पारित किया गया, यह अधिनियम उपेक्षित या अपराधी किशोरों की देखरेख, संरक्षण, उपचार विकास और पुनर्वास तथा बाल अपराधियों से संबंधित विषयों के न्याय निर्णयन का और आवास आदेश (Disposition) का उपबंध करना आदि कार्य इस अधिनियम में अंतर्गत आता है। इसमें बाल अपराधी ऐसे किशोर को कहा गया जिसने कोई अपराध किया है। बाल से अभिप्राय ऐसा लड़का जिसने 16 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है अथवाऐसी लड़की, जिसने 18 वर्ष की

आयु पूर्ण नहीं की है। यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर को छोडकर संपूर्ण देश में लागू हैं। इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य हैं-

1. संपूर्ण देश में किशोर न्याय का एकरूप न्यायिक ढाँचा स्थापित करना, जिससे किसी भी परिस्थिति में कोई भी बालक कारागार या पुलिस थाने में न रखा जाए। यह किशोर न्यायालय एवं किशोर कल्याण बोर्डों की स्थापना कर आश्वस्त किया जा रहा है।
2. किसी भी सामाजिक असमायोजन की परिस्थिति में बालक के विकास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बाल अपचार के समस्त स्वरूपों के निरोध एवं उपचार केलिए एक विशिष्ट दृष्टिकोण को स्थापित करना।
3. किशोर न्याय व्यवस्था के अंतर्गत आने वाले विभिन्न वर्गों के बालकों के संरक्षण, देखभाल, उपचार, विकास एवं पुनर्वास के लिए आवश्यक यंत्रों एवं ढाँचे के स्वरूप का निरूपण करना है। यह संप्रेषण किशोर एवं विशिष्ट गृहों की स्थापना द्वारा प्रदान किए जाने का प्रयास किया जाएगा।
4. छानबीन, गिरफ्तारी, न्यायिक प्रक्रिया, दंड के विकल्पों, संरक्षण, देखभाल, उपचार एवं पुनर्वास से संबंधित मानकों एवं मानदंडों को स्थापित करके किशोर न्याय व्यवस्था के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना।
5. किशोर न्याय की औपचारिक व्यवस्था तथा उन स्वैच्छिक संस्थाओं के बीच उपयुक्त तालमेल एवं समन्वय स्थापित करना, जो उपेक्षित अथवा सामाजिक कुसमायोजन से ग्रसित बालकों के लिए काम कर रही है।
6. किशोरों से संबंधित विशिष्ट अपराधों को निश्चित कर उनके लिए उपयुक्त ढंग का प्रावधान करना, तथा
7. देश में किशोर व्यवस्था तथा किशोर न्याय के क्रियान्वयन को संयुक्त राष्ट्र संघ के न्यूनतम मानक नियमों के अनुरूप बनाना।

सन 2000 में किशोर न्याय (बच्चों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 और संशोधन अधिनियम, 2006 को पारित किया गया। यह एक व्यापक कानून है, जो बच्चे की संवृद्धि और विकास के लिए न्याय और अवसरों की व्यवस्था करता है। यह अधिनियम भारतीय संविधान के प्रावधानों तथा राष्ट्र संघ बाल अधिकार सम्मेलन के चार मुख्य अधिकारों पर आधारित है।

यह अधिनियम विकास संबंधी जरूरतों की पूर्ति द्वारा उचित देखरेख, संरक्षण और उपचार की व्यवस्था करके और बच्चों के सर्वोत्तम हित में और उनके अंतिम पुनर्वास के लिए मामलों के अधिनिर्णय और व्यवस्था के मामले में बाल-मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण अपना कर विधि के उल्लंघन की स्थिति में आए किशोरों और देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करता है। यह अधिनियम राष्ट्र संघ बाल अधिकार सम्मेलन; किशोर न्याय के प्रशासन के लिए राष्ट्र संघ के मानक न्यूनतम नियमों (बीजिंग नियमावली) 1985, स्वतंत्रता से वंचित किशोरों के संरक्षण के लिए राष्ट्र संघ

नियमावली 1990; तथा अन्य सभी प्रासंगिक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संधियों और सम्मेलन से सुसंगत है। साथ ही यह बालकों और बालिकाओं के18 वर्ष से कम की एकरूप आयु से निम्न आयु का होने पर बच्चों के रूप में मान्यता देता है। इस अधिनियम की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह किसी व्यक्ति के अधिकारों की उस मामले में रक्षा करता है जब उसके बच्चा होने पर उसके साथ कोई घटना घटी हो और इस दौरान वह बच्चा न रहा हो और उसकी आयु 18 वर्ष से अधिक हो गई हो।

इस अधिनियम में किशोर अपराधी और उपेक्षित बच्चे के बीच स्पष्ट भेद किया गया है। इसका उद्देश्य किशोर न्याय परिषदों और बाल कल्याण समितियों की, तथा प्रेक्षण गृह और विधि का उल्लंघन करने वाले बच्चों के लिए विशेष गृह और देखरेख व संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों के लिए बाल गृहों और आश्रय गृहों सहित विभिन्न प्रकार के गृहों की स्थापना करके दोनों वर्ग के बच्चों को न्यायऔर अवसर उपलब्ध कराना है। यह अधिनियम दत्तक-ग्रहण, पोषण, देखरेख, स्पॉसरशिप आदि जैसी गृह आधारित गैर-संस्थागत देखरेख के माध्यम से एक कानूनी पुनर्वास और सामाजिक पुनःएकीकरण (Reunification) का ढाँचा तैयार करता है।

किशोर न्याय (बच्चों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 को 2006 में संशोधित किया गया था। संशोधनों का उद्देश्य पिछले अधिनियम को अधिक विस्तृत बनाना है और देश में उसके कार्यान्वयन का विस्तार करना था। इन संशोधनों का संबंध मुख्यत इन पहलुओं से है शीर्षक, परिभाषाएँ, कुछ अभिव्यक्तियों को हटाना, किशोर न्याय बोर्डों और किशोर कल्याण समितियों के गठन के लिए निर्धारित समय, किशोर होने का दावा, देखरेख और संरक्षण के ज़रूरतमंद बच्चों और विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों के मामलों को निबटाने की कार्य-प्रक्रियाएँ, आदि। यह संशोधित अधिनियम पहली बार "दत्तक ग्रहण' की परिभाषा स्पष्ट रूप से प्रदान करता है और इसने बाल भिखारियों, गलीकूचों के बच्चों, कामकाजी बच्चों को इस वर्ग में शामिल करके देखरेख और संरक्षण के ज़रूरतमंद बच्चों के दायरे को और व्यापक बनाया है। यह अधिनियम राज्य को हर ज़िले के लिए एक किशोर न्याय बोर्ड, बाल कल्याण समिति और एक विशेष किशोर पुलिस इकाई के गठन का आदेश देता है। किशोरों के मामलों के निबटरों में विलंबों के मुद्दे को हल करने के लिए यह अधिनियम यह विहित करता है कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट हर छह महीने पर बोर्ड के सम्मुख मामलों में विलंब की समीक्षा करेगा और परिषद को अपनी बैठकों की बारंबारता को बढ़ाने का आदेश देगा या वह अतिरिक्त परिषदों का गठन भी करा सकता है। यह किशोरों के मामलों से निबटते समय बाल-मैत्रीपूर्ण कार्य-प्रक्रियाएँ अपनाने पर बल देता है।

अधिनियम यह निर्देशित करता है कि विधि का उल्लंघन करने वाले किसी किशोर या देखरेख और संरक्षण के ज़रूरतमंद किसी बच्चे के बारे में किसी समाचास्पत्र, पत्रिका, दृश्य माध्यम में किसी भी रिपोर्ट में नाम, पता या विद्यालय का नाम, फोटो या कोई भी ऐसे विवरण नहीं दिया जाएगा, जिनसे किशोर या बच्चे की पहचान हो सके।

(किशोर न्याय (बच्चों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 को 2006 के संबंध में अधिक जानकारी के लिए देखें-
http://indiacode.nic.in/indiacodeinhindi/2006/Juvenile%20Justice%20%20(A)%20Act,%202006.pdf)

भारत की राजधानी दिल्ली में दिसंबर 2012 को हुए निर्भया बलात्कार कांड के बाद देश में अपराधिक मामलों में नाबालिगों की आयु को लेकर खासा विवाद उत्पन्न हुआ था। इसके पीछे मुख्य कारण इस घिनौने और निर्मम हत्याकांड को अंजाम देने वाले मुख्य आरोपी का नाबालिक होना था। निर्भया कांड के 'नाबालिग' दोषी की रिहाई पर देश में उठी तमाम बहसों के बाद जुवेनाइल जस्टिस बिल 22 दिसंबर 2015 को राज्यसभा में पारित हो गया. निर्भया कांड के दोषी 'नाबालिग' की रिहाई के बाद आक्रोशित हुई जनता के दबाव में आकर लोकसभा तथा राज्यसभा में भी किशोर न्याय अधिनियम (बाल देखभाल और संरक्षण), 2015 पास कर दिया गया. अधिनियम पास हो जाने से अब जघन्य अपराध करने वाले 16-18 आयुवर्ग के बच्चों पर वयस्कों की तरह मुकदमा चलाए जाने का रास्ता साफ हो गया। हालांकि उन्हें सजा 21 साल की उम्र के बाद ही दी जा सकेगी। इस अधिनियम ने मौजूदा किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की जगह ली है। किशोर न्याय अधिनियम (बाल देखभाल और संरक्षण), 2015 अधिनियम के कुछ प्रमुख प्रावधान निमन्वत हैं-

- इसके तहत ऐसे नाबालिग, जिनकी उम्र 16 साल या उससे ज़्यादा है और उसकी संलिप्तता किसी गंभीर अपराध में पाई जाती है तो उन्हें बालिग मानकर मुकदमा चलाया जाएगा और उसी हिसाब सजा का प्रावधान भी होगा. इसके अलावा जुवेनाइल जस्टिस बोर्ड को नाबालिगों को नियमित अदालत ले जाने या सुधार केंद्र भेजने का फैसला लेने का अधिकार मिलेगा. मौजूदा किशोर न्याय अधिनियम के तहत सिर्फ तीन साल की सजा का प्रावधान है.
- अधिनियम में हर जिले में जुवेनाइल जस्टिस बोर्ड और बाल कल्याण समिति का गठन करने का प्रावधान किया गया है.
- बिल पारित होने के बाद 16 या उससे अधिक उम्र के नाबालिगों के जघन्य अपराधों में शामिल होने की स्थिति में उनके खिलाफ बालिग के हिसाब से मुक़दमा चलाने का निर्णय जुवेनाइल जस्टिस बोर्ड लेगा
- हर जिले की बाल कल्याण समिति ऐसे नाबालिगों की संस्थागत देखभाल करेगी हर समिति में एक अध्यक्ष और चार सदस्य होंगे, जो बच्चों से जुड़े मामलों के विशेषज्ञ होंगे
- अधिनियम के तहत बच्चों के गोद लेने की प्रक्रिया को भी विधिसम्मत बनाया गया है. साथ ही गोद लेने वाले अभिभावकों की योग्यता भी तय की गई है सेंट्रल एडॉप्शन रिसोर्स एजेंसी

(सीएआरए) गोद लेने की प्रक्रिया से जुड़े नियम बनाएगी, जिसे हर जिले में लागू करवाने की ज़िम्मेदारी बाल कल्याण समिति की होगी.

अत: वर्तमान में 15 जनवरी, 2016 से भारत में यह कानून लागू हो गया है, जिसके अंतर्गत अपराधिक मामलों में नाबालिग आयु 16 वर्ष कर दी गई है।

1.7 समाज कार्य और अपराधी सुधार सेवाएँ

अपराधशास्त्र के बदलते स्वरूप में अपराध के निरोध, नियंत्रण एवं उनके पुनर्वास के लिए केवल दंड ही काफ़ी नहीं है इसके अलावा उन्हें उपचार और सुधार की आवश्यकता होती है। भारत में अपराध की स्थितियों को देखकर लगता है कि इन पर कोई कारगर उपाय नहीं किए जा रहें हैं।NCRB के 2014 के आंकड़ों पर नज़र डाले तो इसमें लगातार वृद्धि दिखाई दे रही है। वयस्क अपराध के साथसाथ बाल अपराध की स्थिति भी बिगड़ती हुई नज़र आती हैं। ऐसे में अपराध निरोध हेतु समाज में लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास ज़रूरी है। समाज कार्य के अंतर्गत वैयक्तिक सेवा प्रणाली के अंतर्गत अपराधी को एक व्यक्ति के रूप में समाज में समायोजन की वकालत करता है ऐसे में एक वैयक्तिक सामाजिक कार्यकर्ता की यह ज़िम्मेदारी है कि वह अपराधियों के उपचार एवं पुनर्वास हेतु कार्यक्रम तैयार करे और व्यक्तिगत स्तर पर उसे मदद मुहैया करें।

भारत में अपराधियों की बढ़ती संख्या को नज़र में रखते हुए प्रत्येक अपराधी को व्यक्तिगत तौर पर सेवा दिलाना असंभव लगता है। समाज कार्य से जुड़े विद्वानों का मानना है कि ऐसे समाज कार्य समूह या समुदाय आधारित सेवाओं का सहारा ले सकता है। इसी कारण आज जेलों में भी समुदाय आधारित सुधार पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाने लगा है। अपराधियों के मानवीय अधिकारों की सुरक्षा हेतु वकालत आदि कार्य समाज कार्य के अंतर्गत किए जाने लगे। संस्थागत ढाँचे में अपराधियों के पुनर्वास के लिए उनको शिक्षण, प्रशिक्षण आदि की आवश्यकता को महसूस किया जाने लगा फलस्वरूप आज के जेलों में हम व्यावसायिक प्रशिक्षणों को देख सकते हैं। विभिन्न संस्थाओं(रिमांड होम, परिवीक्षा गृह, सुधार स्कूल, सामान्य जेल, खुले जेल) में सामाजिक कार्यकर्ता अधीक्षक के रूप में सेवारत हैं। इन संस्थागत क्रियाकलापों के बावजूद उनके अनुरक्षण, सामाजिक सुरक्षा, मानवीय अधिकार तथा पुनर्वास को लेकर वकालत करने का कार्य भी समाज कार्य ने बखूबी किया है। अपराध के क्षेत्र में कार्यरत सामाजिक कार्यकर्ताओं के अपराधशास्त्र से संबंधित ज्ञान आवश्यक है इसमें से कुछ निम्नवत है-

1. विचलित व्यवहार का ज्ञान
2. अपराध के कारणों का ज्ञान
3. अपराध निरोध के तरीकों का ज्ञान
4. अपराधी प्रवृत्तियों का ज्ञान
5. समाज विरोधी व्यवहार का ज्ञान
6. अपराधी के मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि का ज्ञान

उक्त ज्ञान का उपयोग कर सामाजिक कार्यकर्ता अपराधियों के निरोध, उपचार तथा पुनर्वास का कार्य बेहतरी से करता है।

1.8 सारांश

जैसा कि हमने देखा अपराधशास्त्र किसी खास विषय के विशेषज्ञ का क्षेत्र नहीं रहा हैं इसलिए कुछ विद्वान ऐसा भी कहते है कि अपराधशास्त्री ऐसा राजा होता है जिसका कोई साम्राज्य नहीं हैं। ऐसे में विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ आपसी सहमति से अपराधियों के उपचार, विकास और पुनर्वास के लिए कार्य करते हुए देखे जा सकते हैं। समाज की प्रत्येक चिंता पर सोचना और उसके लिए बेहतर उपायों को ढूँढने का कार्य, समाज कार्य में लगातार होता है। अपराध और अपराधी की समस्या भी कुछ ऐसी ही समस्या है, जिसके प्रति समाज कार्य बहुत पहले से चिंतित दिखता है। किंतु भारतीय परिदृश्य में जेलों के प्रायोगिक सुधार, अधिनियम बनाना आदि संस्थागत कार्यों, जो केवल राज्य के अंतर्गत आते हैं इनके अलावा अपराधियों के लिए स्वैच्छिक सेवाओं का दायरा अभी भी खाली दिखता है। इसका यह भी एक कारण हो सकता है कि अपराध जैसा मामला ज़्यादातर कानून या राज्य से संबंधित माना जाता है। ऐसे में नागरिक समूहों के लिए जगह कम ही बचती है। हाल-फिलहाल में जेलों में भी मनोवैज्ञानिकों की नियुक्ति की जा रही हैं। सामाजिक कार्यकर्ता अपराधी सुधार प्रशासन के अंतर्गत इन सुधार संस्थाओं में काफ़ी पहले से सेवा प्रदान कर रहें हैं, किंतु वे भी एकदम कानूनी तौर पर लगती है। ऐसा लगता है जेल के प्रशासन ने ही उनको बदल दिया।

बहरहाल बाकी विकसित देशों की तुलना में आज भी भारत में अपराधियों को बहुत ही हीन नज़र से देखा जाता है। यही कारण है कि जो एक बार अपराधी बन जाता है वह फिर से समाज में समायोजित नहीं हो पाता, क्योंकि वह समाज उसको इसकी अनुमति नहीं देता। ऐसे मेंअपराधियों के प्रति सामान्य समाज के मन में, जो प्रतिमा हैं, उसको ठीक करना समाज कार्य का प्रथम दायित्व है। क्योंकि अपराध को केवल कानूनी रूप में देखना उनके सुधार को गलत दिशा प्रदान कर सकता है इसलिए यह होना चाहिए कि अपराधी को सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक नज़रिए से देखना होगा और यह कार्य समाज कार्य के अंतर्गत बखूबी किया जाता है। इसलिए अपराध के क्षेत्र में सामाजिक कार्य अपनी भूमिका बेहतरी से निभा सकता हैं।

1.9 बोध प्रश्न

1. अपराधशास्त्र की अवधारणा को स्पष्ट करें।
2. अपराध और अपराधशास्त्र का संबंध स्पष्ट करें।
3. बाल अपराध को स्पष्ट करते हुए उसके कारणों पर चर्चा करें।
4. बाल अपराधियों के सुधार संबंधी क्रियाकलापों पर चर्चा करें।
5. जेलों में अपराधी सुधार पर चर्चा कीजिए।
6. भारत के संदर्भ में बाल न्याय अधिनियम में आए परिवर्तनों पर चर्चा करें।

1.10 संदर्भ एवं अन्य पुस्तकें

आहुजा, आर., & आहुजा, एम. (2008). *विवेचनात्मक अपराधशास्त्र* (पुनर्प्रकाशित ed.). नई दिल्ली: रावत प्रकाशन.

कुमार, जी. (2013). *समाजकार्य के क्षेत्र*.लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

महाजन, डी., &महाजन, के. (2010). *अपराधशास्त्र*.दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

मिश्र, पी. (2013). *सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य* (8th ed.). लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

शास्त्री, आर. (2015). *समाजकार्य* (9th ed.). लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई : 02 चिकित्सकीय एवं मनोचिकित्सकीय सेवाएँ

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 स्वास्थ्य सेवा प्रणाली का सिंहावलोकन
  2.2.1 भारत की स्वास्थ्य प्रोफाइल
2.3 चिकित्सकीय समाज कार्य
2.4 चिकित्सकीय समाज कार्य सेवाएँ
2.5 चिकित्सालय में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका
  2.5.1 बाह्य रुग्ण विभाग (OPD)
  2.5.2 अन्त: रोगी विभाग (Ward)
  2.5.3 गहन चिकित्सा इकाई (ICU)
  2.5.4 चिकित्सकीय समाज कल्याण इकाई
2.6 मनोचिकित्सकीय समाज कार्य
  2.6.1 वैयक्तिक मनोचिकित्सकीय समाज कार्य
  2.6.2 समूह में मनोचिकित्सकीय समाज कार्य
  2.6.3 अन्य गतिविधियां
2.7 सारांश
2.8 बोध प्रश्न
2.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य :

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. चिकित्सकीय समाज कार्य की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. मनोचिकित्सकीय समाज कार्य की व्याख्या कर सकेंगे।
3. भारतीय संदर्भ में चिकित्सकीय एवं मनोचिकित्सकीय सेवाओं के परिदृश्यको रेखांकित कर सकेंगे।
4. चिकित्सकीय एवं मनोचिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे;

2.1 प्रस्तावना:

सुदृढ़ शरीर ही व्यक्ति की वास्तविक संपत्ति होती है। इससे तात्पर्य है कि इस संपत्ति को प्राप्त करने के लिए विशेष देख-भाल की आवश्यकता होती है। अगर शरीर निरोगी नहीं है तो उसके लिए सारी सुविधाएँ

ज्ञान शांति मैत्री

निरर्थक होगी। व्यक्ति का शरीर जब कमज़ोर होता है तब मनुष्य अस्वस्थता का शिकार होता है, जिससे उसके स्वास्थ्य में तब्दिली आ जाती है। स्वास्थ्य केवल शरीर तक सीमित नहीं है, बल्कि मानसिकता, सामाजिकता भी उसमें निहित होती है। व्यक्ति की स्वस्थता के लिए उसके आसपास का परिवेश उतना ही ज़रूरी है, जितना की उसकी मानसिकता।एक स्वस्थ समाज के निर्मिति के लिए ज़रूरी है कि उस देश की जनसंख्या रोगमुक्त एवं सशक्त रहें। विज्ञान की प्रगति के आधार पर आज हम मानवीयय बीमारियों को अच्छी तरह से पहचान कर पा रहे हैं साथ ही उनका उपचार भी उपलब्ध है। किंतु अब इससे आगे बढ़ने का समय है। जैसा कि कहते है 'उपचार से रोकथाम अच्छा है' (Prevention Better than Cure)। इस जुमले की तरह आज चिकित्सा केवल रोगों के उपचार तक सीमित नहीं रही है, बल्कि वह रोगों के रोकथाम तक पहुंच गई है। बावजूदइसके विश्व की सभी जगहों पर एक समान स्थितियाँ नहीं होती। जहां एक ओर अवयव पुनर्स्थापना की बात हो रही है वहीं दूसरी ओर कोई केवल बुखार के कारण मृत्यु प्राप्त कर रहा है। इसलिए समानता के आधार पर ही चिकित्सा एवं मनोचिकित्सा सेवाओं का बंटवारा होना चाहिए और इस समानता को स्थापित करने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता बहुतज़रूरी है। आर्थिक स्वतंत्रता वह कारक है, जो स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच बनाने में मदद करता है।

इस पूरे इकाई में हम भारतीय संदर्भ में चिकित्सा एवं मनोचिकित्सा सेवाओं पर बात करेंगे। स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए भारत जैसे समाज में विभिन्न प्रणालियाँ उपलब्ध है बावजूद इसके उन तक पहुँच, समझ और उचित मार्गदर्शन के अभाव में आज भी जनसंख्या का एक बड़ा तबका वैद्य, हकीम जैसे पारंपारिक प्रणालियों को अपनाने के लिए मजबूर है। साथ ही अस्वच्छ वातावरण,पानी तथा सनिटेशन के अभाव में कईयों परिवार रोग-संसर्ग तथा महामारी का शिकार हो रहे हैं। व्यक्तिगत स्वास्थ्य के साथ-साथ सामुदायिक स्वास्थ्य भी बहस का मुद्दा है।

2.2 स्वास्थ्य सेवा प्रणाली का सिंहावलोकन

भारतीय इतिहास में हम देखते है कि मानवीय स्वास्थ्य को लेकर उस समय में लोग कितने सजग थे। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, आयुर्वेद के रूप में इसके साक्ष्य भी हमें मिलते हैं। दूसरी ओर एक तबका व्यक्ति के बुरे स्वास्थ्य को दैवी प्रकोप, भूतबाधा, पापों का परिणाम, साधु महात्माओं का प्रकोप या शाप का परिणाम मानता गया इसलिए इनके सामने अच्छे स्वास्थ्य प्राप्ति की भ्रामक संकल्पनाएँ पाई जाती हैं, जैसे- झाड़-फूँक, बलि चढ़ाना, पूजा अर्चना आदि।

वर्तमान में विज्ञान के प्रचार-प्रसार के बाद चिकित्सा विज्ञान (medical science)का उभार अपनी विभिन्न उपशाखाओं के साथ हुआ। स्वास्थ्य सेवाओं के संस्थानीकरण के बाद अस्पताल जैसी संस्थाओं ने स्वास्थ्य की ज़िम्मेदारी को बखूबी वहन किया है। इसमें व्यक्ति के बुरे स्वास्थ्य को रोग (Disease) के रूप में परिभाषित किया गया। रोग के उत्पन्न होने के कारकों की खोज लगातार जारी है, क्योंकि प्रतिदिन नव-नवीन रोगों एवं महामारियों (epidemic) का प्रसार हो रहा है भूमंडलीकरण के दौर में विश्व एक गाँव की तरह बन गया है जेसै प्रत्येक चीज़ का लेन-देन बड़ी तीव्रता से हो रहा है। ऐसे में रोगों का लेन-देन भी

तीव्रता से हो रहा है इसलिए एड्स, टी.बी, जैसे संक्रामक रोगियों की संख्यालगातार बढ़ती जा रही है। रोग से तात्पर्य होता है शरीर में कुछ अवांछित लक्षणों की उपस्थिति, किंतु यह यहाँ तक सीमित नहीं होता है, बल्कि उन प्रक्रियाओं का गतिशिल समूह है,जो लक्षणों द्वारा शारीरिक रोग को उत्पन्न करता है।

व्यक्ति के शरीर में रोग उत्पत्ति करने में विभिन्न कारक सहायक होते हैं। इन कारकों की खोज लगातार जारी है। चिकित्सा विज्ञान DNA, RNA, एवं Stem Cell तक पहुँच गया है। व्यक्ति में रोग उत्पत्ति में सहायक कारकों में से कुछ इस प्रकार से हैं- जैविकीय, पोषण, रासायनिक, भौतिकीय, यांत्रिकिय, पर्यावरणीय, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, मानव व्यवहार और जेनेटिक आदि। इन कारकों में कमी या ज़्यादा होना रोग निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। रोग के कारकों एवं कारणों संबंधी जानकारी के पश्चात ही उनका निदान उपचार और पुनर्वास किया जाता है। ऐसा नहीं है कि केवल रोग होने के पश्चात ही चिकित्सा शुरू की जाए, इससे बचने एवं संतुलन बनाएं रखने से भी रोग का विरोध हो जाता है। इसे निवारणात्मक सेवा के रूप में देखा जाता है।

इधर हाल में विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व की 14 प्रतिशत आबादी आज दबाव एवं स्नायु-मनोचिकित्सकीय (Neuropsychiatric) बीमारीयों के प्रभाव में है इसमें से ज़्यादातर लोग निराशा की प्रकृति से संबंधित है और अन्य सामान्यमानसिक बीमारीयों, मादक पदार्थों का उपयोग, तथा मनोविकृति संबंधी अन्यबीमारियों से ग्रस्त हैं।

प्राचिन समय में मानसिक बिमारियों से ग्रस्त लोगों को भूत-बाधा, प्रेत-बाधा के रूप में देखा जाता था। इन्हे 'पागलपन' (Insanity) के रूप में भी परिभाषित किया जाता था। प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक सभ्यता के प्रत्येक युग में 'पागलपन' की अवधारणाएँ अलग-अलग रही, इसमें उस युग के सामाजिक दर्शन और तर्क पद्धति का प्रभाव देखा जाता है। पागलपन को अमेरिकन सायकियाट्रिक एसोशिएशन द्वारा पहली बार मानसिक बीमारी घोषीत किया। यहाँ तक पहुँचने के लिए अनेक विद्वानों का सहयोग रहा है। मानसिक बीमारीयों का दो तरह से वर्गीकरण मनोचिकित्सा में मिलता है। पहला मनोस्नायु विकृति इसमें दबाव, कुंठा, तनाव आदि रोगों को रखा गया है। इस प्रकार के रोग व्यक्ति के जीवन में दैनंदिन रूप से होने वाले क्रियाकलापों में अड़चन पैदा करते हैं। एक स्तर से ऊपर जाने के बाद ही इसका रूपांतरण बीमारी के रूप में होता हैं। इसलिए माना जाता है कि इससे बचने के लिए व्यक्ति अपने डिफेन्स मेकॅनिज्म और कोपींग मेकॅनिज्म का उपयोग कर संतुलन बनाता है या, जो इसकी समझ रखता हो, के द्वारा इसको हल किया जा सकता है। दूसरे प्रकार में मनोविकृति(psychosis) को रखा गया है। इस वर्ग में बायोपोलर पर्सनालिटी स्किजोफ्रेनीया जैसे मानसिक बीमारीयों को रखा गया है। इन बिमारियों से मुक्ति के लिए प्रशिक्षित मनोचिकित्सक द्वारा देख-रेख एवं विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। इन दो वर्गीकरणों के अलावा मानसिक मंदता या हीन बुद्धि और समाज विरोधी व्यक्तित्व के रूप में भी इसे देखा जाता है।

2.2.1 भारत की स्वास्थ्य प्रोफाइल

भारत को विकासशील देश के रूप में देखा जाता है। आज भी यहाँ के कई सारे लोग पारंपारिक चिकित्सा प्रणाली पर अपने स्वास्थ्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत आज भी स्वास्थ्य सेवाओं के प्रदाता के रूप में काफ़ी पिछड़ा है। वर्ष2013 के आंकड़े बताते हैं की पूरे देश में जीवन प्रत्याशित आयु 66 है, जिसमें से स्वस्थ जीवन प्रत्याशा आयु केवल 57 वर्ष बताई जा रही है। काफ़ी प्रयासों के बाद मातृ मृत्यु दर प्रति लाख व्यक्तियों में190 हुआ है। पाँच वर्ष की आयु के बच्चों का मृत्यु दर प्रति हजार में50 के आस-पास है। टी. बी. के रोगियों की संख्या प्रति लाख व्यक्तियों में 230 आँकी गई है। साथ ही मलेरिया की संख्या1523 बताई गई है।

वर्ष 2001-03 में की गई मिलियन डेथ स्टडि (Million Death Study)के अनुसार भारत में मृत्यु के कारणों की खोज की गई थी, जिसमें यह दिखाया गया है कि 38 प्रतिशत लोग संचारित बीमारियों के शिकार हुए, 42 प्रतिशत लोग असंचारित-बीमारीयों के शिकार हुए, 10 प्रतिशत लोग चोटिल या घायल होने के कारण मरे तथा बाकी 10 प्रतिशत लोग अन्य कारकों से कारण मृत हुए। इससे साफ पता चलता है कि स्वास्थ्य सुविधाओं के कमी के कारण भारत में आज भी लोगों की मौतें हो रही हैं। इसके कारणों पर बात करें तो कुछ आँकड़े समाने आ जाते हैं। उदाहरण के लिए- जैसे भारत में स्वास्थ्य वर्कफोर्स के आँकड़े कुछ इस प्रकार हैं- प्रति दस हजार लोगों पर 7 फिजीशियन कार्यरत हैं, तथा नर्स और मिडवाइफ की संख्या 17.1 बताई जा रही है। अर्थात्, लगभग 1428 लोगों पर एक फिजीशियन तथा 584 लोगों पर एक नर्स या मिडवाइफ इस समय में भारत में कार्यरत है। यह आँकड़ा सही में भारत की स्वास्थ्य दशा की दयनीयता को उजागर करता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM) के रुरल हेल्थ स्टेटिस्टिक्स-2012 के अनुसार भारत में 148366 उप-केंद्र,24049 प्राथमिक आरोग्य केंद्र और 4833 सामुदायिक विकास केंद्र कार्यान्वित हैं।

ज्ञान शांति मैत्री

2.3 चिकित्सकीय समाज कार्य:

अस्पतालों में रोगियों को मनो-सामाजिक रूप से सहायता देने के लिए चिकित्सकीय समाज कार्य का उद्भव हुआ। इसे अस्पताली समाज कार्य के नाम से भी जाना जाता है। प्रो. राजाराम शास्त्री (2015) अपनी किताब समाज कार्य में चिकित्सकीय समाज कार्य के उद्भव के चार स्तरों की बात करते हैं-

1. 1880 में इंग्लैंड में अस्पतालों से मुक्त हुए मानसिक रोगियों की उत्तरचर्या के विचार की मान्यता
2. 1890 में सर चार्ल्स एस॰ लांच द्वारा लंदन में स्वायसेवी स्वागत कार्यकर्ताओं द्वारा किया गया सेवा कार्य
3. 1893 में न्यूयार्क के हेनरी स्ट्रीट सेटलमेंट हाउस से संबंधित लिनियन वाल्ड तथा मैरीब्रीडस्ट द्वारा आर्थिक रूप से कमज़ोर बीमार व्यक्तियों की सेवा-सुश्रुषा करना

4. 1902 में बाल्टीमोर स्थित जॉन हॉपकिंन्स विश्वविद्यालय में डॉ॰ चार्ल्स पी॰ एमर्सन द्वारा चिकित्सा शास्त्र शिक्षा में सामाजिक और संवेगिक समस्या के अध्ययन की व्यवस्था करने के लिए किया गया आवेदन

उनका मानना है कि इन्हीं अनुभवों के आधार पर 1905 में चिकित्सकीय समाज कार्य की शुरुआत हुई। इस कार्य की शुरुआत एक साथ चार जगह पर लगभग एक ही समय पर शुरू हुई। वोस्टन के मैसाच्युसेट्स जनरल हॉस्पिटल, न्यूयार्क के बेलेव्यू हॉस्पिटल, बाल्टीमोर स्थित जॉन हॉपकिंन्स हॉस्पिटल तथा वोस्टन के अपंगाश्रम में सामाजिक कार्यकर्ता को स्टाफ में शामिल किया गया। ब्रिटेन में 1918 में डॉ॰ इला वेब (Dr॰ Ella Webb) द्वारा अल्मोनेर्स (Almoners) हॉस्पिटल में अस्वस्थ बच्चों के लिए डिस्पेंसरिज में चिकित्सकीय समाज कार्य का काम शुरू हुआ। 1945 में इंस्टीट्यूट ऑफ अल्मोनेर्स का स्वरूप प्राप्त किए हुए इस अस्पताल का नाम 1964 में बदलकर इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल सोशल वर्कर्स रखा गया। भारत जैसे देशों में इसका समर्थन इस बात से किया जाता है कि यहाँ डॉक्टरों की संख्या कम है और सभी मरीजों के साथ परामर्श करना संभव नहीं है, इसलिए आज भारत जैसे देशों में भी बड़े-बड़े अस्पतालों में चिकित्सकीय समाज कार्य शुरू है।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को परिभाषित करते हुए कॉलिन्स डिक्शनरी में लिखा है, *"एक ऐसी व्यक्ति, जो अस्पताल में काम करती हो और जिसका काम रोगियों और उनके परिवारों के लिए परामर्श को सुनिश्चित करना है, साथ ही छुट्टी पाए हुए रोगियों को समुदाय में उचित देखभाल प्राप्ति के लिए ज़िम्मेदार भी है।"*

दिल्ली विश्वविद्यालय के समाज कार्य से संबंध रखने वाले प्रो॰ पाठक एच एस. (1961) के अनुसार "चिकित्सकीय समाज कार्य उन रोगियों को सहायता प्रदान करने से संबधित है, जो सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारकों के कारण उपलब्ध चिकित्सकीय सेवाओं का प्रभावी उपयोग करने में असमर्थ होते हैं।"

प्रो॰ राजाराम शास्त्री (2015) के अनुसार "चिकित्सकीय समाज कार्य का मुख्य ध्येय यह होता है कि वह चिकित्सकीय सहूलियतों का उपयोग रोगियों के लिए अधिकाधिक फलप्रद एवं सरल बनायें तथा चिकित्सा में बाधक मनोसामाजिक दशाओं का निराकरण करें।'

दूसरी ओर अमेरिकन सामाजिक कार्यकर्ता संघ के अनुसार "चिकित्सकीय समाज कार्य स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय देखरेख के क्षेत्र में समाज कार्य की पद्धतियों एवं दर्शन का उपयोग एवं स्वीकरण है। चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य के ज्ञान के उन पक्षों को वर्गीकृत कर उसका विस्तृत उपयोग करता है, जो स्वास्थ्य व चिकित्सा संबंधी समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों की सहायतार्थ विशिष्ट रूप से उपयुक्त हैं।'

ज्ञान शांति मैत्री

चिकित्सकीय समाज कार्य का निहितार्थ संक्षेप में,

1. चिकित्सकीय समाज कार्य का अभ्यास क्षेत्र चिकित्सालय है।
2. चिकित्सकीय समाज कार्य का केंद्रबिंदु रोगी एवं उसके परिजन हैं।
3. चिकित्सकीय समाज कार्य का संबंध चिकित्सकीय स्थितियों एवं उपचार वाली मनोसामाजिक समस्याओं से हैं।(सिंह, पंकज कुमार पृ. 09)

संक्षेप में कहें तो स्वास्थ्य के विकास, रोग निवारण तथा उपचार के क्षेत्र में समाज कार्य की प्रणालियों व तकनीकि के उपयोग को ही चिकित्सकीय समाज कार्य कहा जाता है।

जैसे कि समाज कार्य का विश्वास है,स्वस्थ जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वास्थ्य मानव जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसके बिना व्यक्ति अन्य क्षेत्रों में कोई उपलब्धि नहीं हासिल नही कर सकता है। निर्धन रोगियों की सेवा के सिद्धांत के आधार पर चिकित्सालयों की स्थापना हुई, जो आज के आधुनिक स्वरूप तक विकसित हो चुकेहै। इसी प्रकार बाह्य रोगियों की सहायतार्थ निदानशालाओं व औषधालयों की स्थापना की गई। चिकित्सालय का प्रमुख उद्देश्य समुदाय की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं की प्रभावशाली ढंग से पूर्ति करना है। व्यक्ति चिकित्सालय में इस अपेक्षा के साथ आता है कि हर बीमारी का निश्चित एवं कम समय में इलाज उपलब्ध है। एक सामान्य व्यक्ति चिकित्सालय को हर बीमारी का उपचार समझता है। चिकित्सालय की अपनी सीमाएँ होती है यह स्थिति रोगी एवं उसके रिश्तेंदारों को स्वीकार नहीं होती हैं, उनकी माँग अधिक देखभाल एवं तुरंत उपचार की होती है। हर रोगी त्वरित देखभाल चाहता है। रोगी एवं उनके रिश्तेदार अस्पताल में कार्यरत कर्मियों से अपने प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। रोगी की गरिमा रोगी का एक महत्वपूर्ण अधिकार एवं आवश्यकता है। रोगी की उत्तम देखभाल के लिए चिकित्सालय में कार्यरत सभी लोगों के योगदान की आवश्यकता होती है। चिकित्सालय एक संगठनात्मक व्यवस्था है, जिसमें कई विभाग होते हैं , जिनकी स्वायत्त स्थिति होती है एवं उन्हें अपने कार्यों के प्रबंधन करने के तरीकों का विवेकाधिकार होता है। सबसे महत्वपूर्ण कार्य इन सभी विभागों के कार्यों में समन्वयकरके उन्हें रोगी की अपेक्षाओं के अनुरूप बनाना होता है।

यह सर्वमान्य हो चुका है कि रोगी के सुधार में औषधि जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही महत्वपूर्ण सामाजिक-मानसिक स्थितियाँ भी है। स्वास्थ्य की आधुनिक अवधारणा में चिकित्सकीय समाज कार्य चिकित्सालयों में उपचारात्मक एवं निरोधात्मक पक्ष में कार्यरत होता है साथ ही शारीरिक और सामाजिक पक्ष की अच्छी समझ से इसे बेहतर बनाने की कोशिश करता है।

2.4 चिकित्सकीय समाज कार्य सेवाएँ

विद्वानों का मानना है कि चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता द्वारा चिकित्सालय में चिकित्सकीय सेवाएँ शुद्धतम रूप में वैयक्तिक स्तर पर प्रदान की जाती है। किंतु रोग की स्थिति और रोगी की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए इसे सामूहिक या सामुदायिक रूप में भी उपलब्ध कराया जा सकता है। अंततये सारी सेवाएँ व्यक्तिगत रूप से रोगी के सुधार में ही सहायक होनी हैं। साथ ही कभी-कभी रोगी की आर्थिक निर्बलता के कारण उसकी पहुँच उन चिकित्सकीय सेवाओं तक नहीं बन रही है तो ऐसे में चिकित्सकीय समाज कल्याण इकाई के अंतर्गत उसे चिकित्सकीय सेवाओं का लाभ दिलाने में सहायता प्रदान की जाती है।

समाज कार्य में चिकित्सा प्रतिवेश (Medical setting) के अंतर्गत सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य द्वारा रोगियों की मदद की जाती है। इस प्रक्रिया को चिकित्सकीय समाजकार्य के रूप में जाना जाता है। इस प्रक्रिया में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता अस्पतालों में सेवार्थीयों को, जो कि ऐसे व्यक्ति होते हैं , जिनकी बीमारी और असमर्थता में विभिन्न प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न हो रही हो, इन्हें मनो-सामाजिक सहायता की आवश्यकता होती है। ऐसे रोगियों को समाज कार्य सहायता प्रदान करता है। चिकित्सकीय कार्यकर्ता रोग के वर्गीकरण के आधार पर सेवार्थीयों को सेवा प्रदान करता है, जैसे :-

1. अत्यंतिक बीमारी टी.बी., कुष्ठ का रोगी
2. शारीरिक रूप से विकलांग–अंधा, अपाहिज
3. अविवाहित माताएँ, मनो-शारीरिक समस्याएँ आदि
4. भौतिक आवश्यकताओं के मामले–संस्थानीकरण आदि

इन सभी मामलों में चिकित्सकीय कार्यकर्ता मामले के प्रकृति के आधार पर, कम समय से लेकर लंबी अवधी तक सेवाएँ प्रदान करता है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली इन मामलों में सीधे सेवार्थी के साथ जुड़कर सेवा प्रदान करती है। समाज कार्य की शब्दावली में इसे सीधी सेवा (Direct service) के रूप में परिभाषित किया जाता है। इन सेवाओं में से कुछ निम्नवत हैं :-

1. रोग की प्रवृत्ति का निर्वचन कर उस रोगी एवं उसके परिवार को व्यक्तिगत तौर पर उसका निहितार्थ समझाना।

2. सेवार्थी की क्षमता के शर्तों पर व्यक्तिगत सामाजिक मुल्यांकन कर उपचार कार्यक्रमों में उसकी सहभागिता तय करना तथा इसके लिए संकटकालीन समय में सेवार्थी को आवश्यक भावनीक सहयोग प्रदान करना।

3. सेवार्थी के लाभ हेतु निश्चित उपचार के लिए उसके सामर्थ्यके मानकों की आवश्यकताओं के अनुसार जब ज़रूरी हो तब पर्यावरण परिवर्तन (Environment Modification) तैयार करना।

4. पैसा, दवाईयाँ, कपड़े अभावपूर्ति आदि भौतिक माँगों को उपलब्ध करना।

5. रोगी की मनो-सामाजिक समस्या का परिवार के अन्य सदस्यों एवं जिस समाज में वह रह रहा है, में निर्वचन करना, जिससे वह उसे मदत करेंगे, जब भी उसे जरूरत हो उनके लिए नई ज़िम्मेदारियों का निर्वहन करेंगें और वह जैसा भी है, उसी रूप में स्वीकार कर लेंगे।

6. व्यवसाय एवं जॉब प्लेसमेंट के अंतर्गत पुनर्वास हेतु सेवार्थी एवं उसके परिवार के साथ मिलकर योजना बनाना।

7. उपचार के दौरान सुस्थिति ग्रहण करने तक रोगी और उसके परिवार के साथ-साथ रहना।

उक्त सीधी सेवाओं के साथसाथ चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्त्ता रोगी को उपचार पुनर्स्थापना तथा सामाजिक समायोजन, रोगों की रोकथाम एवं स्वास्थ्योन्नति में सहयोग और सेवा प्रदान करता है।

2.5 चिकित्सालय में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका

शुरुआती समय में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को चिकित्सालय में निमन्वत भूमिकाओं का निर्वहन करना होता था, जैसे-

- चिकित्सक और मरीज के बीच संपर्क स्थापित करना
- चिकित्सक और रोगी की देखभाल जारी रखने के लिए आवश्यक सामुदायिक संसाधनों के बीच संपर्क बनाए रखना
- उपचार योजना में चिकित्सक को रोगी के प्रति शिक्षित करते हुए रोगी को अनुपालन के लिए रोगी को चिकित्सक के एजेंट के रूप में सेवारत होकर प्रमोट करना

किंतु बदलते परिवेश में चिकित्सालय जैसे संस्थाओं में काफ़ी परिवर्तन आया है,जिसके अनुरूप सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका में भी काफ़ी बदलाव आया है। जैसे कि हम जानते है अस्पतालों में अलग-अलग विभाग होते हैं। जैसे- बाह्य रुग्ण विभाग (OPD), अंतःरोगी विभाग तथा गहन चिकित्सा विभाग(ICU) यह तीन विभाग ऐसे विभाग हैं, जहाँ रोगियों पर उपचार किए जाते हैं। इसके बावजूद चिकित्सकीय समाज कल्याण विभाग (Medical Social Welfare Unit) के रूप में रोगियों को चिकित्सालय में स्वीकृति, रोगियों के लिए उत्तम स्वास्थ्य सेवाओं को उपलब्ध कराना, उन सेवाओं के लिए उन्हें सक्षम बनाना तथा चिकित्सालय की सेवाओं को रोगी उन्मुख बनाना आदि सेवाएँ इस इकाई द्वारा प्रदान की जाती हैं। संक्षेप में कहें तो चिकित्सालय के बाकी तीन विभागों में रोगी का व्यवस्थित समायोजन करने का कार्य इस इकाई द्वारा किया जाता है।

2.5.1 बाह्य रुग्ण विभाग (OPD):

बाह्य रोगी विभाग चिकित्सालय का महत्वपूर्ण अंग है जिसमें नियत समय पर निर्धारित समय सारणी के अनुसार ऐसे रोगियों को सेवाएँ प्रदान की जाती हैं जिन्हें चिकित्सालय में भर्ती करने की आवश्यकता नहीं होती है। चिकित्सालय के बाह्य रोगी विभाग में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता विभाग के

संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। रोगियों की अपेक्षाओं के अनुरूप उन्हें सेवाएँ प्रदान करना सामाजिक कार्यकर्ता की मुख्य ज़िम्मेदारी होती है। सिंह, पी. के. (2015) के अनुसार इस ज़िम्मेदारी के प्रमुख पक्ष निम्नवत हैं-

1. बाह्य रोगी विभाग के सेवाओं का सुचारु रूप से संचालन करना
2. रोगियों द्वारा चिकित्सालय की सेवाओं के कुशलतम उपयोग के लिए उन्हें सहयोग प्रदान करना
3. बाह्य रोगी विभाग के व्यवस्था एवं सेवाओं को रोगियों की आवश्यकता एवं अपक्षाओं के अनुरूप संशोधित एवं संवर्धित करना

इन जिम्मेदारियों का वहन करने हेतु एवं रोगियों को उचित सेवाएँ प्रदान करने हेतु सामाजिक कार्यकर्ता विभिन्न भूमिकाओं का बेहतरी से वहन करता है जिसमें मुख्य हैं-

1. व्यवस्थापक के रूप में
2. स्वास्थ्य शिक्षक के रूप में
3. समन्वयक के रूप में

2.5.2 अंत:रोगी विभाग (Ward):

अंत:रोगी विभाग अस्पताल का महत्वपूर्ण अंग है इसमें ऐसे रोगियों को भर्ती कर सेवाएँ प्रदान की जाती हैं, जिन्हें चिकित्सक की सलाह के अनुरूप पूर्वस्थिति में आने के लिए आवश्यक माना जाता है। इस विभाग के दो मुख्य अंग होते हैं, पहला है- मेडिसिन, इसमें रोगी के उपचार में मुख्य रूप से औषधियों का प्रयोग किया जाता है तथा दूसरा- शल्य चिकित्सा (सर्जिकल), इस विभाग में रोगी का उपचार शल्य क्रिया द्वारा किया जाता है। रोगी जब अस्पताल में भर्ती होता है तो वह इसी अपेक्षा के साथ की वह जल्दी ही पूर्वस्थिति प्राप्त करेगा। साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि अस्पताल प्रतिवेश में उसका सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन खत्म हो जाता है। ऐसे में उसका पूरा परिवार तथा परिवार की आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थितियों में परिवर्तन आता है। ऐसे में एक सामाजिक कार्यकर्ता उसकी अपेक्षानुरूप जल्द से जल्द रोग मुक्त होकर पूर्वस्थिति में पहुँचने में काफ़ी मदद करता है। इसके लिए सामाजिक कार्यकर्ता अंत:रोगी विभाग में निम्न आयामों पर कार्य कर रोगी को अपनी सेवाएँ प्रदान करता है-

- निदानात्मक
- उपचारात्मक
- निवारणात्मक
- पुनर्स्थापनात्मक
- स्वास्थ्य शिक्षा एवं शोध

इन पक्षों पर कार्य करते हुए सामाजिक कार्यकर्ता विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन करता है। निदानात्मक पक्ष के अंतर्गत कार्य करते हुए वह रोगी के रोग और उस रोग के कारण उसके सामाजिक, मानसिक क्रिया-कलापों पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करता है तथा उन्हें रोगी या रोगी के परिवार के सामने रखता है। उपचारात्मक पक्ष के अंतर्गत कार्य करते हुए सामाजिक कार्यकर्ता परामर्श, सामाजिक चिकित्सा, समूह चिकित्सा इन विधियों का उपयोग करता है। इन विधियों का उपयोग वह रोगी की समस्या एवं कठिनाई की प्रकृति, रोगी द्वारा वांछित सहायता प्रकार तथा चिकित्सालय में उपलब्ध साधनों के बीच समायोजन स्थापित करने में करता है। निवारक आयाम के अंतर्गत कार्य करते हुए सामाजिक कार्यकर्ता मुख्यतः दो प्रमुख मुद्दों पर कार्य करता है-

1. व्यक्ति का स्वास्थ्य संरक्षण
2. समुदाय का स्वास्थ्य संरक्षण

सामाजिक कार्यकर्ता रोगों से बचाव, रोगों का शीघ्र निदान एवं उपचार तथा रोग से उत्पन्न अशक्तता एवं अक्षमता से संरक्षण प्रदान करना आदि में सहयोग प्रदान करता है। इसके लिए वह रोगी, रोगी का परिवार तथा चिकित्सालय प्रशासन के साथ मिलकर कार्य करता है। रोग के कारण रोगी की कार्यक्षमता में ह्रास एवं सामाजिक अनुकूलन में कुसमायोजन स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। इस अवस्था में रोगी के रूप में व्यक्ति पुनर्स्थापना की माँग रखता है। सामाजिक कार्यकर्ता रोगी के शारीरिक, व्यवसायिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पुनर्स्थापना में अपना सहयोग तथा सेवाएँ प्रदान करता है। संस्थागत ढाँचे में या स्वास्थ्य के क्षेत्र में काफ़ी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। ऐसे में उनका चिकित्सालय के सभी कर्मियों तक संचारण होना आवश्यक होता है। प्रदर्शन, वार्तालाप, कार्यशाला एवं व्याख्यान के अंतर्गत सामाजिक कार्यकर्ता शिक्षक की भूमिका अदा करता है और उन समस्याओं के समाधान पर विचार विमर्श करवाता है। इसके साथ ही नए ज्ञान के निर्माण में वह अपनी ज़िम्मेदारी निभाता है, जैसे- चिकित्सालय में किसी एक परिस्थिति में समाज कार्य के हस्तक्षेप से संबंधित अध्ययन करना तथा रोगी की बीमारी से संबंधित सामाजिक कारकों के प्रभाव का एवं बीमारी के विभिन्न चरणों से संबंधित अध्ययन करना।

2.5.3 गहन चिकित्सा इकाई (Intensive Care Unit):

देखभाल की सुविधा, चिकित्सा शास्त्र में हुई प्रगति एवं जीवन रक्षक उपकरणों का विकास आदि ने गहन चिकित्सा इकाई की नींव डाली। गहन चिकित्सा इकाई एक ऐसा विभाग होता है जहाँ चिकित्सक एवं नर्स गंभीर रूप से बीमार रोगी की देखभाल 24 घंटे करते हैं। रोंगी को गहन चिकित्सा की आवश्यकता तथा रोग की गंभीरता का बढ़ते जाना इस रोगी को इस विभाग में भर्ती का कारण होता है। साथ ही कभी-कभी जटिल स्वास्थ्य समस्याओं के कारण रोगी को क्रिटिकल केयर के लिए इस विभाग में भर्ती किया जाता है। इस विभाग में चिकित्सकीय कार्यकर्ता की भूमिका निम्नवत मानी जाती है-

- रोगी के रिश्तेदारों के साथ परामर्शन सत्र का आयोजन करना

- रोगी के चिकित्सकीय स्थिति के विषय में चिकित्सक से वार्तालाप आयोजित करना
- रोगी एवं विभागीय हितों में परस्पर समायोजन द्वारा रोगी के रिश्तेदारों की निरुद्देश्य आवाजाही को रोकना
- रोगी की आर्थिक आवश्यकताओं की जानकारी लेना एवं उपलब्ध संसाधनों द्वारा उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के प्रयास करना
- रोगी के लिए किए जाने वाले अन्य प्रयासों में सहयोग करना
- रोगी के परिजनों को रोग के बारे में जानकारी एवं उनसे अपेक्षाओं के विषय में जानकारी देना
- विभागीय प्रशासन को लोगों की आवश्यकताओं एवं मनोसामाजिक समस्याओं की वास्तविकता से अवगत कराना आदि

2.5.4 चिकित्सकीय समाज कल्याण इकाई (Medical Social Welfare Unit):

इस इकाई का प्रमुख ध्येय रोगी की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं चिकित्सालय में उपलब्ध संसाधनों के मध्य समायोजन द्वारा रोगी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयास करना है। चिकित्सकीय समाज कल्याण इकाई के अंतर्गत चिकत्सालय में निम्नलिखित सेवाएँ प्रदान की जाती हैं-

1. चिकित्सालय में बाह्य रोगी विभाग एवं अंत रोगी विभाग में सामाजिक सेवाएं प्रदान करना
2. संख्या में कम कार्मियों की उपलब्धता के बाद भी चिकित्सालय के बड़े भाग की सेवा प्रदान करना
3. रोगी एवं उनके परिजनों के लिए मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वहन करना
4. निर्धन एवं वंचित रोगियों को मनो सामाजिक एवं आर्थिक सहयोग प्रदान करना
5. रोगी की चिकित्सा में शामिल चिकित्सालय दल के चिकित्सक एवं पैरा-चिकित्सकीय कर्मियों को एक दूसरे से आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को स्पष्ट करते हुए उनके मध्य सामंजस्य द्वारा चिकित्सकीय दल की प्रभावशीलता को बढ़ाना
6. रोगी के चिकित्सालय से सेवा समाप्ती (Discharge) की सेवाओं एवं रोगी के समाज में पुनर्स्थापन का सुचारू संचालन

चिकित्सकीय समाज कल्याण इकाई के अंतर्गत नियुक्त चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। रोगी के लिए कल्याणकारी गतिविधियों का संचालन चिकित्सकीय समाज कल्याण इकाई के माध्यम से सामाजिक कार्यकर्ता करता है। इसमें से कुछ गतिविधियाँ निम्नलिखित है-

1. रोगियों को विभिन्न कोष के माध्यम से आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराना
2. जरूरतमंदो एवं निर्धन रोगियों के लिए मुफ्त की दवा तथा सर्जिकल सेवाओं का प्रबंध करना
3. रोगी एवं रोगी के परिजनों से लगातार फॉलोअप के लिए प्रोत्साहित करना
4. स्वैच्छिक रक्तदान शिविर आयोजित करना तथा जरूरतमंद लोगों के लिए उसे उपलब्ध कराना

5. गैर-सरकारी संस्थाओं एवं रोगी कल्याण केकार्यक्रमों में इच्छुक एवं संभावित दानदाताओं के साथ संपर्क स्थापित कर रोगी के कल्याण के कार्यक्रम के लिए आर्थिक प्रबंधन करना

इसके बावजूद सामाजिक कार्यकर्ता इस इकाई के अंतर्गत शैक्षिक एवं शोध गतिविधियों का संचालन, प्रशासकीय गतिविधियों का संचालन, पुनर्स्थापन संबंधी सेवाओं का संचालन तथा स्वास्थ्य मंत्रालयों के अंतर्गत केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा संचालित कार्यक्रमों का संचालन एवं क्रियान्वयन में सामाजिक कार्यकर्ता अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2.6 मनोचिकित्सकीय सामाज कार्य

समाज कार्य के विद्वानों का मानना है कि मनोचिकित्सकीय समाज कार्य वह समाज कार्य है जिसका संबंध मनोरोग विज्ञान से है तथा यह समाज कार्य मनोरोग विज्ञान के साथ ही व्यवहार में आता है। समाज कार्य के इतिहासकारों के अनुसार 1920 के बाद फ्रायडियन मनोविश्लेषण की संकल्पना के कारण चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता और मनोचिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का अलग-अलग रूप में विभाजन हुआ। चिकित्सकीय समाज कार्य का विधिवत रूप से प्रशिक्षण स्मिथ कॉलेज (Smith College) में 1918 से शुरू हुआ। सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका को लेकर इडा कानोन(Ida Cannon) एवं रिचर्ड कोबोट के बीच में संघर्ष भी पाया जाता है, जिसमें कानोन का कहना था कि सामाजिक कार्यकर्ताओं को हेल्थ केयर में डायरेक्ट ट्रीटमेंट की भूमिका होनी चाहिए,जैसे- रोगी के बेहतर उपचार के लिए उसके आस-पड़ोस में से अवरोधों को हटाना। परंतु कोबोट का कहना था कि सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका एक पूल की तरह है, जैसे-अस्पताल और रोगी के बीच में संपर्क स्थापित करना।

भारत जैसे विकासशील देशों में इस संदर्भ में बाते बड़े कमज़ोर रूप में हुईहैं। मुंबई के सर दोराबजी टाटा ग्रेज्युएट स्कूल ऑफ सोशल वर्क में, 1937 में, बाल निर्देशन क्लीनिक के अंतर्गत मनोचिकित्सकीय कार्यकर्ता के कार्य की शुरुआत हुई। समाज कार्य के इतिहासकारों के अनुसार जी आर. बॅनर्जी को इसके संस्थापक के रूप से नामित किया जाता है, इन्हीं के मार्गदर्शन में भारत में मानोचिकित्सकीय सामाजिक कार्य का प्रशिक्षण शुरू हुआ।

मनोचिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को परिभाषित करते हुए कॉलिन्स डिक्शनरी ने लिखा है, (ब्रिटेन के संदर्भ में)कि एक योग्य व्यक्ति, जो मानसिक रूप से बीमार लोगों एवं उनके परिवार को मनोचिकित्सकीय अस्पताल, बाल निर्देशन क्लीनिक या समाज सेवा विभाग क्षेत्र की टीम के साथ काम करता हो और हो सकता है कि वह एक अनुमोदित कार्यकर्ता हो। (Harper, 2000)

सत्यप्रकाश गुप्त (2013) के अनुसार "मनोचिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य की वह विशिष्ट शाखा है, जो अपने विशिष्ट ज्ञान तथा नैपुण्य द्वारा मानसिक स्वास्थ्य संबंधी उन संस्थाओं में व्यवहार में आता है जिन संस्थाओं का प्रमुख लक्ष्य मानसिक रोगों का अध्ययन, उनका उपचार तथा उनकी रोकथाम करना है।"

प्रो. राजाराम शास्त्री (2015) अपनी किताब *समाज कार्य* में मनोचिकित्सकीय समाज कार्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, "मानसिक अथवा आवेगात्मक संतुलन की स्थिति के व्यक्तियों के साथ किए जाने वाले प्राय: वैयक्तिक कार्य तथा कभी-कभी सामूहिक कार्य ही मनोचिकित्सकीय समाज कार्य हैं। यह कार्य स्वयं कार्यकर्ता भी कर सकता है और मानसिक या आवेगात्मक रोगों से ग्रसित व्यक्ति के उपचार में लगे मनोचिकित्सकों के साथ सहयोग करके भी।"

समाज कार्य से संबधित ज़्यादातर लोगों ने मनोचिकित्सकीय समाज कार्य को वैयक्तिक समाज कार्य तक सीमित करके देखा है बावजूद इसके बैनर्जी जैसे भारतीय विद्वानों का मानना है कि मनोचिकित्सकीय समाज कार्य का वास्तविक अर्थ समाज कार्य व्यवहार से लगाया जाना चाहिए न कि केवल वैयक्तिक समाज कार्य, जिन्हें पश्चिमी पुस्तकों में लिखा गया है। इस तरह के विचारों के उपरांत मनोचिकित्सकीय समाज कार्य व्यवहार में काफ़ी परिवर्तन आया और आज उसमें वैयक्तिक समाज कार्य की चौखट से बाहर जाकर देखा जाने लगा है।

इधर विश्व स्वास्थ्य संगठन(WHO) द्वारा यह सलाह दी जा रही है कि 2020-2030 तक मानसिक स्वास्थ्य समस्या (Mental ill helth) जिसको दबाव (Depression) के पदावली में रखा गया है, इसमें लगातार वृद्धि होती जा रही है, जिसके कारण इसे उच्च कोटि की बीमारीयों के श्रेणी में विभाजित किया जा रहा है और यह दावा किया जा रहा है कि पब्लिक हेल्थ का दृष्टिकोण ही इसके लिए उपयुक्त ज़िम्मेदारी ले सकता है। ऐसे में मनोचिकित्सकीय समाज कार्य की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वह अपने विधियों के अंतर्गत लोगों को इन समस्याओं से मुक्त करने में सहयोग प्रदान करें।

भारत में मानसिक स्वास्थ्य की चुनौतियाँ (MURTHY, 2011)

1. समुदाय में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति'आवश्यकता की अपूर्णता'(Unmet need)

2. आम जानता में मनोवैज्ञानिक संकट की निम्न(Poor) समझ के कारण हस्तक्षेप के साथ चिकित्सा की आवश्यकता है

3. आम जानता के बिच मानसिक विकारों के प्रति आधुनिक चिकित्सा देखभाल (Modern Medical Care) की सीमित स्वीकृति

4. मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं (पेशेवर एवं सार्वजनीक स्वास्थ्य सेवाओं) के सुविधा की उपलब्धता की सीमा

5. पीड़ित लोगों एवं परिवारों की ओर से उपलब्ध सेवाओं का निम्न(Poor) उपयोग

6. मानसिक बीमारियों के एकीकरण के कारण रिकवरी में समस्याएँ

7. मानसिक स्वास्थ्य देखभाल के लिए संस्थागत तंत्र की कमी

2.6.1 वैयक्तिक मनोचिकित्सकीय समाज कार्य

मनोचिकित्सकीय समाज कार्य की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मनोचिकित्सकीय समाज कार्य में सहयोग बुनियादी विधि के रूप में वैयक्तिक सेवा कार्य को देखा गया है। इसी आधार पर यहाँ हम मानसिक रोगियों के साथ किए जाने वाले विभिन्न गतिविधियों पर प्रकाश डालेंगे।

मेरी जाहोडा (Mary jahoda) ने मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति के पाँच मानदंड बनाएँ हैं:-

1. मानसिक रोगों की अनुपस्थिति

2. व्यवहार की सामान्यता

3. परिवेश में समायोजन

4. व्यक्तित्व की एकता

5. वास्तविकता का ठीक-ठीक प्रत्यक्षीकरण

उक्त मानदंडो के आधार पर सामान्य व्यक्तित्व तो समझ में आता है, लेकिन असामान्यता एवं मानसिक बीमारी की पहचान करने के लिए अन्य प्रारूपों का उपयोग भी करना पड़ेगा।

1. मनोगत्यात्मक प्रारूप- सिग्मंड फ्रायड

2. मानवतावादी प्रारूप – मास्लो, रोजर्स आदि

3. अस्तित्ववादी प्रारूप – सोरेन किर्के, आर.डी. लैंग आदि

4. अंतर वैयक्तिक प्रारूप– हेरी स्टैक सुलीवन तथा एरिल हर्ने

उक्त चार प्रमुख प्रारूपों के बावजूद मनोविज्ञान के क्षेत्र में विभिन्न स्केलों का निर्माण किया गया है, जिसके आधार पर सामान्यता एवं असामान्यता के बीच अंतर किया जाता है। मानसिक बीमारियों की पहचान करने में, डायग्नोस्टिक स्टैटिस्टिकल मेन्यूएल फॉर मेंटल डिसॉर्डर (DSM-IV) काफ़ी मददगार है।

ज्ञान शांति मैत्री

मानसिक रोग के उत्पत्ति में पर्यावरणीय और सामाजिक कारकों का उतना ही हाथ होता है, जितना की उस व्यक्ति का व्यक्तित्व, प्रेम का अभाव, मनो-आघात, तिरस्कार, अति लाड़-प्यार, अवास्तविक आशाएँ , प्रतिद्वंद्विता, वंचना, विरोध, प्रतिबंध, आशाओं के टूटन के कारण बनी स्थितियाँ, दुर्घटना तथा रोग आदि महत्वपूर्ण कारक एवं कारण है जिससे मानवीय व्यवहार प्रभावित होते हैं। इन व्यवहारों का समायोजन न होने की लंबी अवधी में मानसिक बीमारी का उद्भव होता है। 'मन-शरीर समस्या' के अंतर्गत देखे तो मनोचिकित्सामें रोगों का क्रम शरीर से मन और मन से शरीर की ओर माना जाता है। इसका मतलब है कि शारीरिक व्याधीयों से ग्रस्त होने के कारण भी कभी-कभी मानसिक बिमारियाँ उत्पन्न होती है जैसे कि पैर टूटने के बाद चलने में होने वाली तकलीफ या औरों पर निर्भर होना व्यक्तित्व विकार या व्यवहारिक विकार उत्पन्न कर सकता है।

समाजकार्य में मानसिक बीमारी से निबटान एवं सहयोग हेतु मनोचिकित्सकीय समाज कार्य के अंतर्गत मनोचिकित्सकीय प्रतिवेश (psychiatric setting) की व्यवस्था की गई है। मनोचिकित्सकीय समाज कार्य को परिभाषित करते हुए 1931 में Executive committee of the advisory on standards in USA ने लिखा है ''मनोचिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य की ऐसी शाखा है, जिसने मनोचिकित्सा से संबंध विकसित किए हैं। यह मनोचिकित्साके विशेष ज्ञान को ग्रहण किए एक प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा अभ्यास में लाया जाता है। इसने सामाजिक वैयक्तिकसेवा कार्य अभ्यास को अपना लिया है, जिसका उपयोग किसी संस्थान में, जो समाज कार्य का एकत्रित भाग है, में मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए किया जाता है।'' आज मनोचिकित्सकीय समाज कार्य विभिन्न ज्ञानशाखाओं; मनोविज्ञान एवं मनोचिकित्सा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र, मानसिक स्वच्छता और जनस्वास्थ्य एवं शिक्षण आदि क्षेत्रों को एकत्रित कर मानवीय संबंधों के सुधार में योगदान दे रहा है।

भारत में समाज कार्य विश्वकोश के अनुसार, मानसिक बिमारों के साथ काम करते समय सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का मुख्य उद्देश्य रोगी को समझते हुए उसमें बदलाव या परिवर्तन लाना है। यहाँ सामाजिक कार्यकर्ता अहम-सहायक मापन, पर्यावरणीय परिवर्तन और अन्य सहायक थेरेपिज का उपयोग करता है। अवचेतन विचारों को बिना हाथ लगाए कार्यकर्ता अपनी कुशलता से सेवार्थी के अवचेतन मन को समझते हुए उसकी दशा और दिशा के आधार पर समस्या की सही गत्यात्मकता तक पहुँचता है।

इस उद्देश्य तक पहुँचने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता रोगी के साथ संबंध बनाते हुए रोगी की केस हिस्ट्री समझता है या उसे एकत्रित करता है और सेवार्थी की समस्या और समस्या सदृश्य कारकों की खोज के बीच नियत अंत:क्रिया करता है। रोगी और उसके परिवार से प्राप्त नियत विकार-विरूपण सामान होने के बाद प्राप्त जानकारी के आधार पर उसकी मनोगत्यात्मकता का पता लगाता है और मनोचिकित्सक के साथ मिलकर निदान को पूर्णता देता है। रोगी का निश्चित निदान एवं उपचार योजना के उद्देश्य से आयोजित चर्चाओं में मनोचिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सकीय नर्स एवं अन्य सह मनोचिकित्सकीय (Para-Psychiatric) कर्मियों के साथ सहभागी होता है। जब कभी सेवार्थी की प्रकृति में द्वंद्व आता है तब सामाजिक कार्यकर्ता उसके मनोवैज्ञानिक उपचार की पूरी ज़िम्मेदारी लेता है। मनोसामाजिक कार्यकर्ता इस काम में सहायक मनोचिकित्सा, परामर्श तकनीक, पर्यावरण निर्माण आदि को उपयोग में लाता है साथ ही वैयक्तिक सेवा कार्य तकनीकों का उपयोग केवल बातचीत करने के लिए ही नहीं, बल्कि विभिन्न मुद्दों को विश्लेषित करने के उद्देश्य से करता है।सामाजिक कार्यकर्ता रोगी को भावनिक तनाव से मुक्ति में सहयोग प्रदान करता है। इस प्रक्रिया में सामाजिक कार्यकर्ता रोगी के पारिवारिक सदस्यों को परामर्श के माध्यम से रोगी और उसकी बीमारी से संबंधित दृष्टिकोण समझाता है और उसे हल करने की प्रक्रिया में वे किस तरह बेहतर भागीदारी कर सकते हैं, के बारे में बताता है। रोगी जब हॉस्पिटल से वापस परिवार में आता है तब वहाँ का वातावरण रोगी के अनुकूल बनाने के लिए,

पारिवारिक सदस्यों के तनाव को कम करने में उनकी मदद करता है, जिससे रोगी जल्दी अपने परिवार में अन्य सदस्यों के साथ समायोजित हो सके।

सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका

- अपने सेवार्थी के लिए अधिवक्ता के रूप में कार्य
- सेवार्थी को शिक्षित करना उन्हें नए कौशल सिखाना
- समुदाय के अंतर्गत आने वाले सेवार्थियों के विकास के लिए आवश्यक संसाधनो कोजोड़ना
- भेद्यतापूर्ण (Vulnerable) सेवार्थी को सुरक्षितता प्रदान कर यह सुनिश्चित करें की वह अपना सर्वोत्तम हित प्राप्त कर रहा है
- सेवार्थी को जब समर्थन एवं सहायता की जरूरत हो तब परामर्शदाता की भूमिका
- सामाजिक समस्याओं के उपचार के लिए अनुसंधान,प्रशिक्षण और शैक्षिकआवश्यकताओं को पूर्ण करना
- मल्टी-डिसिप्लनरी टीम के साथ सदस्य के रूप में काम करना आदि

2.6.2 समूह में मनोचिकित्सकीय समाज कार्य

समाज कार्य में समूह कार्य की अपनी मान्यताएँ और सिद्धांत उपलब्ध है। उन्हीं मान्यताओं के आधार पर जिसमें प्रमुख है कि मनुष्य समूह में रहने वाला प्राणी है और उसे सुधरने का मौकासमूह सदस्यों द्वारा दिया जाना चाहिए। सामाजिक समूह कार्य व्यक्ति के लिए एक थेरेप्टिक सेट अप होता है जिसमें व्यक्ति अपनी अंत:क्रियाओं को साझा करने तथा अपने प्रकार्यों में सुधार लाने के लिए अपने उद्यमी प्रयासों से वांछित लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

मनोचिकित्सकीय समाज कार्य में मनोचिकित्सकीय कार्यकर्ता, पपेल एवं रोथन (Papell and Rothan) (1966) द्वारा दिए गए निम्न मॉडल उपयोग में ला सकता है-

1. सामाजिक ध्येय मॉडल (Social Goals Modal)
2. उपचारात्मक मॉडल (Remedial Modal)
3. पारस्परिक मॉडल (Reciprocal Modal)

इन मॉडलों के आधार पर समूह कार्य के अंतर्गत मनोचिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवाएँ प्रदान करता है। उसमें से कुछ निम्नवत हैं-

- मनोचिकित्सकीय अस्पताल
- बाल निर्देशन केंद्र
- सामान्य अस्पताल प्रतिवेश

- पुनर्वास केंद्र
- व्यसन-मुक्ति केंद्र
- वृद्धाश्रम केंद्र

इसके अतिरिक्त और भी कई सारे क्षेत्र हैं जहाँ चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता सेवाएँ प्रदान करता है। ऐसी कई सारे समस्याएँ है, जिनसे जुड़े लोग इन केंद्रों में आते हैं, उनमें से कुछ समस्याएँ निमन्वत है, जिनके साथ मनोचिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता समूह कार्य के अंतर्गत कार्य करता है-

1. मानसिक बीमारी
2. मानसिक मंदता
3. विभिन्न व्यसन
4. विभिन्न अपंगत्व
5. बच्चे/बच्चियों की समस्याएँ
6. प्रौढ़ की समस्याएँ
7. व्यक्तित्व विकार से ग्रसित लोग
8. विभिन्न मानसिक बीमारियों से ग्रसित, निदान हुए या रिकवरी एवं पुनर्वास की माँग रखने वाले लोगों को मनोचिकित्सकीय कार्यकर्ता अपनी सेवाएँ प्रदान करता है।

2.6.3 अन्य गतिविधियाँ:

वैयक्तिक समाज कार्य तथा समूह कार्य के बावजूद अन्य विधियों को उपयोग में लाकर सामाजिक कार्यकर्ता मनोचिकित्सकीय सेवाएँ प्रदान करता है, जिसमें प्रमुख है-

1. सामुदायिक स्वास्थ्य,
2. स्वास्थ्य कल्याण कार्यक्रम, परिवार कल्याण,
3. वैवाहिक समायोजन
4. कपल थेरेपी (Couple Therapy)

सामाजिक कार्यकर्ता इसका उपयोग समाज एवं समस्या की माँग के अनुरूप करता है। सामुदायिक स्वास्थ्य के अंतर्गत समाजिक कार्यकर्ता समुदाय आधारित सेवाओं के प्रदाता के रूप में कार्यरत होता है। जैसे कि बताया जा रहा है, बिना मानसिक स्वास्थ्य के पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। विश्व में लगातार मानसिक रोगियों की संख्या बढ़ती जा रही है उन सब को वैयक्तिक या समूह कार्य के अंतर्गत सेवाएँ प्रदान करने के लिए कर्मियों की उपलब्धता नहीं हैं। ऐसे में सामुदायिक स्वास्थ्य के प्राप्ति के लिए चलाए जाने वाले स्वास्थ्य कार्यक्रमों का संचालन, क्रियान्वयन की ज़िम्मेदारी का वहन भी मनोचिकित्सकीय कार्यकर्ता को करना है। परिवार एक बुनियादी इकाई है इसके संवर्धन के लिए और उसे

ज्ञान शांति मैत्री

मजबूत बनाने के लिए परामर्शन के अंतर्गत कार्य किया जा सकता है। हाल में भारत के विभिन्न समाजों में भी वैवाहिक कुसमायोजन की समस्या बढ़ती जा रही है तथा वैवाहिक जीवन में कई सारी समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। ऐसे में उनके मनोसामाजिक स्वास्थ्य को बेहतरी प्रदान करने का जिम्मा समाज कार्य अपने ऊपर लेता है। मानसिक स्वास्थ्य और पीड़ित व्यक्तियों का इलाज, जैसे- विशेष-क्षेत्र में मनोचिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता संकट परामर्श, समूह चिकित्सा, कौशल शिक्षा और मनो-सामाजिक (psycho-social) पुनर्वास सेवाएँ प्रदान करता है।

2.7 सारांश

भारतीय संदर्भ में चिकित्सकीय समाज कार्य को काफ़ी बेहतरी से उपयोग में लाया जा रहा है। फलस्वरूप अस्पतालों में चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता दिखाई देने लगे हैं। वे अपनी भूमिकाओं का बखूबी वहन भी कर रहें हैं। किंतु मनोचिकित्सकीय समाज कार्य की स्थिति बड़ी कमज़ोर नज़र आती है। भारतमें कुल 42 मनोचिकित्सालय हैं,जहां मानसिक रोगियों का इलाज किया जाता है। निमहंस(National Institute of Mental Health and Neuro Sciences) जैसे कुछ एक संस्थानों को छोड़ के सभी अस्पतालों की स्थिति यह है कि आज भी यहाँ मनोचिकित्सकीय कार्यकर्ता की नियुक्ति नहीं हैऔर जिस-जिस जगह पर इनकी नियुक्ति हुई है वहाँ उनके कार्य का स्वरूप भिन्न-भिन्न नज़र आता है। पश्चिमी अवधारणा के अनुसार स्थिति प्राप्त करने के लगातार प्रयास निमहंस द्वारा जारी है। किंतु सरकारी तौर पर मानसिक स्वास्थ्य को लेकर बातचीत कमज़ोर दिखती है। स्वतंत्रता के बाद मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम-1987 के आगे हम नहीं बढ़ सके हैं। "ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत यह बात कही गई है कि प्रति वर्ष भारत में लगभग ३२० मनोचिकित्सक, ५० क्लिनिकल मनोवैज्ञानिक, २५ सामाजिक मनोचिकित्सक कार्यकर्ता एवं १८५ मनोचिकित्सक नर्स को प्रशिक्षित किया जाएगा।" (MURTHY, 2011)अभी वर्तमान में मानसिक स्वास्थ्य नीति को बनाया गया है, जिसका कार्यान्वयन अभी बाकी है।

गिने-चुने प्रशिक्षण केंद्रों के अंतर्गत मनोचिकित्सकीय समाज कार्य का प्रशिक्षण मिलता है जिसमें भी विभिन्नता है। कुल मिलाकर मनोचिकित्सकीय समाजकार्य, समाज कार्य के अन्य क्षेत्रों की तरह अपनी जगह भारतीय धरातल पर नहीं बना पाया है। इसके कारणों को खोज कर इसमें सुधार की गुंजाइश बनी हुई है।

2.8 बोध प्रश्न:

1. चिकित्सकीय समाज कार्य को समाज कार्य के क्षेत्र के रूप में स्पष्ट कीजिए।
2. चिकित्सकीय समाज कार्य द्वारा प्रदत्त सेवाओं पर चर्चा कीजिए।
3. बाह्य रुग्ण विभाग में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
4. चिकित्सकीय समाज कल्याण इकाई की गतिविधियों को समझाएँ।
5. मनोचिकित्सकीय समाज कार्य की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

6. वैयक्तिक समाज कार्य और चिकित्सकीय समाज कार्य के बीच संबंध स्पष्ट कीजिए।
7. समूह में मनोचिकित्सकीय समाज कार्य की भूमिका का वर्णन कीजिए।

2.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

Bhatia, M. S. (2009). Dictionary of Psychologyand Allied. New Delhi: New Age International.

Handbook of Psychiatric Social Work. (2007). In K.Sekar, R. Parthasarthy, & D. Murlidhar (Eds.). Bangalore: NIMHANS Publication.

M., J. (1958). Current Concepts of Positive Mental Health. New York: Basic Books.

Mathew, G. (1987). Casework in Encyclopedia of Social Work in India. Delhi: Ministry of Social Welfare, Government of India.

MURTHY, R. S. (2011). Mental health initiatives in India (1947–2010). THE NATIONAL MEDICAL JOURNAL OF INDIA, 24(02), 98. Retrieved 01 01, 2013

Pathak, H. S. (1961). Medical social work in India. Delhi: Delhi School of Social Work.

मिश्र, पी. डी. (2003). सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

शास्त्री, रा. (2015). समाज कार्य. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

सिंह, पं. कु. (2015). चिकित्सालय में समाज कार्य. लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई : 03 वृद्धावस्था सेवाएँ

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 वृद्धावस्था
3.3 वृद्धों की समस्या
3.4 वृद्ध कल्याण तथा सेवाएँ
3.5 वृद्धजन और समाज कार्य
3.6 सारांश
3.7 बोध प्रश्न
3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. वृद्धावस्था की समस्या को जान पाएँगे।
2. भारतीय परिदृश्य में वृद्धास्था में आने वाली समस्याओं को प्रदर्शित कर सकेंगे।
3. वृद्ध कल्याण के लिए चलाए जाने वाले कार्यक्रमों का वर्णन कर सकेंगे।
4. राष्ट्रीय वृद्धजन नीति से अवगत होंगे।
5. समाज कार्य और वृद्धजन समस्याएँ के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

वैश्विक स्तर पर वृद्ध जनसंख्या की बढ़ोतरी को लेकर काफ़ी चिंता जताई जा रही है। चिकित्सा सुविधाओं के बढ़ोतरी से मानव के जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy) में वृद्धि हुई है। *यु. एस. ब्यूरो ऑफ़ द सेन्सस* के अनुसार सन 2000 में वृद्धों की वैश्विक जनसंख्या420 मिलियन मानी जा रही थी, जिसमें वृद्धि होकर 2025 तक 761 मिलियन तक पहुँच जाएगी। इसका अर्थ है कि सन 2025 तक प्रत्येक सातवाँ व्यक्ति 65 आयु प्राप्त कर चुका होगा। औद्योगिक और विकसित राष्टों में वृद्धजनसंख्या नाटकीय ढंग से बढ़ रही है। पश्चिमी यूरोपीय देशों में उच्च जीवन प्रत्याशा नापी गई है। जापान जैसे विकसित देश में इस बढ़ोतरी को सन 2000 में 17 प्रतिशत नापा गया। दक्षिण एशिया और उप-सहारा आफ्रिका में वृद्धो का वृद्धि दर अंतर्विरोधाभासी रूप से3 प्रतिशत है। अगर आने वाले समय में विकासशील देशों में स्वच्छता, न्यूट्रीशन तथा चिकित्सा सेवा का वितरण ठीक रहा तो वहाँ पर भी वृद्ध जनसंख्या में बढ़ोतरी होगी। यहाँ सन 1975 में वृद्ध जनसंख्या का वृद्धिदर3.8 प्रतिशत था, जो सन 1995 में बढ़कर 17 प्रतिशत होने की

आशंका जताई गई थी। फ़िलहाल विकसित राष्टों में विश्व की कुल वृद्ध आबादी के 70 प्रतिशत निवास कर रही है। यह सारे आँकड़े वृद्ध जनसंख्या के वृद्धि दर को दर्शा रहें हैं। विश्व में विकसित राष्टों के लिए वृद्ध जनसंख्या एक समस्या बनी हुई है। ऐसे में भारत जैसे विकासशील राष्ट्र केलिए यह एक चुनौती का विषय है।

अब तक भारत के वृद्ध कृषक समाज रचना के परिवारों पर निर्भर रहते रहे हैं। किंतु भारत में भी औद्योगिक युग के प्रारंभ और विकास के कारण वृद्धों की आलंबन आवश्यकताओं और अपेक्षाओं में पर्याप्त परिवर्तन आया है। संक्रमण काल एवं नई व्यवस्था की माँगों के अनुरूप समय पर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण सामाजिक-सांस्कृतिक रचना और उनके उपलब्धि की विरासत पर आघात पहुँचता है। वृद्धावस्था स्वयं में एक समस्या है। इसके बावजूद वृद्धावस्था में व्यक्ति को विभिन्न समस्याओं जैसे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं पारिवारिक आदि से जूझना पड़ता है।

भारत सरकार की *वृद्ध स्थिति विश्लेषण रिपोर्ट* (2011) में बताया गया है कि 65 प्रतिशत वृद्ध अपनी दैनंदिन सुविधाओं की प्राप्ति के लिए दूसरों पर निर्भर हैं20 प्रतिशत वृद्ध महिला, जिसमें प्रमुखता से पुरुष आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं। 6-7 प्रतिशत ऐसे वृद्ध पुरुष है जो अपनी पत्नी को आर्थिक सहयोग प्रदान करते हैं। 85 प्रतिशत वृद्ध अपने बच्चों पर आर्थिक रूप से निर्भर हैं, 2 प्रतिशत अपने नाते-पोते पर आश्रित हैं तथा 6 प्रतिशत अन्य पर आश्रित हैं। वृद्ध महिलाओं में20 प्रतिशत से कम अपने पति पर निर्भर हैं, 70 प्रतिशत से अधिक अपने बच्चों पर आर्थिक रूप से निर्भर हैं, 3 प्रतिशत अपने बच्चों के बच्चों पर तथा 6 प्रतिशत वृद्ध महिलाएँ उन लोगों पर निर्भर हैं, जो इनके नाते-संबंधी नहीं है।2002 के आँकड़े बताते हैं कि ग्रामीण इलाके के वृद्ध व्यक्तियों में से 50 प्रतिशत लोगों की मासिक प्रति व्यक्ति खर्च का स्तर 420 रुपये से 775 रुपये के बीच है और शहरी इलाके के वृद्ध व्यक्तियों का665 रूपये से 1500 रूपये के बीच प्रति व्यक्ति खर्च का स्तर हैं। इतना ही नहीं 75 प्रतिशत से ज़्यादा वृद्ध पुरुष और40 प्रतिशत से कम वृद्ध महिलाएँ अपने साथी के साथ जीवनयापन कर रही हैं। बाकी20 प्रतिशत वृद्ध पुरुष और इसमें से आधी वृद्ध महिलाएँ अपने बच्चों के साथ जीवनयापन कर रही हैं। इन आंकडों से पता चलता है कि भारत में वृद्धों की स्थिति कितनी भयावह है। वृद्धावस्था जिसे दूसरा बचपन के रूप में परिभाषित किया जाता है; ऐसे में उन्हें विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है और उसी समय बुनियादी संकट पर नकेल कसने लगते हैं। शुरूआती समय में परिवार में वृद्धों की एक ख़ास जगह होती थी, किंतु परिवार विघटन की समस्या ने वृद्धों को अपने ही घरों से बेघर होने पर मजबूर किया है। जिस समय में वृद्धों को परिवार की सबसे ज़्यादा आवश्यकता होती है उस समय उन्हें अकेलेपन का दंश झेलना पड़ता है।

अनगिनत समस्याओं के घेरे में वृद्ध अपने आप पहुँच जाता है जिसका अंत उसके अपने अंत तक नहीं होता है। नई नीतियों और बदली हुई सोच ने फिर से वृद्धों को समाज में समायोजित करने के लिए विभिन्न योजनाओं का निर्माण किया है। उनके कल्याण हेतु अलग-अलग कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इन सब का

एक मात्र उद्देश्य है, वृद्धों को सहायता प्रदान करना। इस इकाई में हम वृद्धों के स्थितियों को समझते हुए उनके सहयोग के लिए बनी सेवाओं के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे। साथ ही समाज कार्य के अंतर्गत जराविज्ञानी समाज कार्य (Geriatric Social Work) के रूप में एक क्षेत्र का उभार हुआ है, उससे भी अवगत होंगे।

3.2 वृद्ध अवस्था

प्रत्येक जीव की तीन अवस्थाएँ होती हैं, उत्पत्ति, विकास और ह्रास। मनुष्य जीवन में ह्रास की ओर अग्रसर होने की शुरुआत वृद्धावस्था से होती है। इस अवस्था का प्रारंभ50 वर्ष की आयु से आगे माना जाता है और जीवन के शेष समय तक यह अवस्था रहती है। इस अवस्था में ह्रास की गति तीव्र हो जाती है और व्यक्ति में शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता आने लगती है। स्मरण शक्ति कमज़ोर पड़ने के कारण समायोजन की समस्या स्थायी स्वरूप धारण कर लेती है। व्यक्ति में रूढ़िवादिता बढ़ जाती है और उसमें हीनता की भावना उत्पन्न होने की संभावना होती है। नई पीढ़ी के साथ बुजुर्गों का संबंध संतोषजनक नहीं रहता और वे अकेले पड़ जाते हैं। समन्वय का अभाव उन्हें असहाय अवस्था में पहुँचा देता है। नया कुछ करने की प्रवृत्ति के ह्रास के कारण इस अवस्था में एक स्थायी मानसिकता उत्पन्न होती है। वृद्ध से तात्पर्य है जीवन का अंतिम पड़ाव, लेकिन इस अवस्था को सीमांकित नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रत्येक समाज में इसका एक जैसा अर्थ नहीं होता और नाही इसे वैश्विक रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। आमतौर पर 60 साल की उम्र का अर्थ होता है वृद्ध।

1999 के भारत सरकार के वृद्ध व्यक्तियों पर राष्ट्रीय नीति में 'वरिष्ठ नागरिक' या वृद्ध से तात्पर्य है "ऐसा व्यक्ति, जिसकी आयु 60 या उससे आगे है।" इसी बात को 2007 में बने वृद्ध अधिनियम में दोहराया गया है। इस अधिनियम के अनुसार"वरिष्ठ नागरिक" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जो भारत का नागरिक है और जिसने साठ वर्ष या अधिक आयु प्राप्त कर ली है लेकिन वैश्विक स्तर पर वृद्धावस्था का वर्गीकरण दो वर्गों में मिलता है-

60 साल से 74 साल की आयु मर्यादा के व्यक्ति को वृद्ध(Younger Old)

75 साल से आगे की आयु के व्यक्ति के लिए अतिवृद्ध(Oldest Old)

इस इकाई में हम भारतीय परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत वृद्धों की समस्याएँ और उनके समायोजन, कल्याण हेतु उपलब्ध सेवाओं के बारे में चर्चा करेंगे। इसलिए60 वर्ष की आयु के आगे के सभी व्यक्तियों के लिए यहाँ 'वृद्ध' शब्द उपयोग किया गया है।

वृद्धावस्था की कोई वैश्विक परिभाषा नहीं है, जो सर्वमान्य हो, प्रत्येक सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में इसका आशय अलग है। बावजूद इसके विद्वानों ने वृद्धावस्था को परिभाषित किया है, जिसमें से कुछ विद्वानों के विचारों को यहाँ दिया जा रहा है-

एलिजाबेथ बी. हरलॉक वृद्धावस्था को व्याख्याथीत करते हुए कहते है, *"वृद्धावस्था एक पतनोन्मुख अवस्था है तथा यह दूसरा बाल्यकाल है।* उनके अनुसार *मानसिक और शारीरिक ह्रासोन्मुख क्षमताएँ*

पहले तो हलके रूप में होती हैं और इनकी पूर्ति पूर्व-जीवन के ज्ञान के उपयोग से हो जाती है। वृद्धावस्था के साथ व्यक्ति में क्रय-शक्ति और प्रतिक्रिया की गति में शिथिलता आने लगती है, किंतु वह इसकी पूर्ति कौशल विकास करके कर सकता है। वृद्धावस्था में ह्रास की गति धीमी और क्रमगत हो साथ ही उसकी क्षतिपूर्ति की जा रही है तो उसे जरागमन की अवस्था कहते हैं। यह अवस्था50 से 65 वर्ष के बीच होती है। इसके बाद की अवस्था जराजीर्ण अवस्था कहलाती हैं, जिसमें व्यक्ति व्यक्तिगत भेद के अनुसार कमोबेश भुलक्कड़, लापरवाह, सामाजिक रूप से विमुख तथा एकाग्रचित्त की कमी से ग्रसित होता है।"

भाटिया(1983) ने वृद्धावस्था को तीन दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। इस कारण हम इस परिभाषा को व्यापक/सर्वव्यापि परिभाषा (Umbrela Defination) के रूप में देख सकते हैं। इसके अनुसार वृद्धावस्था को तीन आयामों से परिभाषित किया जा सकता है- जैविक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक-सांस्कृतिक.

- जैविक वृद्धावस्था से तात्पर्य है बालों में सफेदी, दाँतों की हानि और दृष्टि की स्पष्टता का ह्रास।
- मनोवैज्ञानिक रूप से वृद्धावस्था के संदर्भ में तंत्रिका तंत्र का अध्ययन किया जाता है इसमें मानसिक क्षमताओं में गिरावट, उनके प्रति दूसरों के दृष्टिकोण और व्यवहार शामिल हैं।
- सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण परिवार, समुदाय और समाज के सदस्य के रूप में व्यक्ति में परिवर्तन और बदलती परिस्थितियों को दर्शाता है। इन परिवर्तनों को माता-पिता की भूमिका, काम से सेवानिवृत्ति, कम आय, रोग, विकलांगता और उनकी ज़रूरतें शामिल हैं।

डिम्पल सलूजा (२०११)

ज्ञान शांति मैत्री

पी. बी. लैम्कर ने वृद्धों की शारीरिक अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि वृद्धावस्था में शारीरिक गिरावट की गति अपेक्षाकृत तेज हो जाती है और लंबी बीमारी तथा अक्षमताओं की उपस्थिति में वृद्धि हो जाती हैं।

डॉ. *ऋचा(1996)* अपने आलेख '*वृद्ध कल्याण*' में वृद्धावस्था का वर्णन करते हुए लिखती हैं कि *"वृद्धावस्था की अपनी विशेष समस्याएँ होती हैं। इनमें से कुछ का संबंध तो शारीरिक परिवर्तनों से होता है जैसे-शक्ति या बल का ह्रास तथा मानवीय पर्यावरण के परिवर्तन जैसे-जीवन साथी, मित्र या परिजनों की मृत्यु और कार्य से अवकाश और समाज का बदला हुआ व्यवहार इसका दूसरा रूप है।'*

जी. एल. शर्मा (2015) अपनी पुस्तक '*सामाजिक मूद्दे*' में वृद्धावस्था के बारे में लिखते हैं कि *"वृद्धावस्था जीवन की शाम है। इस शाम के गहराने के साथ ही वृद्धावस्था से जुड़ी अनेक समस्याएँ सर उठाने लगती हैं और जीवन की यह शाम बोझिल होने लगती है। वस्तुत वृद्धावस्था अपने आप में एक ऐसी बीमारी है, जिससे उबार पाना इस उम्र में संभव नहीं हो पाता।"*

उक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि वृद्धावस्था एक समस्या है। विद्वानों के परिभाषाओं से निम्न बिंदु निकल कर सामने आते हैं-

1. वृद्धावस्था शारीरिक, मानसिक क्षमताओं के ह्रास की अवस्था है
2. वृद्धावस्था को दो रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है- जरागमन और जराजीर्ण
3. वृद्धावस्था एक ख़ास आयु वर्ग का स्थायी भाव है
4. वृद्धावस्था समस्याओं का जटिल(Complex) रूप है
5. वृद्धावस्था मानवीय जीवन का यथार्थ है

3.3 वृद्धावस्था की समस्याएँ

वृद्धावस्था की खास समस्याएँ होती है, जो इसी उम्र में सर उठाने लगती है। इस अवस्था में व्यक्ति कार्य से अवकाश प्राप्त कर चुका होता है, जिसका कारण होता है उसका शारीरिक ह्रास। आपने ऐसे कई नौकरी-पेशा में लोग देखें होंगे, जिन्हें शारीरिक अक्षमता के कारण इस उम्र में सेवा मुक्त किया गया हो। जैसे-आँखों की रोशनी का कम होना, चलने में तकलीफ होना, घुटनों में दर्द होनाआदि समस्याओं के कारण इस उम्र में उन्हें न चाहते हुए भी कार्य से मुक्ति लेनी पड़ती हैं। ऐसे में इस आयु वर्ग के लोगों के पास बहुत सारा खाली समय होता है, जिसको बिताना स्वयं में एक समस्या है। पाचन प्रक्रिया, रक्तसंचार प्रक्रिया जैसे अनेक शारीरिक प्रक्रियाओं कामंद होना या धीमा होना इस उम्र की प्रमुख शारीरिक समस्या है। उनकी देखने, सुनने, स्वाद तथा निद्रा जैसे क्षमताओं में धीमापन आने लगता है। ऐसे कई सारी शारीरिक समस्याओं के साथ वृद्ध अपना जीवन बिताते हैं। पारंपरिक समाज में ऐसे व्यक्तियों की देखभाल के लिए संयुक्तपरिवार में ख़ास जगह हुआ करती थी, जिसे एकल परिवार ने ख़त्म कर दिया है। आधुनिक समाज में परिवार से वृद्ध धीरे-धीरे गायब होने लगें है। उनके लिए घरों में जगह नहीं है जैसे पहले हुआ करती थी। यही कारण है कि आज वृद्धों की समस्या ने भारत जैसे विकासशील समाज में विकरालस्वरूप धारण किया है। *संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष*का यह आकलन है कि वर्ष 2050 तक समूचे विश्व के प्रत्येक छः सर्वाधिक बुजुर्गों में से एक भारतीय होगा।

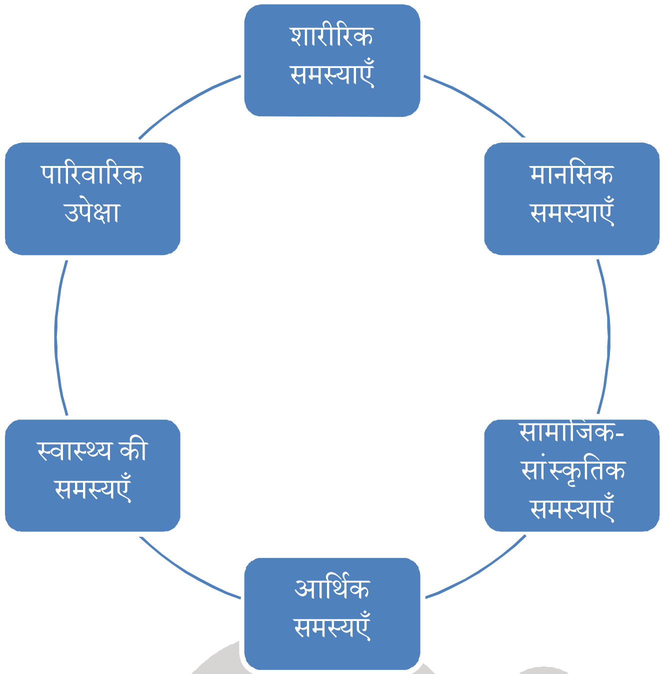

मानसिक समस्याएँ:- व्यक्ति के शरीर में बाहरी कारकों से प्राप्त सूचनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाने के लिए तंत्रिका तंत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।*विकासात्मक मनोविज्ञान* में हम देखते हैं कि इस अवस्था में व्यक्ति के व्यक्तित्व में नए प्रतिमान बनने की प्रकिया धीमी हो जाती है और शरीर ह्रासोन्मुख होता है। ऐसे में बाह्य पर्यावरण की सूचनाओं को ग्रहण करने में वे कमज़ोरीमहसूस करने लगते है। इंद्रियों की क्षमता में गिरावट के कारण सामान्य जीवनयापन करना उनके लिए मुश्किल हो जाता है। अपने इन शारीरिक कमजोरियों के कारण वे मुख्य धारा के समाज से अलग हो जाते है जिसका रूपांतरण अकेलेपन के वृद्धि से होता है। अत्याधिक खाली समय और अकेलापन उनमें तनाव की स्थितियाँ पैदा करता है। उनमें चिडचिडापन, भूलना, जैसे समस्याओं के निर्माण में सहायक वातावरण पैदा होने लगता है। सांवेगिक क्षमता की कमी और गलत प्रत्यक्षीकरण उनमें भ्रम की स्थितियाँ उत्पन्न करती है। साथ ही वृद्धावस्था में मुख्य भय होता हैमृत्यु का और उसके लिए वह व्यक्ति तैयार नहीं होता है। इस कारण वह प्रत्येक को संशय की नज़र से देखने लगता है। दूसरी ओर पालनकर्ता पराश्रित होने की इस भूमिका के लिए वे तैयार नहीं होते हैं। बावजूद पारिवारिक उपेक्षा उनमें हीनता ग्रंथि को बढ़ाने में कारगर बन जाती है। वृद्धावस्था स्वयं में अवमूल्यन की अवस्था होती है जिसके कारण इस अवस्था में व्यक्ति का अवमूल्यन बढ़ जाता है। ऐसे में व्यक्ति का स्वयं के प्रति आत्मअवमूल्यन भी बढ़ जाता है। क्या था और क्या हुआ? जैसे प्रश्नों से यह अवस्था लगातार गहराती जाती है, जिससे शरीर और बुद्धि के बीच तादात्म्य नहीं बैठ पाता और समस्याएँ सर उठाने लगती है, जैसे-लगातार बडबडाना, बेमतलब की बातें करना, आदि समस्याएँ इसमें शामिल हैं। साथी के गुज़र जाने के बाद इन समस्याओं में और भी बढ़ोतरी होने लगती है।

सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएं:- पारंपरिक समाज में वृद्धों के लिए ख़ास जगह थी। इनके जीवन अनुभवों की आवश्यकता को उस समय में महसूस किया जाता था, किंतु औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण जैसे तमाम परिवर्तनों ने परिवार, समुदाय, समाज तथा राष्ट्र के बुनियादी ढाँचे में परिवर्तन की माँग की, जिसमें वृद्ध अपने आप हाशिए पर चले गए। एक समय में बुजुर्गों के सलाह के बगैर घर के कोई काम नहीं होता था, किंतु सूचना क्रांति ने उनके इस अस्तित्व पर आघात किया है। बुजुर्ग जहाँ एक विरासत के रूप में स्थापित थे उनकी जगह भरने के लिए आज बहुत सारे विकल्प मौजूद है। किसी भी राष्ट्र के विकास के विकास में इस अनुत्पादक इकाई के सहभागिता को शून्य में मापा जाता है। ऐसे में कोई भी राष्ट्र यह चाहेगा कि इस आयु वर्ग की जनसंख्या कम ही हो। क्योंकि इसका अधिक भार बाकी आयु वर्ग के लोगों को उठाना पड़ता है। ऐसे में अपनी अक्षमताओं के कारण अलग-थलग पड़े इस आयु वर्ग के लोगों का सामाजिक-सांस्कृतिक अवमूल्यन होना तय है।

आर्थिक समस्याएँ:- वृद्धावस्था में व्यक्ति की शारीरिक क्षमताओं के ह्रास के कारण वे स्वयं आर्थिक रूप से मजबूत नहीं हो पाते हैं। ऐसे में उनके सामने तमाम प्रकार की आर्थिक समस्याएँ सर उठाने लगती हैं। वे पहले जैसे उत्पादक न होने के कारण अपना जीवन यापन स्वयं नहीं कर पाते और युवा तथा प्रौढ़ावस्था में प्राप्त पूँजी का उपयोग वे अपने बच्चों के पालन-पोषण में कर चुके होते हैं। इसी समय में अगर वे अपनी पूँजी में से कुछ अपनी वृद्धावस्था के लिए बचाएँ रखते हैं तो ऐसे वृद्धों के सामने आर्थिक समस्या कम ही आती है, लेकिन परिवार के बोझ तले वे अपने भविष्य के बारें में नहीं सोच पाते। ऐसे समय में जब वे अनुत्पादक हो चुके है उनके बच्चे एक स्पर्धा का हिस्सा हैं जिसमें आगे बढ़ने के लिए लगातार आर्थिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है। तब वे अपने माता-पिता को अपने आर्थिक गणित में जोड़ना भूल जाते हैं। वृद्धावस्था में बच्चों पर आश्रितता बढ़ जाती हैं छोटी-मोटी जरूरतों के लिए भी उन्हें दूसरों के सामने हाथ फैलाने पड़ते हैं। कई बार देखा गया है कि जिन वृद्धों के पास धन-संपत्ति हैं, तब तक उनकी खूब अच्छे से देखभाल हो रही है। साथ में यह भी देखा होगा कि माता-पिता की धन-संपत्ति हथियाने के लिए उनके रोज़मर्रा के जीवन को नरक बना दिया जाता है, जिससे हताश होकर कई वृद्ध अपने घरों को त्यागने पर मजबूर हो जाते हैं। दूसरी तरफ ऐसे कई सारे मामले दिखते हैं जिसमें वित्तीय कमी के कारण स्वास्थ्य सेवाओं से उन्हें वंचित रहना पड़ता है। वृद्धावस्था आर्थिक रूप से अनुत्पादकता की अवस्था होने के कारण किसी भी प्रकार की बाहरी आर्थिक सहायता को प्राप्त करने में वृद्ध असमर्थ होता है। ऐसे में उनका जीवन और भी दुखद और दयनीय बन जाता है।

स्वास्थ्य की समस्याएँ:- जैसे कि वृद्धावस्था की परिभाषा में ही निहित है कि वृद्धावस्था स्वयं एक बीमारी की अवस्था है। ऐसे में उन्हें ख़ास देखभाल की आवश्यकता होती है। उनका स्वास्थ्य ठीक हो तो वृद्धावस्था का बोझ सहनीय हो जाता है, किंतु विभिन्न सर्वेक्षण बताते हैं कि वृद्धोंका एक बड़ा हिस्सा मधुमेह, दृष्टि-दोष, आर्थरायटिस, रक्तचाप जैसे बीमारियों का शिकार बन जाता है। पॉल वी. लैंकर ने वृद्धों की शरीरिक अवस्था का वर्णन करते हुए कहा है कि वृद्धावस्था में शारीरिक गिरावट की गति अपेक्षाकृत

तेज हो जाती है और लंबी बीमारी तथा अक्षमताओं की उपस्थिति में वृद्धि हो जाती है। रक्त संचार प्रणाली, जो कि शरीर की विभिन्न प्रणालियों के नियमित संचालन को सुनिश्चित करती है कि क्षमता में उम्र बढ़ने के साथ शरीर में शिथिलता आती है और वृद्ध व्यक्ति को स्वयं आंतरिक और बाह्य पर्यावरण में परिवर्तन से दबाव महसूस होता है। प्रायः साठ वर्ष से उपर के व्यक्ति में शारीरिक शक्ति की आवश्यकताओं में कमीं आने से माँसपेशियों की गतिविधियों में भी कमी आने लगती है और उसकी पाचन प्रणाली कमज़ोर होने लगती है। इस अवस्था में ऑक्सीजन की खपत भी घटने लगती है। वृद्ध अवस्था में मलमूत्र प्रणाली संबंधित शिथिलता भी आ सकती है और इन पर नियंत्रण कमज़ोर हो जाता है। वृद्ध व्यक्तियों की चलने-फिरने की क्षमता कम हो जाती है, जिससे वे पराश्रित हो जाते है। वृद्ध व्यक्तियों में रोगप्रतिकारक क्षमता की कमी के कारण वे जल्द ही किसी भी बीमारी के शिकार हो जाते है। तथा उनकी बीमारी को ठीक होने में अन्य की अपेक्षा ज़्यादा समय लगता है। अगर वे ठीक हो जाते है तो रोगमुक्ति के बाद उनके संवर्धन की गति धीमी हो जाती है। उनकी स्वाद शाक्ति में कमीआने के कारण भोजन सुरस नहीं लगता, जिससे पाचन में कठिनाई होती है। वय वृद्धि के साथ-साथ व्यक्ति से भूल होने की संभवना बढ़ जाती है। ऐसे में इनके लिए उपचार के साथ-साथ देखभाल भी जरुरी होती है। किंतु बहुत से परिवार के लोग वृद्धों की बीमारियों को बीमारी न मानकर 'प्राकृतिक नियम' मान कर उनके उपचार के प्रति सजग नहीं होते या फिर आर्थिक समस्या के कारण वे वृद्धों के उपचार पर खर्च नहीं करना चाहते। ऐसे में वृद्ध भी कभी-कभार अपनी आर्थिक स्वतंत्रता खोने के कारण स्वाभिमानी मृत्यु की अपेक्षा रखने लगते है। छिट-पुट बीमारियों को अनदेखा करने के कारण उनकी बीमारियाँ भयंकर रूप धारण कर लेती है। ऐसे में उपचार संसाधनों की कमी, परिवार का निम्नस्तरीय आर्थिक ढाँचा आदि कारण से वे मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

पारिवारिक उपेक्षा:- भारत के केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, पंजाब और हिमाचल प्रदेश में हेल्पऐज इंडिया द्वारा किए गए अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है किइन राज्यों में कुल वृद्धों की जनसंख्या का लगभग 20 प्रतिशत अकेले ही जीवनयापन कर रहा है। पिछले दो दशकों में इस अनुपात में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। इसमें भी महिलाओं के मामले में यह वृद्धि अधिक पाई गई है। वृद्धावस्था ऐसी अवस्था होती है, जिसमें परिवार के सहारे की अपेक्षा बढ़ जाती है। ऐसे में उन्हें सहारा न मिलने के कारण या परिवार के सदस्यों द्वारा उनकी उपेक्षा करने के कारण उनकी स्थितियाँ अत्यंत दयनीय हो जाती है। परिवार में अपमान, प्रताड़ना और विभिन्न प्रकार का शोषण लगातार होने के कारण उनमें विभिन्न विकार उत्पन्न होने की संभावना होती है। 2011 के आँकड़े बताते हैं कि पिछले एक दशक में आवासों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। औद्योगीकरण और प्रवासन के कारण युवा वर्ग अपने वृद्ध माता-पिता को अकेले छोड़ने के लिए मजबूर है। शहरों के घरों से वृद्ध धीरे-धीरे गायब हो रहें हैं, क्योंकि उनकी ज़िम्मेदारी लेनेवाला या उनकी देखभाल करने के लिए परिवार में कोई सदस्य उपलब्ध नहीं हैं।

ऐसे कई कारणों से परिवार में वृद्धों की उपेक्षा लगातार हो रही है या इसके लिए परिवार के सदस्य मजबूर हैं। हिंदी फ़िल्म *'पेइंग गेस्ट'* तथा *'पीकु'* में वृद्धों की पारिवारिक उपेक्षा को बेहतर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। आर्थिक स्वतंत्रता के ख़त्म होने के कारण उनको अपने परिवार पर निर्भर होना पड़ता है, किंतु ऐसे में उनके प्रति परिवार के सदस्यों का गैर-ज़िम्मेदार होना वृद्धों के लिए किसी आघात से कम नहीं है।

राम अहुजा (2016) अपनी पुस्तक *सामाजिक समस्याएँ* में *वृद्धावस्था और वृद्धों से दुर्व्यवहार में* वृद्धावस्था की समस्याओं को निम्नलिखित रूप से रेखांकित करते हैं

1. स्वास्थ्य में गिरावट
2. आर्थिक सुरक्षा
3. पृथकता/अलगाव
4. उपेक्षा
5. दुर्व्यवहार
6. भय
7. बोरियत
8. आत्म सम्मान की कमी
9. नियंत्रण की कमी
10. वृद्धावस्था के लिए तैयारी की कमी

इसके साथ ही वृद्धों के साथ होने वाले दुराचारों के प्रकारों को भी वे दर्शाते हैं जिसमें निम्नलिखित 6 प्रकार के मुख्य दुराचार भारतीय परिप्रेक्ष्य में दिखाई देते हैं

1. **शारीरिक शोषण:-** उदाहरण के लिए खरोंच, कांटना, थप्पड़ मारना, धक्का देना, मारना, जलाना तथा हथियार से वार या धमकी आदि शामिल हैं।
2. **यौन शोषण:-** अपमानजनक यौन संपर्क, बुजुर्गों के मर्जी के खिलाफ़ जानबूझकर सीधे जनानांग, गुदा, कमर, स्तन, मुँह, जांघ, नितंबों को छूना या उसके साथ छेड़खानी करना आदि।
3. **आवश्यकताओं पर रोक लगाना तथा संपत्ति को हानि पहुँचाना:-** इसमें धमकी कार्य, आक्रामक रणनीति, आघात का अनुभव, मानसिक-भावात्मक शोषण, अपमान या शर्मिंदगी, व्यवहार नियंत्रित करना (परिवहन, टेलीफोन, पैसा या अन्य संसाधनों के उपयोग पर रोक लगाना), सामाजिक अलगाव, बहिष्कार आदि इसमें शामिल है।
4. **आवश्यकताओं की उपेक्षा:-** एक बूढ़े व्यक्ति की शारीरिक-भावात्मक या सामाजिक जरूरतों को पूरा करने के लिए देखभाल करने वाले या अन्य ज़िम्मेदार व्यक्ति की विफलता या इनकार इसी उपेक्षा के अंतर्गत आती है। उदाहरण के तौर पर पर्याप्त पोषण, स्वच्छता, वस्त्र, आवास, या आवश्यक स्वास्थ्य देखभाल या सुरक्षित वातावरण आदि के प्राप्ति में अवरोध खड़े करना।

ज्ञान शांति मैत्री

5. **परित्याग:-** देखभालकर्ता या अन्य ज़िम्मेदार व्यक्ति द्वारा वृद्धों का जान-बूझकर परित्याग करना इसमें शामिल हैं।
6. **आर्थिक शोषण:-** मौद्रिक दुरूपयोग, व्यक्तिगत लाभ के लिए संसाधनों का अनुचित अनधिकृत दुरूपयोग। उदाहरण के लिए जालसाजी, पैसे या संपत्ति की चोरी, वित्त या संपत्ति का आत्मसमर्पण कराने के लिए बलात्कार या धोखे का उपयोग, संरक्षणकर्ता या वकीलों की शक्ति का अनुचित उपयोग आदि।

हेल्पऐज इंडिया द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार भारत में बुजुर्गों के प्रतिदुर्व्यवहार की मात्रा में लगातार वृद्धि दर्ज हुई है। हेल्पऐज इंडिया के2012 के सर्वेक्षण के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में वृद्धों के प्रति दुर्व्यवहार की स्थिति को निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है

राज्य	***बुजुर्गों के प्रति दुर्व्यवहार के अस्तित्व की स्थिति*** *(प्रतिशत में)*
मध्य प्रदेश	77.12
असम	60.55
उत्तर प्रदेश	52.00
गुजरात	42.97
आंध्र प्रदेश	42.86
पश्चिम बंगाल	40.93
कर्नाटक	37.14
जम्मू कश्मीर	33.50
चंडीगढ़(UT)	32.17
दिल्ली(UT)	29.82
महाराष्ट्र	29.46
तमिलनाडु	27.56
बिहार	25.65
ओडिशा	23.31
पदुचेरी	18.62
उत्तराखंड	13.31
गोवा	11.39
केरल	10.98
हिमाचल प्रदेश	2.99

राजस्थान	1.67
भारत	**31.13**

स्रोत:-हेल्पऐज इंडिया, 2012 सर्वेक्षण.

3.4 वृद्धकल्याण तथा सेवाएं

वृद्ध की सेवा करना भारतीय परिदृश्य में कोई नई बात नहीं है। वैसे भी विश्वभर के तमाम धर्मों में वृद्ध सेवा मानवीय कर्तव्य का महत्वपूर्ण पक्ष माना गया है। हिंदू धर्म के साहित्य में उल्लेख मिलता है कि वृद्धों के लिए आश्रम प्रणाली में वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के अंतर्गत जीवन यापन करने पर बल दिया गया था। तथा विभिन्न धर्म ग्रंथो में जैसे मनुस्मृति, शुक्रनीति और महाभारत में वृद्धों की भोजन और सेवा आदि से संबंधित अनेक रूपों में विभिन्न प्रकार से सेवा करने के निर्देश दिए गए हैं। मुस्लिम धर्म में वृद्धों की आवश्यकता पूर्ति धर्म निर्देशित उपकार कार्यों के अंतर्गत जकात और खैरात के रूपमें की जाती है। औद्योगिक युग ने समाजों को समृद्धि दी और समृद्धि ने व्यक्ति को अनेक आलंबन प्रदान कर दीर्घ जीवन दिया। स्वास्थ्य शिक्षा और मानसिक संतुलन के अनेक साधनों का विकास और प्रसार होने से व्यक्ति के जीवन की दीर्घकालिक संभावना बढ़ी है और समाज में वृद्धावस्था के व्यक्तियों की संख्या भी बढ़ी है फलतः उनके कल्याण के कार्यों की व्यापकता तथा भौतिकता में भी विकास और प्रसार हुआ है। इसके अतिरिक्त वृद्ध एवं उनके लिए सेवाकार्यों की मान्यता में बढ़ोतरी हुई है और इसके कारण भी वृद्ध कल्याण की अनेक सेवाएँ संचालित एवं बढ़ाई जा रही है। आधुनिकीकरण के दौर में पुराने मूल्य ढहते नज़र आते हैं, जिसमें वृद्धों के कल्याण की बात सामने आने लगती है। भारत में वृद्धों की एक बड़ी संख्या निवास करती है और उनके कल्याण पर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है। वृद्ध और जराजर्जरित व्यक्तियों की संगठित या संस्थागत सहायता के कार्य की शुरूआत1840 से मानी जा सकती हैं। इस साल बैंगलोर में *'दि फ्रेंड इन नीड'* नामक संस्था खुली, जिसने इस श्रेणी के व्यक्तियों की देखभाल का कार्य किया। इसके बाद पूना में 1865 में *डेविड सैसून इनफर्म एसायलम* खुला। फिर 1882 में कलकत्ता में एक ऐसी ही संस्था खुली जिसने अनेक राज्यों तथा नगरों में अपनी शाखाएँ खोली। फिर और भी अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं का आस्तित्व सामने आया।1951 तक ऐसी कुल नौं संस्थाएँ थी। राष्ट्रीय स्तर पर सन1961 तक इस क्षेत्र में कोई प्रयास नहीं किया गया। कई राज्य सरकारों ने वृद्ध पेंशन योजनाएँ चलाई, जिनमें कि वृद्धों को आजीवन या कुछ वर्षों तक के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है। दूसरी योजना अवधि में दिल्ली देहरादून कलकत्ता तथा पूना में कुल चार और महत्वपूर्ण इसी क्षेत्र के गृह स्थापित हुए। कई स्थानीय सरकारों ने भी वृद्धों की सहायता के कार्यक्रम चलाए। वृद्धों के मनोरंजन, स्वास्थ्य, आवास, भोजन तथा रखरखाव के तमाम कार्यो द्वारा भारत में इनकी ओर ध्यान दिया गया। इसके बावजूद 60 के दशक में देश के विभिन्न राज्यों में वृद्ध पेंशन योजनाएँ चलाई जाने लगी। इस समय में वृद्ध कल्याण इन समान्य प्रयासों से आगे नहीं बढ़ पाया।

राष्ट्रीय वृद्धजन नीति- (1999)

सन् **(1999)** में पहली बार सामाजिक न्याय एवं सशक्तिकरण मंत्रालय ने**'*राष्ट्रीय वृद्धजन नीति*'** का निर्माण किया और वृद्ध कल्याण कार्यों में तेजी आई। सन 1991 में भारत की वृद्ध जनसंख्या 5.7 करोड़ हो चुकी थी, जो स्वतंत्रता के बाद 1951 में 2 करोड़ के आस-पास थी। इस जनसांख्यिकीय वृद्धि ने नीति निर्माताओं को आकर्षित कर लिया था। साथ ही1991 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वृद्ध जनों के लिए संयुक्त राष्ट्र नीति अपनाई गई थी इसका प्रभाव भी भारत की इस नीति निर्माण मेंदिखता है। इस नीति का प्रमुख उद्देश्य बुजुर्गों की समस्याओं संबंधी मुद्दों को व्यापक रूप से समाधान किया जाना था। इस नीति में निम्नलिखित प्रावधान किया गया-

*भारत के संविधान में वृद्धजनों के कल्याण का प्रावधान है। राज्य के नीति निर्देशित तत्त्व(अनूच्छेद 41) के अनुसार राज्य अपनी आर्थिक क्षमता एवं विकास को ध्यान में रखते हुए वृद्धजनों हेतु सरकारी सहायता का अधिकार सुनिश्चित करेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रावधान भी है, जो राज्य को निर्देशित करते हैं कि वह अपने नागरिकों के जीवन में गुणात्मक सुधार लाएं। हमारे संविधा में समानता का अधिकार एक मौलिक अधिकार है। इसके प्रावधान वृद्धों के लिए भी प्रभावी है और सामाजिक सुरक्षा का दायित्व राज्य एवं केंद्र सरकारों पर समान रूप से है।*इस नीति के अंतर्गत मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं

- आर्थिक सुरक्षा
- स्वास्थ्य की देखभाल एवं पोषण
- शिक्षा
- **कल्याण कार्य:-** इसके अंतर्गत निःसहाय वृद्धों की पहचान कर, जो गरीब, विकलांग, रोगी अथवा जटिल रोग से ग्रस्त हैं और, जिन्हें परिवार का सहयोग भी प्राप्त नहीं होता है उन्हें प्राथमिकता के आधार पर कल्याणकारी सेवा देने का आश्वासन इस नीति में हैं। वृद्धाश्रमों का निर्माण, स्वैच्छिक और गैर-संस्थागत सेवाओं को प्रोत्साहन, कल्याण कोष का निर्माण, आदि को शामिल किया गया।
- जीवन एवं संपत्ति की सुरक्षा।

इन प्रमुख क्षेत्रों के बावजूद अन्य कार्यक्षेत्र निम्नवत थे

पहचान पत्र जारी करना, यातायात में छूट, यातायात में आरक्षण, यातायात गाड़ियों में सुलभ प्रवेश और निर्गमन के लिए आवश्यक परिवर्तन आदि। 15जून को राष्ट्रीय वृद्धजन दिवस तथा वर्ष2000 को राष्ट्रीय वृद्धजन वर्ष घोषित किया गया।

इस नीति में वृद्धजन कल्याण के लिए गैर-सरकारी संगठनों की आवश्यकता को महसूस किया गया। प्रसार माध्यमों के सहयोग और वृद्धजन के लिए अनुसंधान का क्षेत्र खोला गया।

वरिष्ठ नागरिक अधिनियम 2007

ज्ञान शांति मैत्री

सन 2007 में भारत में वृद्धों के कल्याण के लिए तथा नीति को अधिक प्रभावशीलता प्रदान करने हेतु माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के लिए भरण-पोषण तथा कल्याण अधिनियम लागू किया गया। जैसे कि इस अधिनियम में लिखा गया है, *संविधान के अधीन गारंटीकृत और मान्यताप्राप्त माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के लिए भरण-पोषण तथा कल्याण के लिए अधिक प्रभावी उपबंधों का और उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम*है। इस अधिनियम को 29 दिसंबर 2007 से जम्मू कश्मीर के सिवाय संपूर्ण भारत और साथ ही भारत के बाहर भारत के नागरिकों पर लागू किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत *कल्याण* से तात्पर्य है कि *वरिष्ठ नागरिकों के लिए आवश्यक आहार, स्वास्थ्य देखरेख, आमोद-प्रमोद केंद्रों और अन्य सुख-सुविधाओं कीव्यवस्था करना।*

इस अधिनयम में निम्नलिखित बिंदु महत्वपूर्ण हैं

- माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण
- वृद्ध आश्रमों की व्यवस्था
- वरिष्ठ नागरिकों की चिकित्सकीय देखरेख के लिए उपबंध
- वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा
- अपराध और विचारण के लिए प्रक्रिया।

वरिष्ठ नागरिक अधिनियम 2007 के द्वितीय अध्याय में, जो माता-पिता और वरिष्ठ नागरिक स्वयं के अर्जन से या स्वामित्वाधीन संपत्ति में से भरण पोषण नहीं कर सकते ऐसे में उनके भरण पोषण के लिए प्रावधान किया गया है। वे अपने बच्चों से अपने रखरखाव के लिए आवेदन कर सकतेहैं। तृतीय अध्याय में वृद्धाश्रमों की स्थापना के लिए प्रावधान किया गया है। इसके अंतर्गत राज्य सरकार प्रत्येक जिले में कम-से-कम एक वृद्धाश्रम स्थापन करेगी, जिसमें न्यूनतम एक सौ पचास ऐसे वरिष्ठ नागरिकों को आवास सुविधा दी जा सके, जो निर्धन हैं। चतुर्थ अध्यायमें वरिष्ठ नागरिकों की चिकित्सकीय देखभाल के लिए उपबंध हैं, जिसमें यह निहित है कि सरकारी अस्पताल या सरकार द्वारा पूर्णत या भागत: वित्तपोषित अस्पताल, सभी वरिष्ठ नागरिकों को यथासंभव बिस्तर प्रदान करेंगे; उनके लिए पृथक पक्तियों की व्यवस्था की जाएगी; चिरंतन, जानलेवा और ह्रासी रोगों के उपचार के लिए सुविधाएँ प्रदान करना तथा अनुसंधान करना तथा जराचिकित्सकीय देखरेख में अनुभव रखने वाले चिकित्सा अधिकारी की अध्यक्षता वाले प्रत्येक जिला अस्पताल में जराचिकित्सा के रोगियों के लिए निर्दिष्ट सुविधाएँ निशुल्क प्रदान करना। अध्याय पाँच में वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की संरक्षा के लिए प्रावधान है, इसके सुनिश्चिती के लिए राज्य सरकारें उपाय करेंगी। इसके लिए वे जनमाध्यमों के अंतर्गत व्यापक प्रचार करेगी, केन्द्रीय और राज्य अधिकारियों को अधिनियम संबधित प्रशिक्षण देना निहितहै। अध्याय छ: में वरिष्ठ नागरिकों के प्रति होने वाले अपराध के विरुद्ध दंड का प्रावधान*अपराध और विचारण के लिए प्रक्रिया* के अंतर्गत किया गया है।

वृद्धों की संवैधानिक सुरक्षा

अगर वे बहुत पहले से जिस आवास में रह रहें है ऐसे माता-पिता को उनके आवास से बिना विहित विधिक प्रक्रिया के नहीं हटाया जा सकता। इसके लिए सीआरपीसी, भरण-पोषण अधिनियम एवं घरेलू हिंसा अधिनियम में प्रावधान किए गए हैं।

सीआरपीसी की धारा 125 के अनुसार सक्षम न्यायाधीश माता-पिता के भरण पोषण प्रावधान के अंतर्गत संतान को उनके माता-पिता की देखभाल की आज्ञा दे सकते हैं।

हिंदू उत्तराधिकार और भरणपोषण अधिनियम के अनुसार, वरिष्ठ माता-पिता अपनी संतान से वैसे ही रख-रखाव की मांग कर सकते हैं जैसे कि एक पत्नी अपने पति से रखती है।

वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय परिषद्

सन 1999 की राष्ट्रीय वृद्धजन नीति में इस राष्ट्रीय परिषद् के निर्माण का स्रोत हैं। 1999 के राष्ट्रीय वृद्धजन नीति के क्रियान्वयन की निगरानी के लिए इस परिषद् का गठन किया गया। यह परिषद् वृद्धों के लिए नीति तैयार करने और उनके लिए कार्यक्रम तैयार करने तथा उसके क्रियान्वयन में सरकार को सलाह देने के लिए सर्वोच्च संस्था हैं। वर्ष 2005 में परिषद् में केंद्र और राज्य सरकारों को शामिल कर फिर से गठित किया गया। इसके सदस्यों में गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि, नागरी समूहों, सेवानिवृत्त व्यक्तियों, संघों और कानून, समाज कल्याण और चिकित्सा के क्षेत्र में विशेषज्ञता हासिल व्यक्तियों को सदस्य के रूप में शामिल किया गया है।

वृद्ध कल्याण के लिए कार्यक्रम

वृद्ध व्यक्तियों की विभिन्न आवश्यकताओं के पूर्ति के लिए 992 के बाद से एकीकृत कार्यक्रमों को लागू किया जाने लगा। इसके माध्यम से सरकारी संगठनों, गैर-सरकारी संगठनों, पंचायत राज संस्थाओं, स्थानीय निकायों तथा समुदाय में बड़े पैमाने पर क्षमता निर्माण का प्रयास किया गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत गैर-सरकारी संगठनों को वृद्धाश्रम, डे केयर सेंटर और मोबाइल चिकित्सा इकाइयों के लिए परियोजना लागत की 90 प्रतिशत तक वित्तीय सहायता प्रदान की गई। इस योजना को 2008 में संशोधित कर राशि में वृद्धि तथा नवीन परियोजनाओं को इसमेंजोड़ा गया। वर्ष 2007-08 के दौरान देशभर के पचास हजार के आसपास लाभार्थियों को 660 कार्यक्रमों की सहायता से 16 करोड़ रूपए खर्च कर लाभान्वित किया गया। इसके अलावा विभिन्न केंद्रीय मंत्रालयों जैसे स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, ग्रामीण विकास, रेलवे, वित्त, नगर विमानन, पेंशन और पेंशनभोगी शिकायत इत्यादि विभागों ने अपने सेवानिवृत्त कर्मचारियों के लाभ के लिए स्वयं विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया। साथ ही15 अगस्त 1995 में शुरू राष्ट्रीय सहायता कार्यक्रम, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना जैसी योजनाएँ संशोधन के बाद लगातार वृद्धों के कल्याण के लिए चलाई जा रही है।

भारत में वृद्ध जनसंख्या लगातार बढती हुई नज़र आती है। आँकड़े बताते हैं कि2001 में भारत में वृद्ध जनसंख्या 7.4 प्रतिशत थी, जो 2011 में बढ़कर 8.0 हो गई है। इस लगातार बढ़ने वाली वृद्ध जनसंख्या

को सभी सुविधाएँ प्रदान करने की क्षमता भारत जैसा विकासशील देश नहीं रखता। वृद्धों की सभी समस्याएँ प्राथमिकता वाली होने के कारण उनके किसी भी समस्या को अनदेखा नहीं किया जा सकता। ऐसे में विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत उनकी समस्याओं का समाधान करने की कोशिश जारी है।

3.5 वृद्धजन और समाज कार्य

वृद्ध जनसंख्या एक भेद्यतापूर्ण समूह है जिस पर किसी भी प्रकार के संकट का सीधा असर होता है। ऐसे में समाज कार्य इस लक्षित समूह को सहायता देने की क्षमता रखता है। अभ्यास (Practice) के रूप में समाज कार्य ने वृद्धों के कल्याण के लिए काफ़ी पहले से कार्य शुरू किया है जिसके बारे में इस इकाई के शुरुआत में ही हम बात कर चुके हैं। बावजूद इसके पिछले कुछ दशकों में वृद्धों की समस्याओं को देखने का नज़रिया बदला है। यही कारण है कि जराविज्ञान जैसी शाखाओं का निर्माण हुआ। समाज कार्य इससे अछूता नहीं रहा, समाज कार्य में हम देखते है कि वह जराविज्ञान समाज कार्य के रूप में एक क्षेत्र धारण कर चुका है। इस क्षेत्र के अंतर्गत इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि वृद्धजनों की समस्याएँ सामान्य समस्याएँ नहीं है। उसके समाधान के लिए सामाजिक कार्यकर्ता के पास विशेष कौशलों और विशेषज्ञता की आवश्यकता को महसूस किया गया। सुषमा बत्रा और काकोली भौमिक(2007) द्वारा भारत में किया गया अध्ययन *इंटरजनरेशनल रिलेशनशिप : ए स्टडी ऑफ़ थ्री जनरेशन* के अनुसार भारत के संदर्भ में वृद्धजनों की समस्याओं को लेकर हस्तक्षेप के क्षेत्र निम्नवत हैं

वृद्धजनों की समस्या की वकालत

पीयर काउंसेलिंग

स्वास्थ्य संबंधी मुद्दे

समुदाय आधारित मुद्दे

राज्य का हस्तक्षेप

ये वे क्षेत्र हैं, जिनमें हस्तक्षेप कर वृद्धों को सेवा-सहयोग प्रदान किया जा सकता है। विद्वानों का मानना है कि वृद्धावस्था की तैयारी कर ले तो वृद्धों के लिए यह अवस्था कठिन नहीं होगी। ऐसे में इन संभावनाओं को रूप देने का कार्य समाज- कार्य कर सकता है। जागरूकता, शिक्षण, तथा क्षमता निर्माण के अंतर्गत समाज कार्य वृद्धजनों को वृद्धावस्था की तैयारी में सहयोग प्रदान कर, प्रदाता की भूमिका को बखूबी निभा सकते हैं।

भारतीय परिदृश्य में जराविज्ञान नया उभरता विषय है ऐसे में इसके प्रति जागरूकता और शिक्षण के माध्यम से समाज में इसके विस्तार का कार्य किया जाना अभी बाकी है। वृद्धावस्था की समस्याओं में भी लगातार प्रतिमान परिवर्तन हो रहें है ऐसे में नवीन जानकारी से लैस सामाजिक कार्यकर्ता उनको वृद्धावस्था जैसी दुःखद अवस्था को सुखद बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3.6 सारांश

ज्ञान शांति मैत्री

इस इकाई में हमने वृद्धावस्था, वृद्धावस्था की समस्याएँ और इसके समाधान के लिए तथा वृद्धजनों के कल्याण के लिए चलाए जाने वाले कार्यक्रमों को समझा। वृद्ध सेवा कोई नई परिघटना नहीं हैं, किंतु इसके प्रतिमान परिवर्तनों (Paradigm Shift) को समझना एक सामाजिक कार्यकर्ता के लिए अनिवार्य शर्त है। वृद्ध जनसंख्या समाज की रीढ़ की हड्डी होती है। उनके अनुभवों से कोई भी समाज संपन्न हो सकता है किंतु इस धरोहर के प्रति सामाजिक नज़रिया दिनो-दिन परिवर्तित हो रहा है। एकल परिवार, प्रवासन तथा युवाओं की बढती अपेक्षाओं के कारण वृद्धों की समस्याएँ विकराल रूप धारण कर रही है।

वृद्धों के कल्याण हेतु चलाए जाने वाले कार्यक्रमों तक वृद्धों की पहुँच न होने के कारण, जागरूकता की कमी तथा लालफीताशाही के कारण कई वृद्ध इन योजनाओं से वंचित है। गरीब तबके के वृद्ध जनसंख्या सड़कों पर भीख माँगने पर विवश है। सरकार द्वारा पेंशन योजनाओं में कटौती के कारण सेवानिवृत्ति के बाद कई सारे वृद्ध घर छोड़ने पर मजबूर हैं। गैर-सरकारी संगठन, स्वयंसेवी संगठन उनकी सहायता के लिए आगे आते हुए दिखाई देते हैं। भारत के परिदृश्य में हेल्पऐज इंडिया ने इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। सरकार पर दबाव बनाकर निर्माताओं का इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करने का कार्य इस संगठन ने बेहतरी से किया है। बावजूद इसके कई सारे मामले में परिवार के स्तर पर वृद्धों की उपेक्षा लगातार जारी है। इसके लिए, जो अधीनियम बनाएँ गए है, उनका उचित क्रियान्वयन अभी बाकी है। भारत में वृद्ध राज्य सरकार के क्षेत्र में आते है। इस कारण भिन्न-भिन्न राज्यों में उनकी स्थितियाँ भी अलग दिखाई पड़ती है। आँकड़े बताते हैं कि वृद्धों की समस्याएँ जहाँ ज़्यादा दर्ज की गई है, वह राज्य विकसित और उच्च-शिक्षित है। केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र जैसे प्रगतिशील राज्यों में वृद्धों के प्रति हिंसा में लगातार बढ़ोतरी देखी जा रही है।

इस पूरे आंकलन के बाद यह कहा जा सकता है कि भारत में वृद्धावस्था सेवाओं का स्वरूप अभी प्रारंभिक अवस्था में है इसे उचित मुकाम हासिल करने के लिए राजनीतिक पार्टियों, सरकारी संगठनों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, दबाव समूहों, स्वैच्छिक संगठनों आदि को एक होकर इस समस्या का समाधान करना होगा। तभी वृद्धजनों को उचित सेवा-सुविधाएँ उपलब्ध हो सकती हैं।

3.8 बोधप्रश्न

1. वृद्ध जनसंख्या पर विस्तार से चर्चा करें।
2. वृद्धावस्था से आप क्या समझते हैं, संक्षेप में समझाएँ।
3. वृद्धावस्था में आनेवाली समस्याओं पर विस्तार से प्रकाश डालें।
4. वृद्धावस्था एक बीमारी है, स्पष्ट करें।
5. राष्ट्रीय वृद्धजन नीति 1999 की समीक्षा करें।
6. भारत में वृद्धजनों के कल्याण हेतु चलाए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों पर प्रकाश डालें।
7. वृद्ध जन सहायता हेतु समाज कार्य की भूमिका का वर्णन करें।

3.8 संदर्भ ग्रंथ एवं अन्य पुस्तकें

Batra, S., & Bhoumik, K. (2007). Intergenerational Relationship: A Study of Three Generations. In K. L. Sharma (Ed.), *Studies in Gerontology : Intergenerational Perspectives* (pp. 45-60). jaipur: Rawat Publication.

Nagarajan, R. (2014, Oct. 1). *15 million elderly Indians live all alone: Census.* Retrieved from timesofindia.indiatimes.com: http://timesofindia.indiatimes.com/india/15-million-elderly-Indians-live-all-alone-Census/articleshow/43948392.cms

Sharma, K. L. (2009). *Dimentions of Ageing.* (K. L. Sharma, Ed.) New Delhi: Rawat Publication.

आहुजा, आर. (2016). *सामाजिक समस्याएँ.* नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

कुमार, गि. (2013). *समाज कार्य के क्षेत्र.*लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण पोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007. (2007). *राष्ट्रीय नीति*. गवर्मेंट ऑफ़ इंडिया

मिश्र, पी. (2013). *सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य* (8th ed.). लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

राष्ट्रीय वृद्धजन नीति. (1999). नई दिल्ली: सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार.

शर्मा, जी. एल. (2015). *सामाजिक मुद्दे.*नई दिल्ली: रावत प्रकाशन.

सिंह, आर. एन. (2010). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान.*आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन्स.

इकाई : 04 पर्यावरण विकास एवं आपदा प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 पर्यावरण
  4.2.1 प्राकृतिक पर्यावरण
4.3 पर्यावरण ह्रास की समस्याएँ
  4.3.1 वायु प्रदूषण
  4.3.2 जल प्रदूषण
  4.3.3 भूमि प्रदूषण
  4.3.4 प्रकाश प्रदूषण
  4.3.5 ध्वनि प्रदूषण
  4.3.6 रेडियोधर्मी प्रदूषण
4.4 पर्यावरण प्रबंधन
4.5 भारत में पर्यावरण प्रबंधन एवं विकास
4.6 भारत में पर्यावरण नीति तथा कानून
4.7 आपदा प्रबंधन
4.8 सारांश
4.9 बोध प्रश्न
4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट कर सकेंगे
2. पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों को रेखांकित कर सकेंगे
3. पर्यावरण विकास हेतु चलाए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों का वर्णन कर सकेंगे
4. पर्यावरण प्रबंधन के विभिन्न उपायों से अवगत हो सकेंगे
5. पर्यावरणीय नीति का अध्ययन कर सकेंगे
6. आपदा प्रबंधन की प्रक्रिया पर पहल कर सकेंगे

4.1 प्रस्तावना

वर्तमान परिपेक्ष्य में हम बात करें तो अभी तक के विकास में नकारात्मक परिणामों का अनुभव विश्व कर चुका है और लगभग अस्सी के दशक के मध्य से ही लोग विकास की प्रकृति के नकारात्मक प्रभाओं के प्रति सचेत हुए हैं। इसी का परिणाम है कि पर्यावरण विकास और आपदा प्रबंधन पर लगातार चर्चा-परिचर्चा हो रही है। रियो द जेनेरियो परिषद्, अंकटाड रिपोर्ट, सस्टेनेबल डेवेलपमेंट, आदि इसके प्रतिक्रिया के रूप में विश्वभर में चल रहें हैं। बढती जनसंख्या, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा नई आर्थिक नीतियों के कारण पिछले सदी में विश्वभर में प्राकृतिक संसाधनों का लगातार दोहन हुआ जिसका नतीजा यह हुआ कि ग्लोबल वार्मिंग, पारिस्थितिकीय बदलाव तथा तापमान में वृद्धि के साथ ऋतु चक्र में असंतुलन आने लगा है।

दूसरी ओर विकास के नाम पर बनाए गए बड़े बांध, पुल, औद्योगिक परियोजनाओं एवं भूक्षरण के कारण बाढ़, भूकंप, तूफ़ान-चक्रवात जैसी प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि हुई। साथ ही प्राकृतिक आपदाएँ, जिसमें महामारी, युद्ध, गैस त्रासदी, आण्विक रिसाव, अपघात आदि में भी लगातार वृद्धि हो रही है। ऐसे में इसका असर भी पर्यावरण पर पड़ने लगा। पर्यावरण की होने वाली इस क्षति ने बौद्धिक वर्ग, राजनीतिक नेताओं तथा नागरी समाज का ध्यान आकर्षित कर लिया है इसकेपरिणाम स्वरूप पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण-विज्ञान, पर्यावरण प्रबंधन, पर्यावरण विकास जैसी ज्ञान शाखाएँ सामने आने लगी। हाल में समाज कार्य के अंतर्गत पर्यावरण प्रबंधन एवं विकास तथा आपदा प्रबंधन कार्यक्षेत्र के रूप में विकसित हुआ है। ऐसे में सामाजिक कार्यकर्ता के लिए पर्यावरण का ज्ञान महत्वपूर्ण बन गया है।

इस इकाई में हम भारतीय परिदृश्य में चल रहे पर्यावरण प्रबंधन एवं विकास संबंधी क्रियाकलापों को समझने की कोशिश करेंगे। साथ ही आपदा प्रबंधन के अंतर्गत पर्यावरण विकास कैसे किया जाए, इस पर भी चर्चा करेंगे। पर्यावरण विकास करना हो तो उसके लिए आपदा प्रबंधन आवश्यक शर्त है। क्योंकि पर्यावरण विकास हमारा साध्य है तो आपदा प्रबंधन इस साध्य को प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन है। ऐसे में हम शुरुआत में पर्यावरण के सभी आयामों को समझने की कोशिश करेंगे तत्पश्चात आपदा प्रबंधन की प्रक्रिया पर चर्चा करते हुए पर्यावरण विकास को समझेंगे।

4.2 पर्यावरण

पर्यावरण शब्द संस्कृत भाषा के 'परि' उपसर्ग (चारों ओर) और 'आवरण' से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है ऐसी चीजों का समुच्चय, जो किसी व्यक्ति या जीवधारी को चारों ओर से आवृत्त किए हुए हैं। पारिस्थितिकी और भूगोल में यह शब्द अंग्रेजी के *Environment* के पर्याय के रूप में इस्तेमाल होता है। अंग्रेजी शब्द Environment स्वयं उपरोक्त पारिस्थितिकीय अर्थ में काफ़ी बाद में प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द शुरूआती दौर में आसपास की सामान्य दशाओं के लिए प्रयुक्त होता था। *ऑनलाइन इटिमोलोजी विश्वकोश* के अनुसार 1600 सदी के शुरुआत में फ्रांसीसी भाषा से उद्भूत यह शब्द "state of being environed" (see environ + -ment) के अर्थ में प्रयुक्त होता था और इसका पहला ज्ञात प्रयोग *कार्लाइल* (1956) द्वारा जर्मन शब्द Umgebung के अर्थ को फ्रांसीसी में व्यक्त करने के लिए हुआ।

ब्रिटेनिका विश्वकोश (2016) के अनुसार "पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत इकाई है, जो किसी जीवधारी अथवा पारितंत्रीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं।"

जमिसन डी. (Jamieson D.) (2007) के अनुसार *"सामान्यतः पर्यावरण को मनुष्य के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है और मनुष्य को एक अलग इकाई और उसके चारों ओर व्याप्त अन्य समस्त चीजों को उसका पर्यावरण घोषित कर दिया जाता है। किंतु यहाँ यह भी जरुरी है कि अभी भी इस धरती पर बहुत सी मानव सभ्यताएँ हैं, जो अपने को पर्यावरण से अलग नहीं मानतीं और उनकी नज़र में समस्त प्रकृति एक ही इकाई है जिसका मनुष्य भी एक हिस्सा है।"*

पाण्डेय के. पी. एवं अन्य (2005) के अनुसार *"आमतौर से उन सभी दशाओं तथा प्रभावों का कुल योग, जो प्राणी के जीवन और उसके विकास को प्रभावित करता है, पर्यावरण कहलाता है।"*

सामान्य अर्थों में पर्यावरण मानवीय जीवन को प्रभावित करने वाले सभी जैविक और अजैविक तत्वों, तथ्यों, प्रक्रियाओं और घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई हैं। यह हमारे चारों ओर व्याप्त हैं और हमारे जीवन की प्रत्येक घटना इसी के अंदर संपादित होती हैं तथा हम मनुष्य अपनी समस्त क्रियाओं से इस पर्यावरण को भी प्रभावित करते हैं। इस प्रकार एक जीवधारी और उसके पर्यावरण के बीच अन्योन्याश्रय का संबंध भी होता है।

पर्यावरण के जैविक संघटकों में सूक्ष्म जीवाणु से लेकर कीड़ेमकोड़े, सभी जीव-जंतु और पेड़पौधे आ जाते हैं और इसके साथ ही उनसे जुड़ी सारी जैव क्रियाएँ और प्रक्रियाएँ भी। अजैविक संघटकों में जीवनरहित तत्व और उनसे जुड़ी प्रक्रियाएँ आती हैं, जैसे- चट्टानें, पर्वत, नदी, हवा और जलवायु के तत्व इत्यादि।

मानव हस्तक्षेप के आधार पर पर्यावरण को दो प्रखंडों में विभाजित किया जाता है- प्राकृतिक या नैसर्गिक पर्यावरण और मानव निर्मित पर्यावरण। हालाँकि पूर्ण रूप से प्राकृतिक पर्यावरण (जिसमें मानव हस्तक्षेप बिल्कुल न हुआ हो) या पूर्ण रूप से मानव निर्मित पर्यावरण (जिसमें सब कुछ मनुष्य निर्मित हो), कहीं नहीं पाया जाता। यह विभाजन प्राकृतिक प्रक्रियाओं और दशाओं में मानव हस्तक्षेप की मात्रा की अधिकता और न्यूनता का द्योतक मात्र है। पारिस्थितिकी और पर्यावरण भूगोल में प्राकृतिक पर्यावरण शब्द का प्रयोग पर्यावास (habitat) के लिए भी होता है।

पाण्डेय के. पी. एवं अन्य (2005) पर्यावरण को समझने के लिए उसे विभिन्न प्रकारों में बाँटकर देखते हैं। साथ ही विभिन्न विषयों के अंतर्गत पर्यावरण को अलग-अलग रूपों में देखा जाता है। जैसे-

भौतिक पर्यावरण: यह प्रमुख रूप से जैवमंडल (Biosphere) से घिरा है। मिटटी की कुछ गहरी परतों, पृथ्वी से आसमान की 2 किमी. की दूरी तथा उतनी दूरी तक समुद्र तल के भीतसाई जाने वाली समस्त जीव-योनियों से मिलकर बना है।

सामाजिक पर्यावरण: यह पर्यावरण व्यक्ति के आपसी संबंधों, सामाजिक संरचनाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों एवं संस्थाओं से बना हुआ है।

मनोवैज्ञानिक पर्यावरण: यह पर्यावरण व्यक्ति की अपनी आंतरिक दुनिया है तथा उसकी उम्मीदों, एहसासों एवं विश्वास से सृजित होता है।

इसके बावजूद आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि प्रकारों में पर्यावरण को बाँटा जाता है। इस इकाई में हम प्राकृतिक पर्यावरण से संबंधित मुद्दों पर केंद्रित होकर बात करेंगे।

4.2.1 प्राकृतिक पर्यावरण

मनुष्य अपनी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रकृति पर ही निर्भर है। जीवन के लिए आवश्यक समस्त तत्व प्रकृति में ही विद्यमान हैं, अतः समग्र मानव जाति का विकास इन्हीं तत्वों पर आधारित है। इनके अभाव में मानव जाति व अन्य जाति व अन्य जीव-जंतुओं के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पृथ्वी पर ये समस्त आवश्यक तत्व प्राकृतिक स्रोत कहलाते हैं। वायु, जल, भूमि, पेड़-पौधों, खनिज पदार्थ तथा सूर्य का प्रकाश आदि महत्वपूर्ण प्राकृतिक स्रोत हैं।

प्राकृतिक स्रोत के अंतर्गत दो प्रकार की संपदाएँ आती हैं-

1. **नवीनीकृत प्राकृतिक संपदाएँ (Renewable Natural Resources)** – जल, वायु, वन, सूर्य का प्रकाश।
2. **अनवीनीकृत प्राकृतिक संपदाएँ (Non-Renewable Natural Resources)** – कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस व कीमती धातुएँ। नवीनीकृत संपदाओं से तात्पर्य है , जिनका पुनः चक्रण किया जा सके व अनवीनीकृत संपदाएँ वे हैं, जिनका पुनः चक्रण (Recovery) नहीं किया जा सकता। अतः स्पष्ट है कि प्रकृति में विद्यमान अनवीनीकृत संपदा का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

ज्ञान शांति मैत्री

पर्यावरण पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व पृथ्वी के पारिस्थितिकी-तंत्र की संक्षिप्त चर्चा करना अनिवार्य है, जिससे पर्यावरण पर व्यापक प्रकाश डाला जा सके। पारिस्थितिकी-तंत्र के दो महत्वपूर्ण घटक हैं-

1. जैविक घटक – (Biotic Components)
2. अजैविक घटक (Abiotic Components)

भूमंडल का समस्त जैविक समुदाय जैसे जीव-जंतु या पेड़पौधे अजैविक घटकों (अकार्बनिक व कार्बनिक) से क्रियात्मक रूप से संबद्ध रहते हैं।

जैविक समुदाय तथा अजैविक समुदाय(निर्जीव परिस्थितियां) में पारस्परिक क्रिया व पदार्थों का आदान-प्रदान होता रहता है। इनमें पारस्परिक निर्भरता बनी रहती है। सरल शब्दों में कहा जाए तो दोनों मिलकर एक ऐसा स्थायी तंत्र बनाते हैं, जो मशीन की तरह कार्य करता है। इसे ही पारिस्थितिकी-तंत्र (Eco-system) कहते हैं। Eco-system शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम टेन्सले के अनुसार, 'प्रकृति में उपस्थित

सजीवों (पेड़-पौधों एवं जीव-जंतु) एवं निर्जीवों की परस्पर या आपस की क्रियाओं के परिणामस्वरूप बनने वाला तंत्र पारिस्थितकी तंत्र(Ecosystem) कहलाता है।'

इस प्रकार किसी स्थान विशेष के जैविक घटक (Biotic Components) व अजैविक घटक Abiotic Components) की परिस्थितियों का योग पर्यावरण कहलाता है।

किसी भी पारिस्थितिकी-तंत्र में जैविक व अजैविक घटक के अलावा अपघटक (मृतोपजीवी) (Decomposers or Saprophytes) का कार्य भी महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि ये मृत जीवों के शरीर का अपघटन करके अपना पोषण करते हैं तथा जटिल कार्बनिक यौगिकों को सरल यौगिकों में परिवर्तित करते हैं। इस प्रकार ये किसी भी पारिस्थितिकी-तंत्र के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं।

अजैविक घटक (Abiotic Components) इसके अंतर्गत-

1. अकार्बनिक घटक (Inorganic Components)- मृदा, जल, वायु, प्रकाश, खनिज तत्व आदि।

2. कार्बनिक घटक (Organic Components)- कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन्स, लिपिड्स, अमीनो अम्ल आदि।

3. भौतिक घटक (Physical Components)- जलवायु, ताप, प्रकाश, सौर ऊर्जा।

पृथ्वी पर मुख्यतः दो प्रकार के पारिस्थितिकी-तंत्र पाए जाते हैं-

1. स्थलीय,

2. जलीय।

सभी पारिस्थितिकी-तंत्रों की ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत सूर्य है। इसी से सारे ऊर्जा प्राप्तकरते हैं इसलिए इसे ऊर्जा का प्राकृतिक स्रोत भी कहा जाता है।

जैविक घटक (Biotic Components)के अंतर्गत-

उत्पादक (Producers) – हरे पौधे, शैवाल

उपभोक्ता (Consumers) – जीव-जंतु।

अपघटक (Decomposers)- जीवाणु (Bacteria), कवक (Fungi) आदि आते है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग में जल व 29 प्रतिशत भाग में स्थल है। स्थल का कुछ भाग पर्वत, पठार, हिमाच्छादित व वनाच्छादित है तो कुछ भाग मरुस्थल का भी है। सभी स्थलों का अपना-अपना पारिस्थितिकी-तंत्र है। साथ ही समुद्र व अन्य जलीय भागों का पारिस्थितिकी-तंत्र भी है, जो स्थलीय पारिस्थिकी-तंत्र से पृथक है।

यदि वायुमंडल में उपस्थित गैसों की प्रतिशत मात्रा परनज़र डालें तो हमें ज्ञात होता है कि नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, ऑक्सीजन 21 प्रतिशत व कार्बन-डाइऑक्साइड 0.03 प्रतिशत व अक्रिय गैसों की मात्रा लगभग 1 प्रतिशत है। पर्यावरण में जैविक घटक के अंतर्गत आने वाले उत्पादक-हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया के द्वारा सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में CO2 और H2O की सहायता से कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं। इस प्रक्रिया में जीवनदायिनी ऑक्सीजन गैस बाहर निकलती है, जो मानव जीवन के लिए

अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार पेड़-पौधे पृथ्वी मंडल से CO_2 गैस ग्रहण कर प्रकृति में गैसों का संतुलन बनाए रखने में हमारी मदद करते हैं। मनुष्य अपनी तमाम भोजन संबंधी आवश्यकताओं के लिए पेड़ पौधों पर आश्रित है। पेड़-पौधे मनुष्य की खाद्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ ऑक्सीजन चक्र, कार्बन डाइऑक्साइड चक्र व नाइट्रोजन चक्र का संतुलन बनाए रखने में सहायता करते हैं व जल-चक्र को सतत् बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

पारिस्थितिकी-तंत्र में जहां एक ओर, जल, वायु पेड़-पौधे व सूर्य का प्रकाश, नवीनीकृत प्राकृतिक संसाधन (Renewable Resources) हैं, वहीं दूसरी ओर कोयला, प्राकृतिक गैसें तथा पेट्रोलियम एवं खनिज आदि अनवीनीकृत प्राकृतिक संसाधन (Nonrenewable Resources) भी हैं।

4.3 पर्यावरण ह्रास की समस्याएँ

प्रतिदिन विज्ञान के नए नवाचारों से प्रकृति में मानवीय हस्तक्षेप में बढ़ोतरी हो रही हैं। विज्ञान के क्षेत्र में असीमित प्रगति तथा नए आविष्कारों की स्पर्धा के कारण आज का मानव प्रकृति पर पूर्णतया विजय प्राप्त करना चाहता है। इस कारण प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया है। वैज्ञानिक उपलब्धियों से मानव प्राकृतिक संतुलन को उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है। दूसरी ओर धरती पर जनसंख्या की निरंतर वृद्धि, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की तीव्र गति से प्रकृति के हरे भरे क्षेत्र समाप्त हो रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग के कारण ग्लेशियर पिघलने एवं वनों की अत्यधिक कटाई से नदियों में बाढ़ आ रही है। समुद्र का जलस्तर सन् 1990 के मुकाबले सन् 2011 में 10 से 20 सेमी. तक बढ़ गया है। संयुक्त राष्ट्र ने मई 1969 की रिपोर्ट में पर्यावरण असंतुलन पर गंभीर चिंता व्यक्त की कि '*मानव जाति के इतिहास में पहली बार पर्यावरण असंतुलन का विश्वव्यापी संकट खड़ा हो रहा है। मानव जनसंख्या में असीमित वृद्धि, पर्यावरणीय आवश्यकताओं का सक्षम एवं वनस्पति जीवन का बढ़ता हुआ विकास का खतरा, ये सब उसके लक्षण है। यही वर्तमान प्रवृत्ति जारी रहती है तो पृथ्वी पर जीवन खतरे में पड़ सकता है।*'

प्रदूषण

सामान्य अर्थ में पर्यावरण में अवांछनीय तत्वों का मिलना तथा इनके फलस्वरूप असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होना ही प्रदूषण है। पर्यावरण प्रदूषण के कुछ दूरगामी दुष्प्रभाव, हैं जो अतीव घातक हैं, जैसे- आणविक विस्फोटों से रेडियोधर्मिता का आनुवांशिक प्रभाव, वायुमंडल का तापमान बढ़ना, ओजोन परत की हानि, भूक्षरण आदि ऐसे घातक दुष्प्रभाव हैं। प्रत्यक्ष दुष्प्रभाव के रूप में जलवायु तथा परिवेश का दूषित होना एवं वनस्पतियों का विनष्ट होना, मानव का अनेक नये रोगों से आक्रांत होना आदि देखे जा सकते हैं। बड़े कारखानों से विषैला अपशिष्ट बाहर निकलने से तथा प्लास्टिक आदि के कचरे से प्रदूषण की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ रही है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति की विज्ञान सलाहकार समिति ने प्रदूषण को परिभाषित करते हुए लिखा है-

ज्ञान शांति मैत्री

"मनुष्य के कार्यों द्वारा ऊर्जा प्रारूप, विकिरण प्रारूप, भौतिक एवं रासायनिक संगठन तथा जीवों की बहुलता में किए गए परिवर्तनों से उत्पन्न प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभावों के कारण आस-पास के पर्यावरण में अवांछित एवं प्रतिकूल परिवर्तन ही प्रदूषण हैं"

राष्ट्रीय पर्यावरण अनुसंधान परिषद् (1976) द्वारा की गई प्रदूषण की परिभाषा भी महत्वपूर्ण हैं। इस परिषद् के अनुसार *"मनुष्य के क्रियाकलापों से उत्पन्न अवशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों एवं ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं।"*

कुल मिलाकर प्रदूषण, पर्यावरण में दूषक पदार्थों के प्रवेश के कारण प्राकृतिक संतुलन में पैदा होने वाले दोष को कहते हैं। प्रदूषक पर्यावरण को और जीव-जंतुओं को नुकसान पहुँचाते हैं। प्रदूषण का अर्थ है 'हवा, पानी, मिट्टी आदि का अवांछित द्रव्यों से दूषित होना', जिसका सजीवों पर प्रत्यक्ष रूप से विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान द्वारा अन्य अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ते हैं। वर्तमान समय में पर्यावरणीय अवनयन का यह एक प्रमुख कारण है।

प्रदूषण के कुछ मुख्य प्रकार निम्नवत हैं

4.3.1 वायु प्रदूषण- वातावरण में रसायन तथा अन्य सूक्ष्म कणों के मिश्रण को वायु प्रदूषण कहते हैं। सामान्यतः वायु प्रदूषण कार्बन मोनोआक्साइड, सल्फर डाइआक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) और उद्योग और मोटर वाहनों से निकलने वाले नाइट्रोजन आक्साइड जैसे प्रदूषको से होता है। धुआँसा वायु प्रदूषण का परिणाम है। धूल और मिट्टी के सूक्ष्म कण साँस के साथ फेफड़ों में पहुँचकर कई बीमारियाँ पैदा करते हैं। वायु प्रदूषण अर्थात् हवा में ऐसे अवांछित गैसों, धूल के कणों आदि की उपस्थिति, जो लोगों तथा प्रकृति दोनों के लिए खतरे का कारण बन जाए। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रदूषण अर्थात् दूषित होना या गंदा होना। वायु का अवांछित रूप से गंदा होना अर्थात् वायु प्रदूषण। वायु प्रदूषण के कुछ सामान्य कारण हैं:

- वाहनों से निकलने वाला धुआँ।
- औद्योगिक इकाईयों से निकलने वाला धुँआ तथा रसायन।
- आण्विक संयत्रों से निकलने वाली गैसें तथा धूलकण।
- जंगलों में पेड़ पौधें के जलने से, कोयले के जलने से तथा तेल शोधन कारखानों आदि से निकलने वाला धुआँ।

वायु प्रदूषण हमारे वातावरण तथा हमारे ऊपर अनेक प्रभाव डालता है। उनमें से कुछ प्रभाव निम्नलिखित है :

- हवा में अवांछित गैसों की उपस्थिति से मनुष्य, पशुओं तथा पंक्षियों को गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इससे दमा, सर्दी-खाँसी, अँधापन, श्रवण शक्ति का कमज़ोर होना, त्वचा

ज्ञान शांति मैत्री

रोग जैसी बीमारियाँ पैदा होती हैं। लंबे समय के बाद इससे जननिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और अपनी चरमसीमा पर यह घातक भी हो सकती है।

- वायु प्रदूषण से सर्दियों में कोहरा छाया रहता है,जिसका कारण धूएँ तथा मिट्टी के कणों का कोहरे में मिला होना है। इससे प्राकृतिक दृश्यता में कमी आती है तथा आँखों में जलन होती है और साँस लेने में कठिनाई होती है।
- ओजोन परत, हमारी पृथ्वी के चारों ओर एक सुरक्षात्मक गैस की परत है, जो हमें सूर्य से आनेवाली हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणों से बचाती है। वायु प्रदूषण के कारण जीन (Jeans) अपरिवर्तन, अनुवाशंकीय तथा त्वचा कैंसर के खतरे बढ़ जाते हैं।
- वायु प्रदूषण के कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ता है, क्योंकि सूर्य से आने वाली गर्मी के कारण पर्यावरण में कार्बन डाइआक्साइड, मीथेन तथा नाइट्रस आक्साइड का प्रभाव कम नहीं होता है, जो कि हानिकारक हैं।
- वायु प्रदूषण से अम्लीय वर्षा के खतरे बढ़े हैं, क्योंकि बारिश के पानी में सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड आदि जैसी जहरीली गैसों के घुलने की संभावना बढ़ी है। इससे फसलों, पेड़ों, भवनों तथा ऐतिहासिक इमारतों को नुकसान पहुँच सकता है।
- ध्वनि की अधिकता के कारण भी प्रदूषण होता है, जिसे हम ध्वनि प्रदूषण के रूप में जानते हैं। ध्वनि प्रदूषण का साधारण अर्थ है अवांछित ध्वनि, जिससे हम चिड़चिड़ापन महसूस करते हैं। इसका कारण है- रेल इंजन, हवाई जहाज, जनरेटर, टेलीफोन, टेलीविजन, वाहन, लाउडस्पीकर आदि आधुनिक मशीनें। लंबे समय तक ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव से श्रवण शक्ति का कमज़ोर होना, सिरदर्द, चिड़चिड़ापन, उच्च रक्तचाप अथवा स्नायविक, मनोवैज्ञानिक दोष उत्पन्न होने लगते हैं। लंबे समय तक ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव से स्वाभाविक परेशानियाँ बढ़ जाती है।

4.3.2 जल प्रदूषण:- जल में अनुपचारित घरेलू सीवेज के निर्वहन और क्लोरीन जैसे रासायनिक प्रदूषकों के मिलने से जल प्रदूषण फैलता है। जल प्रदूषण पौधों और पानी में रहने वाले जीवों के लिए हानिकारक होता है। प्रदूषित जल के प्रयोग से मानव में तरह-तरह की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है। जल प्रदूषण के कुछ सामान्य कारण निम्नलिखित है-

- मानव मल का नदियों, नहरों आदि में विसर्जन।
- सफाई तथा सीवर का उचित प्रबंधन न होना।
- विभिन्न औद्योगिक इकाइयों द्वारा अपने कचरे तथा गंदे पानी का नदियों, नहरों में विसर्जन।
- कृषि कार्यों में उपयोग होने वाले जहरीले रसायनों तथा खादों का पानी में घुलना।

- नदियों में कूड़े-कचरे, मानव-शवों और पारंपरिक प्रथाओं का पालन करते हुए उपयोग में आने वाले प्रत्येक घरेलू सामग्री का समीप के जल स्रोत में विसर्जन।

जल प्रदूषण के प्रभाव

जल प्रदूषण के निम्नलिखित प्रभाव है:-

- जल प्रदूषण से मनुष्य, पशु तथा पक्षियों के स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न होता है। इससे टाईफाइड, पीलिया, हैजा, गैस्ट्रिक आदि बीमारियाँ पैदा होती हैं।
- इससे विभिन्न जीव तथा वानस्पतिक प्रजातियों को नुकसान पहुँचता है।
- इससे पीने के पानी की कमी बढ़ती है, क्योंकि नदियों, नहरों यहाँ तक कि जमीन के भीतर का पानी भी प्रदूषित हो जाता है।
- प्रदूषित जल में सूर्य का प्रकाश गहराई तक नहीं जा पाता परिणामत: जलीय जीवों की प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है।

4.3.3 भूमि प्रदूषण- ठोस कचरे के फैलने और रासायनिक पदार्थों के रिसाव के कारण भूमि में प्रदूषण फैलता है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार कृषि में उर्वरकता बढ़ाने के लिए खाद का तथा कीटनाशी, तृणनाशी रसायनों का प्रयोग लगातार बढ़ रहा है। इससे भूमि के विभिन्न खनिजों एवं रासायनिक तत्वों में असंतुलन पैदा हो रहा है। जिसका हानिकारक प्रभाव जीवजंतुओं तथा पेड़-पौधों पर विभिन्न बीमारी के रूप में दिख रहा है। अत: उन समस्त अवांछित परिवर्तनों को, जो भूमि की प्राकृतिक स्थितियों में आ रहें है तथा , जिनका परिणाम जीवधारियों पर पड सकता है एवं, जो भूमि के उर्वरा शक्ति के ह्रास में कार्यरत है उसे भूमि प्रदूषण कहा जाता है। भूमि-प्रदूषण के मुख्य कारण हैं:

- कृषि में उर्वरकों, रसायनों तथा कीटनाशकों का अधिक प्रयोग।
- औद्योगिक इकाईयों, खानों तथा खादानों द्वारा निकले ठोस कचरे का विसर्जन।
- भवनों, सड़कों आदि के निर्माण में ठोस कचरे का विसर्जन।
- कागज तथा चीनी मिलों से निकलने वाले पदार्थों का निपटान, जो मिट्टी द्वारा अवशोषित नहीं हो पाते।
- प्लास्टिक की थैलियों का अधिक उपयोग, जो जमीन में दबकर नहीं गलती।
- घरों, होटलों और औद्योगिक इकाईयों द्वारा निकलने वाले अवशिष्ट पदार्थों का निपटान, जिसमें प्लास्टिक, कपड़े, लकड़ी, धातु, काँच, सेरामिक, सीमेंट आदि सम्मिलित हैं।

भूमि प्रदूषण का प्रभाव

भूमि प्रदूषण के निम्नलिखित हानिकारक प्रभाव है:

- कृषि योग्य भूमि की कमी
- भोज्य पदार्थों के स्रोतों को दूषित करने के कारण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक
- भूस्खलन से होने वाली हानियाँ
- जल तथा वायु प्रदूषण में वृद्धि
- आम्ल वर्षा
- भूक्षरण
- ओर्गेनिफास्फरस समूह के कीटनाशक सबसे खतरनाक और जहरीले पायें गए है, जिनका मानव जीवन पर सीधा असर पड़ता है।

4.3.4 प्रकाश प्रदूषण:- यह अत्यधिक कृत्रिम प्रकाश के कारण होता है।प्रकाश प्रदूषण शहर में रहने वाले लोगों के लिए रात्रिकालीन आकाश में सितारों को धुंधला कर देता है। खगोलीय वेधशालाओं की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करता है और प्रदूषण के किसी भी अन्य रूप की तरह पारिस्थितिकी तंत्र को बाधित करता है। साथ ही स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालता है। प्रकाश प्रदूषण को दो मुख्य प्रकार में विभाजित किया जा सकता है:

(1) कष्टप्रद प्रकाश, जो अन्यथा प्राकृतिक या हल्की प्रकाश व्यवस्था में दखलंदाजी करता है

(2) अत्यधिक प्रकाश (आमतौर पर घर के भीतर), जो बेचैन करता है और स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

1980 के दशक की शुरुआत से, एक वैश्विक *डार्क स्काई मूवमेंट* (काला आसमान आंदोलन) उभरा है, जिसके तहत चिंतित लोग प्रकाश प्रदूषण की मात्रा को कम करने के लिए प्रचार कर रहे हैं।

प्रकाश प्रदूषण, औद्योगिक सभ्यता का परिणाम है। इसके स्रोतों में बाहरी निर्माण और आंतरिक प्रकाश, विज्ञापन, वाणिज्यिक संपत्तियां, कार्यालय, कारखाने, पथ-प्रकाश और देदीप्यमान क्रीडा स्थल आदि शामिल हैं । यह उत्तरी अमेरिका, यूरोप और जापान के उच्च औद्योगिक, घनी आबादी वाले क्षेत्रों में सबसे अधिक गंभीर है और मध्यपूर्व और उत्तरी अफ्रीका के प्रमुख शहरों जैसे तेहरान और काहिरा में भी यही स्थिति है, लेकिन अपेक्षाकृत कम मात्रा में प्रकाश भी देखा जा सकता है और समस्या पैदा कर सकता है। प्रदूषण के अन्य रूपों की तरह (जैसे कि वायु, जल, और ध्वनि प्रदूषण) प्रकाश प्रदूषण पर्यावरण को नुकसान पहुँचाता है।

प्रकाश प्रदूषण के कारण

- प्रकाश अतिचार
- अति-जगमगाहट
- चमक

ज्ञान शांति मैत्री

- प्रकाश अव्यवस्था
- आकाश-प्रदीप्ति

प्रकाशप्रदूषण के परिणाम

- ऊर्जा बर्बादी
- पशु और मानव स्वास्थ्य और मनोविज्ञान पर प्रभाव
- पारिस्थितिकी प्रणालियों का विघटन
- खगोल विज्ञान पर प्रभाव
- वातावरणीय प्रदूषण में वृद्धि

(अधिक जानकारी के लिए देखें- https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%A6%E0%A5%82%E0%A4%B7%E0%A4%A3)

4.3.5 ध्वनि प्रदूषण:- अत्यधिक शोर , जिससे हमारी दिनचर्या बाधित हो और सुनने में अप्रिय लगे, ध्वनि प्रदूषण कहलाता है। ध्वनि प्रदूषण या अत्यधिक शोर किसी भी प्रकार के अनुपयोगी ध्वनियों को कहते हैं, जिससे मानव और जीव जंतुओं कोपरेशानी होती है। इसमें यातायात के दौरान उत्पन्न होने वाला शोर मुख्य कारण है। जनसंख्या और विकास के साथ ही यातायात और वाहनों की संख्या में भी वृद्धि होती है, जिसके कारण यातायात के दौरान होने वाला ध्वनि प्रदूषण भी बढ़ने लगता है। अत्यधिक शोर से सुनने की शक्ति चले जाने का खतरा होता है।

ध्वनिप्रदूषण के स्रोत

दुनिया भर में सबसेज़्यादा शोर के स्रोत परिवहन प्रणालियों, मोटर वाहन का शोर है, किंतु इसमें वैमानिक शोर-शराबा तथा (aircraft noise) रेल से होने वाला शोर भी शामिल है। खराब शहरी नियोजन (urban planning) ध्वनि प्रदूषण को बढा सकता है क्योंकि इसके साथ-साथ औद्योगिक और आवासीय इमारतें आवासीय क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण का कारण बन सकते हैं। अन्य स्रोतों में कार्यालय के उपकरण, फैक्टरी मशीनरी, निर्माण कार्य, उपकरण, बिजली उपकरण, प्रकाश व्यवस्था (lighting), ऑडियो मनोरंजन सिस्टम आते है।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

पसंद न की जाने वाली ध्वनि को ध्वनि शोरशराबा कहा जाता है। यह अवांछित ध्वनि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को हानि पहुँचा सकती है। ध्वनिक प्रदूषण चिड़चिड़ापन एवं आक्रामकता के अतिरिक्त उच्च रक्तचाप, तनाव, कान के परदे का फटना, श्रवण शक्ति का ह्रास, नींद में गड़बड़ी और अन्य

हानिकारक प्रभाव पैदा कर सकता है। इसके अलावा, तनाव और उच्च रक्तचाप स्वास्थ्य समस्याओं के प्रमुख हैं, जबकि स्मृति खोना, गंभीर अवसाद और कई बार असमंजस के दौरे पैदा कर सकता है।

शोर-शराबा का उच्च स्तर âदय संबंधी रोगों (cardiovascular) को जन्म दे सकता है। आठ घंटे की एकल अवधि के दौरान माध्यमिक उच्च स्तर के प्रभाव में आने से रक्त चाप में पाँच से दस बिंदुओं तक की वृद्धि तथा तनाव (stress)एवं वेसोकन्सट्रिक्शन (vasoconstriction) में बढ़ोतरी हो सकती है, जिससे उच्च रक्तचाप (increased blood pressure) के साथ-साथ कोरोनरी आर्टरी रोग(coronary artery disease) हो सकते हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव

शोर-शराबा पशुओं में तनाव पैदा करने,प्रीडेटर/शिकार की पहचान तथा बचाव एवं प्रजनन एवं नेवीगेशन के संबंध में संप्रेषण के समय ध्वनि के उपयोगके साथ हस्तक्षेप द्वारा नाजुक संतुलन को परिवर्तित करते हुए जानवरों पर गहरा प्रभाव डाल सकता है। अधिक देर तक ध्वनिक प्रतिछाया में बने रहने से अस्थायी या स्थायी तौर पर श्रवण शक्ति का ह्रास हो सकता है।

ध्वनि प्रदूषण के कारण होने वाली क्षति के सर्वोत्तम ज्ञात मामलों में से एक समुद्री व्हेल (beached whale) की कुछ विशेष प्रजातियों की मृत्यु होती है, जिन्हें सेना की तोपों की भंयकर गर्जना अर्थात् सोनार (sonar) द्वारा समुद्र के किनारे ला दिया जाता है ।

4.3.6 रेडियोधर्मी प्रदूषण:- रेडियोधर्मी प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण का एक प्रभावी स्रोत है। परमाणु ऊर्जा उत्पादन और परमाणु हथियारों के अनुसंधान,निर्माण और तैनाती के दौरान उत्पन्न होता है। रेडियोधर्मी प्रदूषण ठोस, तरल या गैसीय पदार्थ में जहाँ अनायास या अवांछनीय रेडियोधर्मी पदार्थ की उपस्थिति होती है, उसे रेडियोधर्मी प्रदूषण कहते हैं। इसका प्रभाव पर्यावरण, जीव जंतुओं और मनुष्यों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता,हैंजिससे लोगों की मृत्यु भी हो जाती है। आम तौर पर इस प्रदूषण का मुख्य कारण परमाणु विस्फोट होता है। इसके अलावा रेडियोधर्मी गैसें, तरल या अन्य रूपों में कोई भी पदार्थ भी इस प्रदूषण का कारण बन सकता है। नाभिकीय प्रक्रिया के दौरान कभी कभी ध्यान न देने पर भी इस तरह की दुर्घटना हो जाती है। यह तत्व मनुष्य के इधर उधर चलने के साथ-साथ अन्य स्थानों में भी फैल सकता है। यह निश्चित रूप से परमाणुईंधन के उपयोग करते समय होती है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के स्रोत

यह प्रदूषण मानवीय और प्राकृतिक दोंनों स्रोतों के कारण होता है। प्राकृतिक स्रोत में कॉस्मिक किरणें हैं, जो अंतरिक्ष से पृथ्वी पर आती है। बहुत से रेडियोधर्मी पदार्थ जैसेयूरेनियम 235, रेडियम 224, थोरियम 22 चट्टानों तथा पानी में पाए जाते हैं, जो विकिरणों के जन्मदाता हैं। बावजूद इसके मानवनिर्मित स्रोतों के अंतर्गत उल्लेखनीय है- रेडियोधर्मी पदार्थों की विविध रूप में शुद्धिकरण, परमाणु बम निर्माण की प्रक्रिया,

गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों में वृद्धि, परमाणु शक्ति उत्पादन केंद्र आदि से उत्पन्न विकिरण तथा कचरे से प्रदूषण उत्पन्न होता है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभाव

रेडियोधर्मी प्रदूषण का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कई रूपों में पड़ता है। इस प्रदूषण का प्रभाव जल, वायु, मृदा प्रदूषण के रूप मेंपड़ता है। इस प्रदूषण के कारण मनुष्य में रक्त कैंसर होने की संभावना होती है। अधिक मात्रा में इन पदार्थो के संपर्क में रहने से मृत्यु होने की संभावना होती है। ये किरणें गुणसूत्रों पर उपस्थित जींस में उत्परिवर्तन कर देते हैं, जो अनुवांशिक होता है।

4.4 पर्यावरण प्रबंधन

जैसा कि इस नाम से लग सकता है, पर्यावरण प्रबंधन का तात्पर्य पर्यावरण के प्रबंधन से नहीं है, बल्कि आधुनिक मानव समाज के पर्यावरण के साथ संपर्क तथा उस पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रबंधन से है। प्रबंधकों को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख मुद्दे हैं

राजनीति (नेटवर्किंग)

कार्यक्रम (परियोजनायें)

संसाधन (धन, सुविधाएँ, आदि)

पर्यावरण प्रबंधन की आवश्यकता को कई दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। पर्यावरण प्रबंधन के पीछे एक आम विचार तथा प्रेरणा है कैरीयिंग केपेसिटी (वहन क्षमता) की अवधारणा। आसान भाषा में कहें तो वहन क्षमता का तात्पर्य किसी विशेष पर्यावरणीय तंत्र द्वारा अपने भीतर जीवों की अधिकतम संख्या को धारण करने की क्षमता से है। हालाँकि कई संस्कृतियों को ऐतिहासिक रूप से वहन क्षमता की अवधारणा की समझ थी, लेकिन इसका मूल माल्थूसियन थ्योरी में है। पर्यावरण प्रबंधन काअर्थ केवल पर्यावरण की खातिर उसके संरक्षण से नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव जाति की खातिर पर्यावरण के संरक्षण से है। अतः मानव तथा पर्यावरण के मध्य संबंध सुधार की क्रिया ही पर्यावरण प्रबंधन है।

पर्यावरण प्रबंधन में जैवभौतिक वातावरण के सभी घटक शामिल होते हैं, जीवित (जैविक) तथा मृत (अजैव) दोनों। इसका कारण है सभी जीवित प्रजातियों और उनके निवास स्थानों के बीच परस्पर रूप से आपस में जुड़े हुए संबंध। पर्यावरण में मानव पर्यावरण के आपसी संबंध भी शामिल हैं,जैसे कि सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश का जैवभौतिक वातावरण के साथ संबंध।

सभी प्रबंध कार्यों के समान इसके लिए भी प्रभावी प्रबंधन, मानकों और प्रणालियों की आवश्यकता होती है। वैश्विक स्तर पर पर्यावरण प्रबंधन के मानक या प्रणाली या प्रोटोकॉल, किसी उपयुक्त मानदंड द्वारा मापे गए पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने की चेष्टा करते हैं। आईएसओ 14001 मानक, पर्यावरण, जोखिम प्रबंधन के लिए सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला मानक है और यह यूरोपियन इकोमैनेजमेंट एंड ऑडिट स्कीम (EMAS) के साथ काफ़ी करीबी रूप से जुड़ा हुआ है। एक सामान्य ऑडिटिंग मानक के रूप में आईएसओ 19011 मानक में इसे गुणवत्ता प्रबंधन के साथ, जोड़ने के बारे में बताया गया है।

पर्यावरण प्रबंधन के उपागम

पाण्डेय के. पी. एवं अन्य (2005) के अनुसार पर्यावरण प्रबंधन के दो मुख्य उपागम है

समग्रतावादी उपागम: इसके अंतर्गत संसाधनों के विदोहन के दौरान उत्पन्न होने वाली समस्त पारिस्थितिकी समस्याओं पर विचार किया जाता है तथा उसके निदान के लिए प्रयास किए जाते हैं। इस उपागम के अंतर्गत काफ़ी धन एवं समय व्यय होता है।

एकल उपागम: इस उपागम के अंतर्गत पारिस्थितिक समस्याओं पर आंशिक रूप से तथा अल्पकाल के लिए चिंतन करते हुए समाधान किए जाते हैं।

पर्यावरण प्रबंधन के उद्देश्य

सविंद्र सिंह(1991) ने अपनी पुस्तक 'पर्यावरण भूगोल' में पर्यावरण प्रबंधन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए हैं-

- प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन तथा उपयोग को सीमित तथा नियंत्रित करना
- अवक्रमित पर्यावरण (Degraded Environment) का पूनर्जनन करना तथा प्राकृतिक संसाधनों का नवीनीकरण करना
- प्राकृतिक प्रकोपों के प्रभाव को कम करना
- प्राकृतिक संसाधनों का पुनर्चक्रण तथा पुन प्रयोग के माध्यम से अधिकतम उपयोग करना
- योजनाओं तथा कार्यक्रमों का पर्यावरणीय दृष्टिसे मूल्यांकन करना
- उत्पादन की वर्तमान प्रौद्योगिकी के उपयोग पर पुनर्विचार करना, जिससे वह प्रदूषण मुक्त होजाए
- पर्यावरण परीक्षण के लिए नियमों तथा कानूनों का कड़ाई से पालन करना

पाण्डेय के. पी. एवं अन्य (2005) अपनी किताब 'पर्यावरणीय शिक्षा' में पर्यावरण प्रबंधन के निम्नलिखित पक्षों को प्रमुखता देते हैं

संसाधन प्रबंधन

जनजागरण

पर्यावरण मूल्यांकन

प्रदूषण नियंत्रण

पर्यावरणीय शिक्षा, प्रशिक्षण एवं शोध

सामाजिक आयामों का नियमन।

इसके बावजूद पर्यावरण ह्रास में कमी लाने के लिए मृदा प्रबंधन, जल प्रबंधन, वन्य जीव प्रबंधन जैसी बुनियादी प्राकृतिक संपदा का प्रबंधन भी आवश्यक माना गया है।

4.5 भारत में पर्यावरण प्रबंधन एवं विकास

पर्यावरणीय विधि अथवा पर्यावरण विधि समेकित रूप से उन सभी अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय संधियों, समझौतों और संवैधानिक विधियों को कहा जाता है, जो प्राकृतिक पर्यावरण पर मानव प्रभाव को कम करने और पर्यावरण की सततता बनाए रखने हेतु हैं।

भारत में पर्यावरण क़ानून पर्यावरण (रक्षा) अधिनियम 1986 से नियमित होता है, जो एक व्यापक विधान है। इसकी रूप रेखा केंद्रीय सरकार के विभिन्न केंद्रीय और राज्य प्राधिकरणों के क्रियाकलापों के समन्वयन के लिए तैयार किया गया है , जिनकी स्थापना पिछले कानूनों के तहत की गई है, जैसा कि जल अधिनियम और वायु अधिनियम।

अन्य विधियों में भारतीय वन अधिनियम, 1927 और वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 प्रमुख हैं।

एक राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण का भी गठन किया गया है।[26]

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण अधिनियम, 2010 द्वारा भारत में एक राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल) की स्थापना की गई है। 18 अक्टूबर 2010 को इस अधिनियम के तहत पर्यावरण से संबंधित कानूनी अधिकारों के प्रवर्तन एवं व्यक्तियों और संपत्ति के नुकसान के लिए सहायता और क्षतिपूर्ति देने या उससे संबंधित या उससे जुड़े मामलों सहित पर्यावरण संरक्षण एवं वनों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित मामलों के प्रभावी और त्वरित निपटारे के लिए राष्ट्रीय हरित अधिकरण की स्थापना की गई। यह एक विशिष्ट निकाय है, जो बहु-अनुशासनात्मक समस्याओं वाले पर्यावरणीय विवादों को संभालने के लिए आवश्यक विशेषज्ञता द्वारा सुसज्जित है। यह प्राधिकरण, सिविल प्रक्रिया संहिता (CPC), 1908 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया द्वारा बाध्य नहीं होगा, बल्कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाएगा।

पर्यावरण संबंधी मामलों में अधिकरण का समर्पित क्षेत्राधिकार तीव्र पर्यावरणीय न्याय प्रदान करेगा तथा उच्च न्यायालयों में मुकदमेबाज़ी के भार को कम करने में सहायता करेगा। अधिकरण को आवेदनों या अपीलों के प्राप्त होने के छह महीने के अंदर उनके निपटान का प्रयास करने का कार्य सौंपा गया है। शुरूआत में एनजीटी को पाँच बैठक स्थलों पर स्थापित किया जाना है और यह स्वयं कोअधिक पहुँच योग्य बनाने के लिए सर्किट व्यवस्था का अनुपालन करेगा। अधिकरण की बैठक का मुख्य स्थान नई दिल्ली होगा और साथ ही भोपाल, पुणे, कोलकाता तथा चेन्नई अधिकरण की बैठकों के अन्य चार स्थल होंगे।

प्रदूषण निवारण और नियंत्रण

जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम जल प्रदूषण के नियंत्रण और रोकथाम और देश में पानी की स्वास्थ्य-प्रदता बनाए रखने हेतु 1974 में अधिनियमित किया गया था। अधिनियम 1988 में संशोधित किया गया था। जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) उपकर अधिनियम औद्योगिक गतिविधियों के कुछ प्रकार पर पानी की व्यक्तियों द्वारा खपत पर उपकर लगाने हेतु 1977 में अधिनियमित किया गया था।

यह उपकर जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के तहत गठित जल प्रदूषण के नियंत्रण और रोकथाम हेतु गठित केंद्रीय बोर्ड के संसाधनों और राज्य बोर्डों को बढ़ाने की दृष्टि से इकट्ठा किया जाता है। अधिनियम अंतिम बार 2003 में संशोधन किया गया था।

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय भारत की पर्यावरण एवं वानिकी संबंधी नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के नियोजन, संवर्धन, समन्वय और निगरानी के लिए केंद्र सरकार के प्रशासनिक ढाँचे के अंतर्गत एक नोडल एजेंसी है।

इस मंत्रालय का मुख्य दायित्व देश की झीलों और नदियों, जैव विविधता, वनों और वन्यजीवों सहित इसके प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, पशु-कल्याण और प्रदूषण का निवारण एवं उपशमन सुनिश्चित करने से संबंधित नीतियों और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना है। इन नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में मंत्रालय सतत विकास और जन—कल्याण को बढ़ावा देने के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होता है।

यह मंत्रालय देश में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी), दक्षिण एशिया सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम (एसएसीईपी), अंतरराष्ट्रीय एकीकृत पर्वत विकास केंद्र (आईसीआईएमओडी) के लिए और पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीईडी) के पालन के लिए भी नोडल एजेंसी की तरह कार्य करता है। इस मंत्रालय को बहुपक्षीय निकायों जैसे स्तत विकास आयोग (सीएसडी), वैश्विक पर्यावरण सुविधा (जीईएफ) और क्षेत्रीय निकायों जैसे कि एशिया और प्रशांत के लिए आर्थिक और सामाजिक परिषद् (ईएससीएपी) तथा दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के पर्यावरण से संबंधित मामले भी सौंपे गए हैं।

मंत्रालय के व्यापक उद्देश्य निम्नानुसार हैं:-

वनस्पति, जीव, वनों और वन्यजीवों का संरक्षण और सर्वेक्षण

प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण

अवक्रमित क्षेत्रों का वनीकरण और पुनरुद्धार

पर्यावरण की सुरक्षा और

पशु-कल्याण सुनिश्चित करना

इन उद्देश्यों के समर्थन हेतु विधायी और विनियात्मकउपायों का एक सेट है, जिसका उद्देश्य पर्यावरण का संरक्षण, परिरक्षण और रक्षण करना है। विधायी उपायों के अलावा,

- पर्यावरण और विकास पर राष्ट्रीय संरक्षण कार्य और नीति कथन, 1992 (http://moef.gov.in/sites/default/files/introduction-csps.pdf);
- राष्ट्रीय वन नीति, 1988 (http://moef.gov.in/sites/default/files/introduction-nfp.pdf);
- प्रदूषण उपशमन संबंधी नीति कथन, 1992 (http://moef.gov.in/sites/default/files/introduction-psap.pdf);
- और राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006 (http://moef.gov.in/sites/default/files/introduction-nep2006e.pdf)

से भी मंत्रालय के कार्य मार्गनिर्देशित होते हैं।

4.6 भारत में पर्यावरण नीति तथा कानून

भारतीय संविधान, जिसे 1950 में लागू किया गया था, परंतु सीधे तौर पर पर्यावरण संरक्षण के प्रावधानों से नहीं जुड़ा था। सन् 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन ने भारत सरकार का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की ओर खिंचा। सरकार ने 1976 में संविधान में संशोधन कर दो महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद48 ए तथा 51 ए (जी), जोड़ें। अनुच्छेद 48 ए राज्य सरकार को निर्देश देता है कि वह 'पर्यावरण की सुरक्षा और उसमें सुधार सुनिश्चित करे, तथा देश के वनों तथा वन्यजीवन की रक्षा करें'। अनुच्छेद 51 ए (जी) नागरिकों को कर्तव्य प्रदान करता है कि वे 'प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें तथा उसका संवर्धन करे और सभी जीवधारियों के प्रति दयालु रहें'। स्वतंत्रता के पश्चात् बढते औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि से पर्यावरण की गुणवत्ता में निरंतर कमी आती गई। पर्यावरण की गुणवत्ता की इस कमी में प्रभावी नियंत्रण व प्रदूषण के परिप्रेक्ष्य में सरकार ने समय-समय पर अनेक कानून व नियम बनाए। इनमें से अधिकांश का मुख्य आधार प्रदूषणनियंत्रण व निवारण था।

पर्यावरणीय नीति कानून व नियम निम्नलिखित हैं:

- जल प्रदूषण संबंधीकानून
- रीवर बोडर्स एक्ट, 1956
- जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974
- जल उपकर (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1977
- पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986
- वायु प्रदूषण संबंधी कानून

- फैक्ट्रीज एक्ट, 1948
- इनफ्लेमेबल्स सबस्टा<सेज एक्ट, 1952
- वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981
- पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986
- भूमि प्रदूषण संबंधी कानून
- फैक्ट्रीज एक्ट, 1948
- इंडस्ट्रीज (डेवलपमेंट एंड रेगुलेशन) अधिनियम, 1951
- इनसेक्टीसाइडस एक्ट, 1968
- अर्बन लैंड (सीलिंग एण्ड रेगयुलेशन) एक्ट, 1976
- वन तथा वन्यजीव संबंधी कानून
- फोरेस्टस कंजरवेशन एक्ट, 1960
- वाइल्ड लाईफ प्रोटेक्शन एक्ट, 1972
- फोरेस्ट (कनज़रवेशन) एक्ट, 1980
- वाइल्ड लाईफ (प्रोटेक्शन) एक्ट, 1995
- जैव-विविधता अधिनियम, 2002
- जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 तथा 1977
- वायु (प्रदूषण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981
- वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम, 1972
- वन संरक्षण अधिनियम, 1980
- पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986
- राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2004
- वन अधिकार अधिनियम, 2006

भारत में पर्यावरण संबंधित उपरोक्त कानूनों का निर्माण उस समय किया गया था जब पर्यावरण प्रदूषण देश में इतना व्यापक नहीं था। अत: इनमें से अधिकांश कानून अपनी उपयोगिता खोचुके हैं। परंतु अभी भी कुछ कानून व नियम पर्यावरण संरक्षण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

4.7 आपदा प्रबंधन

अब तक हमने देखा की पर्यावरण प्रबंधन और विकास की क्या स्थितियां हैं। इससे यह बात निकल कर आती है कि पर्यावरण प्रबंधन के समग्रतावादी दृष्टिकोण के अंतर्गत आपदा प्रबंधन आवश्यक है। आपदा प्रबंधन पर राष्ट्रीय नीति, 2005 में भारत की भेद्यतापूर्ण (Vulnerabale) स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि *"भारत विभिन्न दशाओं से भेद्यतापूर्ण हैं जिसमें प्राकृतिक और मानवनिर्मित दोंनों प्रकार की आपदाएँ प्रमुख है, जैसे- 58.6 प्रतिशत भूमि पर निवास करने वाली जनसंख्या भूकंप ग्रस्त उच्च, जोखिम में है, देश की लगभग 12 प्रतिशत से ज़्यादा जमीन बाढ़ क्षति के क्षेत्र में हैं, जिसके कारण नदियों का क्षरण हो रहा है, 7516 किमी. समुद्र किनारे में से लगभग 5700 किमी. चक्रवात और त्सुनामी के चपेट में हैं, 68 प्रतिशत कृषि योग्य जमीन सुखा और पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण भूक्षरण के कगार पर है। इसके बावजूद रासायनिक, जैविकीय, रेडियोधर्मी और आण्विक आपतकाल की उत्पत्ति के अस्तित्व के कारण भेद्यता में इजाफा हुआ है।"* इस भेद्यता को कम करने के लिए आपदा प्रबंधन बहुत ज़रूरी बन जाता है। पर्यावरण के सततता को बनाएँ रखने में और मानवीय विकास को अवरुद्ध होने से रोकने के लिए आपदा प्रबंधन आवश्यक शर्त बन गई है।

आपदा प्रबंधन पर राष्ट्रीय नीति, 2005 के अनुसार *"आपदा से अभिप्राय प्राकृतिक अथवा मानवनिर्मित कारणों से आने वाली किसी भी ऐसी विपत्ति, दुर्घटना, अनिष्ट और गंभीर घटना से है जो प्रभावित समुदाय की सहन क्षमता से परे हो।"*

आपदा प्रबंधन की विशिष्ट सतत प्रक्रिया में छः तत्व शामिल है-

आपदा पूर्व चरण के अंतर्गत

1. रोकथाम,
2. प्रशमन तथा
3. तैयारी।

आपदा उपरांत चरण के अंतर्गत

4. कार्रवाई,
5. पुनर्वास तथा
6. पुर्ननिर्माण और सामान्य स्थिति की बहाली

इन सभी तत्वों को 2005 की आपदा प्रबंधन नीति के अंतर्गत विधिक और संस्थागत ढाँचे में पिरोया गया है। इसे निम्न चित्र के आधार पर समझ सकते हैं-

ज्ञान शांति मैत्री

<u>आपदा प्रबंधन की सतत प्रक्रिया</u>

सक्रिय रणनीति

समग्र और सतत प्रक्रिया
रोकथाम

त्वरित और प्रभावी
तैयारी

क्षमता विकास

स्रोत: *आपदा प्रबंधन पर राष्ट्रीय नीति, 2005: पृष्ठ-08*

मानवनिर्मित आपदाओं के विपरीत बाढ़ भूकंपों और चक्रवातो को टाला नहीं जा सकता, तथापि, जोखिम प्रवण क्षेत्र में विकास कार्य की सही आयोजना के साथ-साथ उपशमन उपायों से, इन खतरों को आपदाओं में तब्दील होने से रोका जा सकता है। ऐसे में पर्यावरण प्रबंधन का साध्य अपने आप पूर्ण होगा इसी विचार के अंतर्गत आपदा प्रबंधन को देश भर में विभिन्न संस्थाओं और संरचनाओं के साथ मिलकर कार्यरूप दिया जाने लगा है। *आपदा प्रबंधन पर राष्ट्रीय नीति, 2005* के अनुसार देश के प्रत्येक जिले में एक जिला आपदा प्रबंधक का पद सृजित किया गया है। यह अधिकारी स्थानीय स्तर के विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी निकायों के सदस्यों के साथ मिलकर जिला आपदा प्रबंधन की एक परियोजना तैयार करता है और उसको अंमल में लाने के लिए कार्यरत होता है।

ज्ञान शांति मैत्री

4.8 सारांश

मनुष्य के लिए पर्यावरण या पर्यावरण के लिए मनुष्य इस बहस में अंतर्गत पर्यावरण प्रबंधन और विकास का मुद्दा आज भी फंसा हुआ नज़र आता है। सतत विकास नीति के अंतर्गत वैश्विक स्तर पर काफ़ी बदलाव लाया है बावजूद इसके विकास की होड़ और आगे बढ़ते रहने की इच्छा से पीड़ित मनुष्य पर्यावरण के प्रति आज भी उतना सचेत नहीं है। केवल नीतियाँ, कानून बनाने से पर्यावरण विकास नहीं होना है। विभिन्न वैश्विक परिषदों में नए-नए नियम बनाए गए हैं, लेकिन विकसित और विकासशील के खेमे में बँटा विश्व अपने ही द्वारा बनाए गए नियमों पर न चलने के लिए मजबूर है।

इन परिस्थितियों को बदलने के लिए भारत सरकार ने पर्यावरण शास्त्र को सभी पाठ्यक्रमों में आवश्यक तथा अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया है। पर्यावरण बचाव जैसे आंदोलनों ने तीव्रता पकड़ ली है। गैर-सरकारी संगठन, स्वयंसेवी संगठन बड़ी मात्रा में इन मुद्दों को लेकरकार्य कर रहें है। ऐसे में इनके साथ मिलकर सामाजिक कार्य पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण के प्रति जागरूकता, जैसे मुद्दों पर कार्यरत है। आपदा

प्रबंधक के रूप में वे अपनी भूमिका का निर्वहन बखूबी कर रहें हैं। हाल ही में भारत के योजना आयोग के विशेषज्ञों ने समावेशी विकास में अल्प कार्बन रणनीति पर अपनी रिपोर्ट (2014) जमा की है, जो बेहद अहम् है, लेकिन इसकी उपेक्षा की जा रही है। पर्यावरण बनाम विकास के मुद्दे ने पर्यावरणवादको जन्म दिया है, जिसमें आधुनिक विकास के लालच भरे विचारों के चलते पर्यावरण संरक्षण के सारे नीति नियम धराशाही हो रहे हैं।

4.9 बोध प्रश्न

1. पर्यावरण क्या है? समझाएँ।
2. प्राकृतिक स्त्रोतों पर विस्तार से चर्चा करें।
3. प्रदूषण क्या है? उसके प्रकारों के बारें में चर्चा करें।
4. जल प्रदूषण को समझाते हुए उसके स्त्रोत और प्रभावों की चर्चा करें।
5. वायु प्रदूषण से आप क्या समझते हैं
6. रेडियोधर्मी प्रदूषण से क्या तात्पर्य है? समझाएँ।
7. मृदाप्रदूषण को रोकने के स्थानीय तरीकों पर चर्चा कीजिए।
8. पर्यावरण प्रबंधन पर चर्चा कीजिए।
9. आपदा प्रबंधन की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

Agenda 21. (1992). *United Nations Conference on Environment & Development; United Nationas Sustainable Development.* Rio de Jeneriyo.

Dale, J. (2007). The Heart of Environmentalism. In S. R., & P. C. Pezzullo, *Environmental Justice and Environmentalism* (pp. 85-101). Massachusetts: Massachusetts Institute of Technology Press.

(2007). *Global Environment Outlook-4 Environment for Development.* U.S.A.: United Nations Environment Programme.

policy Support. (n.d.). Retrieved अप्रैल 10, 2016 , from hi.vikaspedia.in: http://hi.vikaspedia.in/rural-energy/policy-support/92d93e930924-915940-92a93094d92f93e935930923-92894092493f

(1987). *Report of the World Commission on Environment and Development: Our Common Future.*

(n.d.). *Strategic Plan 2012-13 to 2016-17 (Aligned with 12th Five year Plan)*. New Delhi: Ministry of Environment and Forests .

पर्यावरण, पारिस्थितिकी और विकास. (2013, मई 29). Retrieved अप्रैल 13, 2016 , from bhartiyapaksha.wordpress.com: पाठक, अ. (n.d.). *India Water Portal*. Retrieved april 12, 2016 , from http://hindi.indiawaterportal.org: http://hindi.indiawaterportal.org/node/39605

पाण्डेय, के. पी., भारद्वाज, अ., &पाण्डेय, आ. (2005). *पर्यावरण शिक्षा एवं भारतीय संदर्भ* नई दिल्ली.

पालेश्वर, रे. (n.d.). *पर्यावरण प्रदूषण : कानून और क्रियान्वयन*. Retrieved अप्रैल 10, 2016, from hindi.indiawaterportal.org: http://hindi.indiawaterportal.org/node/47232

(2006). *राष्ट्रीय पर्यावरण नीति-2006* .पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार .

(2013). *वार्षिक रिपोर्ट 2012-13*.पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार .

सिन्हा, क्रांति कुमार (n.d.). *प्राकृतिक स्त्रोतों का संरक्षण एवं पर्यावरण* Retrieved अप्रैल 12, 2016, from hindi.indiawaterportal.org: http://hindi.indiawaterportal.org/node/47228

अन्य उपयोगी वेबसाईट

http://envfor.nic.in/hi/rules-regulations/national-green-tribunal-ngt

http://www.moef.nic.in/sites/default/files/cbipmp/index.htm

http://egreenwatch.nic.in/

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई : 05 युवा विकास

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 युवा : अर्थ व परिभाषा
5.3 युवा समस्याएँ
5.4 युवा विकास की अवधारणा
5.5 वर्तमान युवा विकास
5.5.1 युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय
5.5.2 नेहरू युवा केंद्र
5.5.3 राष्ट्रीय सेवा योजना
5.5.4 कौशल विकास संबंधी कार्यक्रम
5.6 सारांश
5.7 बोध प्रश्न
5.8 संदर्भ एवं उपयोगीग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. युवा एवं युवा विकास की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. समाज कार्य में युवाओं के कल्याण,सेवा और विकास से संबंधित कार्यक्रमों को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. युवाओं के विकास के लिए सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयत्नों को विश्लेषित कर सकेंगे।
4. युवाओं की समस्या को समझते हुए उनके लिए उचित कार्यक्रमों का निर्धारण कर पाएँगे।

5.1 प्रस्तावना

युवा किसी भी देश की महत्वपूर्ण पूंजी में से एक होता है। आर्थिक अध्ययन बताते हैं कि 15 से 55 साल तक की उम्र में व्यक्ति उत्पादक तथा श्रम का स्रोत होता है। ऐसे में कोई भी देश यह चाहेगा कि उसके पास इस उम्र की जनसंख्या ज़्यादा हो, क्योंकि व्यक्तिगत आय के रूप में इनकी सहभागिता ज़्यादा होती है। जनसंख्या का यह हिस्सा बाकी तबकों(0 से 15 और 56 से आगे की उम्र वाले) का भार वहन करता है। ऐसे में इस मध्यम आयु की देश के अर्थव्यवस्था में भागीदारी काफ़ी महत्वपूर्ण मानी जाती है। राष्ट्रीय युवा नीति-2014 के अनुसार युवाओं को परिभाषित करते हुए उनकी आयु का निर्धारण 15 से 29 साल किया गया है। जनसंख्या में 15-29 वर्ष की आयु के युवा 27.5% हैं। नीति निर्माताओं को यह

आशा है कि भारत 2025 तक अमेरिका, चीन, जापान के बाद वैश्विक घरेलू उत्पाद में लगभग 5.5 प्रतिशत से 6 प्रतिशत तक योगदान करने वाली विश्व की बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। जहाँ एक ओर इनमें से अधिकांश देशों में श्रम शक्ति के वृद्धि होने का खतरामंडरा रहा है, वहीं दूसरी ओर भारत में जनसांख्यिकीय रूपरेखा बहुत अनुकूल होने की आशा है। जैसे कि आँकड़े बताते है 2020 तक भारत की जनसंख्या 1.3 बिलियन से अधिक हो जाने की संभावना है, जिसकी मध्यम आयु 28 वर्ष होगी, जो चीन और जापान की संभावित मध्यम आयु से काफ़ी कमहै। भारत की कामकाजी आबादी वर्ष 2020 तक बढ़कर 592 मिलियन होने की आशा है, जो केवल चीन से कम होगी (776 मिलियन), इसका अर्थ यह लागाया जा रहा है कि भारत के आर्थिक विकास में युवा महत्वपूर्ण योगदान करेंगे। इसे 'जनसांख्यिकीय लाभ' के रूप में देखा जाने लगा है। इस लाभको प्राप्त करने के लिए भारत को काफ़ी निवेश भी करना होगा, क्योंकि वर्तमान में युवाओं की स्थिति बड़ी खराब है। उनमें शिक्षा,स्वास्थ्य, कौशल आदि को लेकर काफ़ी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। अगर भारत को इस लाभ को प्राप्त करना है तो इस तबके को सामाजिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य और कौशल आदि के लिए एक वातावरण उपलब्ध कराना होगा और इसके लिए उचित निर्देशों के साथ कार्यक्रमों का परिचालन करना होगा।

युवा वर्ग आर्थिक लाभ के लिए ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक व्यवस्थाओं के लिए भी रीढ़ का काम करता है। इसलिए आर्थिक लाभ के साथ-साथ उक्त कारकों को भी युवाओं के विकास में स्थान मिलना चाहिए, क्योंकि एक स्वस्थ समाज ही आर्थिक लाभों का उचित और सुनियोजित विनिमय करता है। ऐसे में समाज कार्य की यह ज़िम्मेदारी है कि युवाओं को एक उन्नत मानव संसाधन के रूप में महत्व दिलाने की कोशिश करें इसके लिए सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा उनके लिए कल्याणकारी कार्यक्रमों का संचालन करे। साथ ही युवाओं में विचलन की स्थितियों में सुधार लाने के लिए निर्देशन, परामर्श की सुविधाएँ उपलब्ध कराए, जिससे युवाओं का विकास हो।

5.2 युवा: अर्थ और परिभाषा:

समान्यत: युवा से तात्पर्य लगाया जाता है कि एक ऐसा व्यक्ति, जिसकी अपनी समझ विकसित हुई है या, जो ज़िम्मेदारी लेने के लिए तैयार है। ऐतिहासिक परिदृश्य में हम देखते हैं कि युवा की परिभाषा में काफ़ी उतार-चढ़ाव दिखाई देते है। हिंदू दर्शन में व्यक्ति की चार अवस्थाओं का वर्णन मिलता है लेकिन उसमें कहीं भी युवा अवस्था का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता; बावजूद इसके गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति ज़िम्मेदारी लेने की स्थिति में होता है, ऐसा माना जाता था।

बदलते समय में काफ़ी बदलाव आए औद्योगीकरण के कारण श्रमिकों की माँग बढ़ गई, जिसके पूर्ति के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति के लिए बच्चों, महिला और वृद्धों से ज़्यादा, बेहतर श्रमिक के रूप में युवाओं की माँग थी। किंतु नियोजक ज़्यादा मुनाफा कमाने के लिए महिला, बच्चों और वृद्धों से भी काम ले रहे थे। इस शोषण के विरुद्ध न्याय की माँग हुई तब श्रमिकों के श्रम के घंटों का

निर्धारण भी हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात इसमें और तेज़ी आई, जिसमें श्रमिकों के लिए एक नियत पैमाना बन गया, जिसमें उनका आयु निर्धारण महत्वपूर्ण घटना थी। इसके बाद लगातार इसमें परिवर्तन दिखते हैं। इसमें से कुछ समकालीन परिवर्तन निम्नवत हैं-

संयुक्त राष्ट संघ(2013) एक अंतरराष्ट्रीय संगठन है, इसके अनुसार "युवा 15 से 24 वर्ष तक की आयु का व्यक्ति है"

भारत की *राष्ट्रीय युवा नीति-2014* में लिखा गया है कि "युवा किसी निर्धारित आयु-वर्ग से अधिक व्यापक श्रेणी है। प्राय: अनिवार्य शिक्षा छोड़ने तथा अपना पहला रोज़गार पाने के बीच वाली आयु के व्यक्ति को युवा माना जाता है।" राष्ट्रीय युवा नीति-2013 में "युवा को 13 से 35 वर्ष तक की आयु के व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया था, लेकिन बाद में राष्ट्रीय युवा नीति-2014 में अधिक सकेंद्रित दृष्टिकोणों को अपनाया गया, जिसमें युवा वर्ग को 15 से 29 वर्ष के रूप में परिभाषित किया गया है" साथ में यह जोड़ा गया है कि "इस तथ्य को समझने कि जरूरत है कि इस आयु-वर्ग में आने वाले सभी युवा व्यक्तियों का एक जैसे सरोकारों और जरूरतों वाले समान समूह मेंशामिल होना संभाव नहीं है तथा उनकी भूमिकाएँ और उत्तरदायित्व अलग-अलग हैं"

मनोविज्ञान के. क्षेत्र में युवा से तात्पर्य एक खास अवस्था से लगाया जाता है, जिसमें विभिन्न शारीरिक परिवर्तन, सामाजिक असामजस्यता, आदि के अंतर्गत इसे दर्शाया जाता है, लेकिन फिलहाल संयुक्तराष्ट्र एवं भारत की युवा नीति-2014 में रेखांकित युवा का आयु वर्ग और मनोविज्ञान के क्षेत्र में परिभाषित युवा का आयु वर्ग भिन्न-भिन्न नज़र आते हैं। ऐसा लगता है की नीति में युवाओं के आयु वर्ग में किशोर अवस्था को भी जोड़ दिया गया है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में किशोरावस्था से तात्पर्य 14 से 18 वर्षकी आयु वर्ग के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस समय में व्यक्ति में अनेक प्रकार के परिवर्तन प्रदर्शित होते हैं या यूं कहें कि यह व्यक्ति के जीवन का क्रांतिकारी समय होता है, जिसमें उद्विकास शिखर पर होता है। इस समय में अनेक प्रकार की परिपक्वता की ओर वह अग्रसर होता है, जैसे- शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक और व्यवहारिक आदि। यही वह समय है जब व्यक्ति का स्व-विकसित होने लगता है। अपना मूल्यांकन अपने आस-पास के लोगों, मित्रों के आधार पर करता है। वह अपने लिए एक आत्म-अवधारणा तय कर लेता है और वैसे ही लोगों से मिलना-जुलना पसंद करता है। इस अवस्था में व्यक्तित्व प्रतिमानों का स्थिरीकरण व्यापक पैमाने पर होता है। हरलॉक ए० बी० (1955)*Adolescent Development* के अनुसार उन किशोरों और किशोरियों के व्यक्तित्व प्रतिमान अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त तथा समुचित होते हैं, जो-

1. लक्ष्य निर्धारण में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाते हैं
2. जो अपनी शक्ति तथा कमजोरियों का सही मूल्यांकन करते हैं
3. जिनके स्व में स्थायित्व होता हैं
4. जो अपनी उपलब्धियों से संतुष्ट होते हैं तथा अपनी कमजोरीयों में सुधार का प्रयत्न करते हैं।

युवाओं की बुनियाद ही किशोरावस्था से शुरू होती है ऐसे में उन्हें उचित मार्गदर्शन मिलना बहुत ज़रूरी है वरना उन में कुसमायोजन की समस्या पैदा हो सकती है। इसलिए माना जाता है कि किशोरों के मन में जो आत्म-अवधारणा है वही तय करती है कि उसका व्यक्तित्व कैसा होगा।

एरिक एरिक्सन (1963) अपनी *मनोसामाजिक सिद्धांत* में व्यक्ति के विकास के बारें में चर्चा करते हैं इस सिद्धांत में हम राष्ट्रीय युवा नीति 2014 में निर्धारित आयु वर्ग 15 से 29 को समझ सकते हैं। एरिक एरिक्सन अपने सिद्धांत में इस आयु वर्ग को दो वर्गों में विभाजित करके समझाते हैं, पहली-किशोर अवस्था (13 से 18) और दूसरी- प्रारंभिक प्रौढ़ अवस्था (19 से 35) इसे हम निम्नवत समझेंगे-

अ० सं०	मनोसामाजिक अवस्था	मनोसामाजिक विशेषता	महत्वपूर्ण संबंधों का क्षेत्र	अनुकूल परिणाम
1	किशोर अवस्था (13 से 18)	पहचान बनाम भूमिका द्वंद्व	समकक्ष समूह एवं बाह्य समूह, नेतृत्व के आदर्श व्यक्ति	समर्पण एवं निष्ठा
2	प्रारंभिक प्रौढ़ अवस्था (19 से 35)	घनिष्ठता बनाम अलगाव	मित्रता, यौन प्रतिस्पर्धा और सहयोग	संबंध एवं प्यार

1. **किशोर अवस्था:** इस अवस्था तक पहुँचते हुए व्यक्ति का काफ़ी विकास हो चुका होता है। ऐसे में वह अपनी पहचान बनाने एवं उसे प्रभावशालीता में तब्दील करने की आकांक्षा रखता है। इसलिए इस समय को पहचान संकट (Identity Crisis) के रूप में परिभाषित किया जाता है। अपने लक्ष्य निर्धारित करते हुए वह उन तक पहुँच बनाने के लिए अपनी भूमिका का निर्धारण कर व्यवहार करता है। एरिक्सन का कहना है कि जो किशोर इसमें असफल हो जाते हैं, उनमें भूमिका द्वंद्व एवं पहचान का संकट उभरता है। अपने आप को समायोजित न कर पाने के स्थिति में उनमें समर्पण एवं निष्ठा के विकास में अवरोध पैदा होते हैं। ऐसे में वह अनुकूल परिणाम प्राप्ति में असफल हो जाता है।
2. **प्रारंभिक प्रौढ़ अवस्था:** इस अवस्था में मित्र-समूह में बढ़ोतरी हो जाती है, जिसके चलते प्रतिस्पर्धा तथा सहयोग की भावना बढ़ जाती है साथ ही शारीरिक बदलाओं के कारण लैंगिकता का प्रभाव भी बढ़ता है। परिणामस्वरूप, अन्य लोगों के प्रति प्रेम की भावना मजबूत होने लगती है। इसके विपरीत निराशा, असफलता, हीनता एवं द्वंद्व होने पर एकाकीपन की प्रवृत्ति बढ़ती है व्यक्ति लोगों से दूर होने लगता है इसे अलगाव के रूप में परिभाषित किया जाता है। परिणामत: उनके समायोजन का स्तर खराब हो जाता है।

अत: इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि युवा अवस्था ही वह बुनियादी अवस्था है जिसमें सँवारने का मौका भी होता है तथा विचलित व्यवहार का स्रोत भी उपलब्ध होता है। यह ऐसी द्वंद्वात्मक स्थिति होती है, जिसमें उचित मार्गदर्शन महत्वपूर्ण आवश्यकता बन जाती है।

5.3 युवा समस्याएँ :

युवा अवस्था ऐसी अवस्था है, जो बाल्यावस्था की बुनियाद पर टिकी होती है तथा प्रौढ़ अवस्था का निर्देशन करती है। कुछ विद्वानों ने इस अवस्था को क्रांतिकारी, शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक परिवर्तनों के कारण जीवन का सबसे कठिन काल माना है। इसलिए युवाओं के सामे समायोजन की अनेक समस्याएँ होती है। उचित पथ-प्रदर्शन के कमी के कारण उनमें काफ़ी समस्याएँ उभरती है। यह माना जाता है कि युवा अवस्था स्थिरता से भरी होती है। एक पल में वह खुश रहते है और दूसरे ही पल में वह निराशा में डूब जाते हैं और अपने को असहाय पाते हैं। वे बहुत ही भावनिक हो जाते हैं। इस अस्थिरता का कारण कुछ विद्वानों के अनुसार हारमोन परिवर्तन और परिवर्तन की प्रक्रिया की नासमझी को मानते हैं।

युवा स्वयं के प्रति अनिश्चित होते हैं। बावजूद इसके वह परिवार, समूह और समाज में खुद को समायोजित करने का सदैव प्रयत्न करते रहते हैं। ऐसे में अतिरिक्त महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति न होना उनमें संवेगात्मक अस्थिरता पैदा करता है। यही अस्थिरता ही महत्वपूर्ण कारक है, जो युवाओं में अन्य समस्याओं की उत्पत्ति का रास्ता बनाता है। वे अपना एक रास्ता तय करके चलना चाहते है, जिसे वह अपने लिए आदर्श मान चुके होते हैं, किंतु जब उनके इस स्व-आदर्श को ठेस पहुँचती है, तो वे तितर-बितर हो जाते हैं। युवाओं की अस्थिरता एवं असमायोजन के लिए निम्न कारकों को ज़िम्मेदार माना जाता है

1. तीव्र शारीरिक बदलाव
2. हारमोन में परिवर्तन होना
3. ज्ञान एवं अनुभव में अभाव
4. महत्वाकांक्षा की पूर्ति न होना
5. उचित परामर्श और दिशा-निर्देश का नहीं मिलना
6. स्व की अस्पष्ट भूमिका
7. समकालीन स्थितियों का मूल्यांकन न कर पाना
8. उचित निर्णय-प्रक्रिया का अभाव
9. वचनबद्धता का अत्याधिक दबाव
10. विश्वपटल पर स्वयं की छवि का उत्कीर्णन करने की तीव्र अभिलाषा

उक्त कारकों के कारण युवा का परिवार, समूह, समाज में उचित समायोजन नहीं हो पाता है और समस्याएँ उत्पन्न होने लगती है। आज के युवा नया कुछ करने या सृजनात्मक करने की इच्छा रखते हैं। यही कारण है कि वे पूरानी सब चीजों को खारिज करने लगते हैं। विश्वपटल पर अपनी छवि बनाने कीअभिलाषा वे

ज्ञान शांति मैत्री

रखते हैं, किंतु यह तीव्र अभिलाषा या उनकी तीव्र बौद्धिक क्षमता उनमें कई विकृतियाँ भी उत्पन्न करती हैं। आकृति: 01 में युवाओं मे आने वाली कुछ प्रमुख समस्याओं को दर्शाने की कोशिश की गई है।

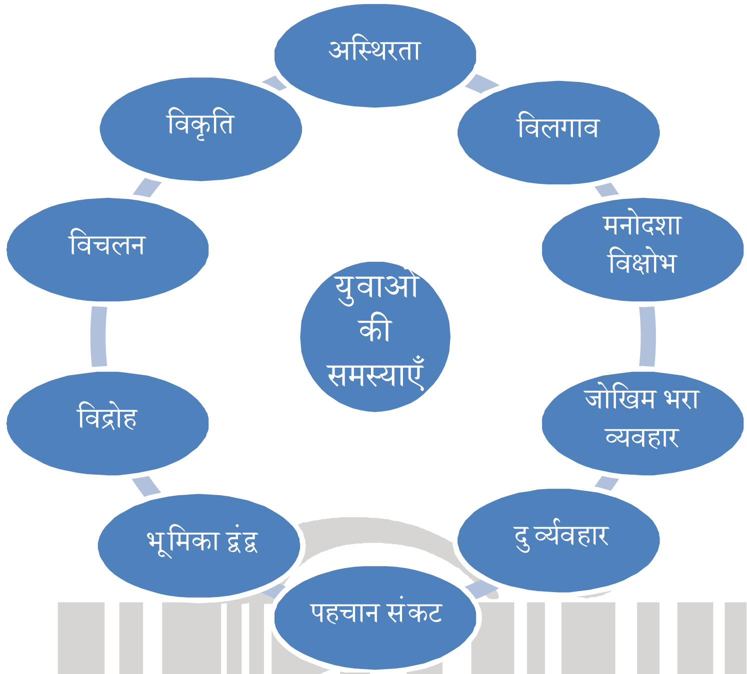

युवाओं की समस्याएँ

5.4 युवा विकास की अवधारणा :

युवाओं के प्रति प्रत्येक समाज हर समय में चिंतित रहा है। समाज में आए बदलाओं के अनुसार युवाओं को देखने का नज़रिया भी बादल गया है। कुछ साल पहले तक हम 'युवा कल्याण' की बात किया करते थे, लेकिन आज हम 'युवा विकास' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसकी जड़ों को हम समाज कार्य के इतिहास में खोजते है तब पता चलता है कि समाज कार्य में जिस तरह से समाज को देखने का नज़रिया बदला है। उसी तरह अवधारणाओं में परिवर्तन दिखाई देता है। रोमानिशीन(Romanyshyn) के अनुसार आज जिस जगह हम खड़े है, उसके लिए हमें निम्न चरणों से गुज़रकर जाना पड़ा है-

- अवशेषों से संस्थागत अवधारणा
- परोपकार से नागरी अधिकार
- विशिष्ट से वैश्विक
- लघुत्तम से पर्याप्त
- वैयक्तिक से सामाजिक सुधार
- स्वयंसेवी से सार्वजनिक
- गरीबों के कल्याण से एक कल्याणकारी समाज

1944 में प्रकाशित वेबरीज़ रिपोर्ट में हमें कल्याणकारी राज्य द्वारा किए जाने वालेकार्यों की सूची मिलती है। गरीबों के कल्याण से लेकर एक कल्याणकारी समाज बनाने तक की भूमिका समाज कार्य ने अदा की है। किंतु उसके बाद वैश्विक स्तर पर आए बदलाओं ने सभी को प्रभावित किया और धीरेधीरे राज्य अपने कल्याणकारीता की भूमिका का विकेन्द्रीकरण करता दिखता है। ऐसे में विकास के विभिन्न मॉडल हमारे सामने आते हैं, जिसमें आर्थिक विकास हेतु संसाधनों का अधिकतम उपयोग आवश्यक बन जाता है। नई अवधारणा में मनुष्य को एक संसाधन के रूप में देखा जाने लगा, उसकी प्रस्थिति को व्यक्तिगत आय के रूप में नापा जाने लगा। ऐसे में विकास जैसा शब्द कल्याण का विकल्प बनकर उभरता है। कल्याण जैसा शब्द पूनर्वास प्रक्रिया पर ज़्यादा ज़ोर देता है, किंतु विकास समग्रता का द्योतक है, जिसमें व्यक्ति के सभी आयामों को शामिल किया जाने लगा है।

भारतीय परिदृश्य में हम देखते हैं कि भारत में युवा कल्याण के नाम पर सरकारी और गैरसरकारी दोनों ही माध्यमों से कार्य किया जाता है। युवा कल्याण के अनेक कार्यक्रमों को चलाने वाले स्वैच्छिक संस्थाओं में, युवक महिला ईसाई सभा, भारत स्काउट्स एंड गाइड्स, नवयुवक ईसाई सभा, भारत सेवक समाज आदि का कार्य उल्लेखनीय हैं। बावजूद इसके युवाओं के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, खेल, कौशल विकास के लिए सरकारी तौर पर मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, आय०सी०एस०एस०आर० एवं सी०एस०आय०आर० जैसे संगठन लगातार कार्यरत हैं।

1950 के दशक में कार्य शिविर आंदोलनों ने राष्ट्र निर्माण के कार्य में युवा शक्तियों को लाने एवं उनमें सहभागिता का बोध कराने का प्रयास किया। डॉ. सी. डी. देशमुख ने अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा का प्रारंभ करने का सुझाव दिया था। इस सुझाव में निहित अनुशंसा में से एक यह भी था कि कक्षा में शिक्षा को शारीरिक क्रम के साथ समाकलित करने से छात्र श्रम के महत्व को भली प्रकार से समझ सकेंगे। यह भी आशा की गई थी कि यह विद्यार्थियों को आंदोलनात्मक गतिविधियों से अलग कर सकता है।1952 में प्रारंभ किए गए सामुदायिक कार्यक्रम में ग्राम परिवर्तन अभिकर्ता के रूप में युवकों के जुटाव पर अधिक बल दिया गया था।

हरीशंकर श्रीवास्तव अपने आलेख *युवा कल्याण* में लिखते हैं कि *यह वह काल था जब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय समूहों द्वारा संबंधों पर आधारित युवा और विद्यार्थियों के अंतरराष्ट्रीय संगठनों को स्थापित किया जा रहा था। इसके लिए राजनैतिक, सामुदायिक समूहों और अन्य द्वारा प्रयत्न किए जा रहे थे। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ध्रुवीकरण भारत में भी परिवर्तित हुआ फिर भी यह अधिक काल तक अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सका और न ही इसमें पर्याप्त शक्ति थी जिस पर भरोसा किया जा सके। प्रारंभिक गति पाने के बावजूद भी युवा आंदोलनों के क्रियाकलापों हेतु युवकों को जुटाने में अधिक गतिशीलता नहीं प्राप्त हो सकी।*

1960 के दशक के अंत में एक बार पुनः युवकों के महत्व के प्रति जागृति प्रदर्शित हुई। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर युवा विद्रोह और असंतोष का असर भारत पर भी दिख रहा था, जिसके कारण भारत के नगरीय

युवक-युवतियों में अशांति का वातावरण बन गया। इसी के कारण समाज के सभी वर्गों में चिंता शुरू हुई थी। 1969 में युवाओं के लिए एक राष्ट्रीय सलाहाकार बोर्ड की स्थापना की गई। इसी समय देशमुख समिति के प्रतिवेदन को कार्यान्वित किया गया, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय सेवा योजना का संगठन किया गया। प्रतिवेदन में एक वर्ष की अनिवार्य सेवा प्रस्तावित थी। इसका मूल उद्देश्य यह था कि शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण करते हुए समाज की सेवा करना।

1972 में नेहरू युवा केंद्र युवा कल्याण के लिए खोले जाने लगे।1981-82 तक 255 केंद्र स्वीकृत किए गए तथा इनमें से 192 केंद्रों ने कार्य करना शुरू किया था। इसका मुख्य उद्देश्य विशेषत ग्रामीण क्षेत्रों में गैर विद्यार्थी युवकों हेतु क्रियाकलापों का विकास करने के लिए जिले में केंद्र बिंदु के रूप में कार्य करना था। इसके क्रिया-कलापों में, युवा नेतृत्व, प्रशिक्षण शिविर, सामुदायिक सेवा हेतु शिविर, सांस्कृतिक एवं मनोरंजनात्मक सेवाएँ तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण आदि शामिल थे। इसके बावजूद देखते हैं कि संपूर्ण भारत में अनेक सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा युवा कार्यक्रमों को चलाया गया था। मानव संसाधन विकास कृषि, श्रम एवं रोज़गार, स्वास्थ्य एवं प्रतिरक्षण मंत्रालय जैसे कुछ मंत्रालयों को हम देखते हैं कि इनके द्वारा युवाओं के कल्याण को लेकर कार्यक्रमों का आयोजन किया गया जिसका नियोजन एवं क्रियान्वयन केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किया गया जाने ला था। इस समय के प्रमुख कार्यक्रमों में से एक ग्रामीण युवा रोज़गार कार्यक्रम निमन्वत है-

ग्रामीण युवा रोज़गार कार्यक्रम

सामेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के सहायक घटक कार्यक्रम के रूप में ग्रामीण युवा स्वरोज़गार कार्यक्रम की शुरुआत 15 अगस्त 1979 में किया हुई। यह ग्रामीण युवक एवं युवतियों के लिए विशेष कार्यक्रम के रूप में कार्यान्वित किया गया।

कार्यक्रम का उद्देश्य

इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य है-

ग्रामीण क्षेत्रों में 18 से 35 वर्ष की आयु सीमा के युवक एवं युवतियों के लिए प्रशिक्षण द्वारा अनुदान के आधार पर उनके लिए स्थायी आय के स्रोत सृजन करने का प्रयास करना।

निम्न बिंदूओं पर गंभीर चिंतन के बाद ग्रामीण युवाओं के लिए विशेष कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर कार्यरूप दिया गया था।

- तीव्र गति से ग्रामीण युवाओं का शहरों की ओर बहिर्गमन पर नियंत्रण कूल आबादी का एक तिहाई हिस्सा युवा वर्ग का (18 से 35 वर्ष) है, जो किसी भी देश के विकास एवं निर्माण में बहूत बड़ा मानव शक्ति होता है उसका सदुपयोग करना एवं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अनके सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का निदान करना।

ज्ञान शांति मैत्री

- कार्यक्रम के कार्यान्वयन में यह रणनीति अपनायी गई थी कि गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों के युवक एवं युवतियों की एक विशेष संख्या को आय सृजक कार्यक्रम का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया जाए।
- लाभार्थी गरीबी रेखा से नीचे के परिवार के युवक-युवती होते हैं, अनूसूचित जाति एवं अनूसूचित जनजाती की संख्याकम-से-कम 50 प्रतिशत होनी चाहिए।
- कूल लाभार्थी में से 40 प्रतिशत महिला वर्ग से होना चाहिए, एवं ऐसे युवक-युवती, जो राष्ट्रीय वयस्क शिक्षा कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त किए हों।

वर्ष 1977 में यूनियन शिक्षा मंत्रालय ने युवा कार्यक्रमों की सूची जारी की थी उसमें से कुछ प्रमुख कार्यक्रम निम्नलिखित है-

1) राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम
2) नेहरू युवक केंद्र
3) राष्ट्रीय सेवा योजना
4) राष्ट्रीय कैडेट कोर
5) राष्ट्रीय सेवक संघ
6) स्काउट एंड गाइड
7) युवा मंडल
8) नवयुवक कृषक क्लब व फार्मर्स यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम
9) ग्रामीण युवक क्लबों के नेताओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम
10) विद्यालयी बच्चों एवं ग्रामीण युवकों हेतु शारीरिक शिक्षा एवं खेलकुद कार्यक्रम
11) पर्वतारोहण
12) योग के कार्यक्रम
13) सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों, कलाकारों को पारितोषक, सम्मान देने का कार्यक्रम
14) ग्रामीण महिलाओं हेतु कार्यात्मक साक्षरता
15) पुस्तकालय सहायता कार्यक्रम
16) नाटक, संगीत, कुश्ती, कला को बढ़ावा देना
17) शरीर प्रदर्शन
18) समूहिक आवास
19) अभिरुचि केंद्र
20) ग्रामीण व्यायामशाला
21) श्रमिक शिक्षा केंद्र
22) बाढ़ एवं सूखा पीड़ित सहायता

ज्ञान शांति मैत्री

23) विश्वविद्यालय चलचित्र परिषद
24) मनोवैज्ञानिक परामर्श केंद्र
25) दक्षता प्रशिक्षण कार्यक्रम
26) युवा छात्रावास एवं साहसिक कार्यक्रम
27) पत्राचार और दूरवर्ती शिक्षा
28) महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय नियोजन मंच
29) युवा कल्याण संबंधी शोध तथा युवकों के कल्याण के कार्यक्रमों का संचालन करने वाले कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण आदि की व्यवस्थाएँ

उक्त कार्यक्रमों को पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिकसहयोग लगातार प्रदान किया गया। बावजूद इसके छटी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में नीतिगत बदलाओं के कारण युवाओं को लेकर प्रशासन सचेत हो गया। छटी पंचवर्षीय योजना ने दर्शाया कि युवकों के चार प्रमुख पक्ष हैं जिनपर समन्वयात्मक रूप से विचार करना आवश्यक है, -विकास, एकता, संगठन तथा राष्ट्र निर्माण के क्रियाकलापों में उनकी सहभागिता के संवर्धन हेतु युवाओं का उपयोग। इन पक्षों पर विस्तृत ब्यौरा तैयार करने हेतु सामंजस्य स्थापित करने और राष्ट्रीय युवा नीति के रूप में रणनीति का विकास करने की आवश्यकता की पहचान की गई। इस संबंध मेंमार्गदर्शक सिद्धांतों का वर्णन मिलता है, जो निम्नवत है-

1. सभी युवको को अधिकाधिक समान अवसर प्रदान करना
2. युवकों की प्रतिभा को उन्मुक्त करना, जो बहुधा समाज में दमित हो जाती है
3. कार्य और सेवा द्वारा सुसंगत एवं दक्षताओं व शिक्षा के उच्चतर सामान्य स्तर को सुनिश्चितकरना
4. युवकों की बचपन व किशोरावस्था से होकर प्रौढ़ अवस्था तक तथा विद्यालयों से कार्य और सेवाजगत में निर्विघ्न संक्रामण को सुनिश्चित करना
5. उनकी शक्तियों, आदर्शवाद एवं महत्वाकांक्षाओं को विकासात्मक कार्य परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों में लगाना।

इन सिद्धांतों को अपनाते हुए 1988 में भारत में पहली युवा नीति का निर्धारण किया गया। 1990 को नई दिल्ली में एक राष्ट्रीय युवा नेता सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में 18 राज्यों एवं 3 संघशासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते हुए 162 युवक प्रतिभागी सहभागी हुए थे। इस सम्मेलन में हुई परिचर्चा में निम्न विषयों पर प्रमुखता से विमर्श हुआ-

1. नई युवा नीति के दृष्टिकोण,
2. रोज़गार एवं स्वरोज़गार के अवसरों के सृजन हेतु प्रयास,
3. स्वैच्छिक संगठनो की भूमिका,
4. राष्ट्रीय युवा कार्यक्रमों का समन्वयन और प्रबंध,
5. युवा कार्यक्रमों के द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण।

साथ ही युवा शक्ति से समाज का नव निर्माण करना इस कार्य योजना का प्रमुख लक्ष था। युवा नीति के दो महत्वपूर्ण पहलू रहे- एक नीति युवाओं के लिए और एक युवाओं की नीति(a Policy for Youth and a Policy of Youth)। सशक्त समाज निर्माण के लिए युवाओं के विकासहेतु उच्चतम संरचना उपलब्ध कराना , जिससे एक स्वस्थ नागरिक तैयार हो। एक स्वस्थ समाज के निर्माण में वे अपने सपनों को साकार करते हुए, क्या सही और क्या गलत है का निर्धारण करें, जिसके आधार पर नई समाज मान्यताओं के निर्माण एवं संचालन में वे अपना सहयोग देने में सक्षम बने। इस प्रकार युवाओं के कल्याण के लिए नए सिरे से पहल की शुरुआत हुई, जो अंत: युवा विकास पर आकर पहुँची। इस बीच लगातार नई नीतियाँ बनी, जो पूरानी नीतियों की जगह लेती रही। अपनी कमियों में सुधार करते हुए युवाओं का सहयोग राष्ट्र निर्माण में पाने और उनको अवसर उपलब्ध कराने के लिए लगातार नव-नवीन कार्यक्रम तैयार किए जाने लगे। इन में से कुछ कार्यक्रमों एवं संस्थानों के निर्माण को संक्षेप में निमन्वत देखा जा सकता है-

1. गणतंत्र दिवस परेड शिविर
2. क्षेत्रीय सम्मेलन
3. राष्ट्रीय एकीकरण शिविर
4. युवा समारोह
5. साहस कार्यक्रम
6. कार्यात्मक साक्षारता का बृहत कार्यक्रम
7. विकलांगों का पूनर्वास
8. विश्वविद्यालय युवा समारोह
9. उद्यमशील विकास कार्यक्रम
10. खिलाड़ियों के लिए राष्ट्रीय कल्याण कोश
11. युवकों को रोज़गार देने के लिए कार्य योजना
12. नवीन ग्रामीण रोज़गार योजना
13. काम का अधिकार
14. राष्ट्रीय खेल प्राधिकरण, राष्ट्रीय खेल संघ
15. महिला खेल समारोह
16. नौसेना जलयात्रा संस्थान
17. युवा साक्षरता आदि

इन कार्यक्रमों एवं संस्थाओं का यह प्रयत्न रहा कि युवा नीतियों में निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करे।

5.5 वर्तमान युवा विकास

जैसे कि भारत की राष्ट्रीय युवा नीति-2014 में युवाओं को15 से 29 वर्ष आयु वर्ग के रूप में परिभाषित किया गया है। वे इस वर्ग को 'जनसांख्यिकीय लाभ' के रूप में परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार युवा

ज्ञान शांति मैत्री

विकास और देश का विकास एक दूसरे पर निर्भर हैं इसके लिए युवा विकास के माध्यम से ही देश का विकास किया जाना चाहिए। जैसे कि युवा कार्यक्रम और खेल विभाग की रिपोर्ट- 2013-14 में लिखा है-

"इस जनसांख्यिकीय लाभ के इष्टतम उपयोग के लिए आवश्यक है कि हमारी अर्थव्यवस्था श्रमिक बल की वृद्धि में सहायता करने में सक्षम हो और युवाओं के पास समुचित शिक्षा कौशल, स्वास्थ्य जागरूकता और अन्य सक्षमता हो , जिससे वे अर्थव्यवस्था में प्रभावोत्पादकपूर्ण तरीके से योगदान कर सकें।"

युवा विकास के लिए बनाई गई भारत की राष्ट्रीय युवा नीति2014 में निम्न विजन को शामिल किया गया है-

"देश के युवाओं को अपनी पूर्ण क्षमता का विकास करने के लिए सशक्त बनाना तथा उनके माध्यम से भारत को अंतरराष्ट्रीय समुदाय में उसका सही स्थान दिलाना।"

एनवायपी-2014 का घोषवाक्य है, सपनों को वास्तव में लाने हेतु भारत के समर्थ युवा। (Enabling India's Youth to Realize their dreams)।एनवायपी-2014 में दर्शाया जा रहा है कि वर्तमान में युवा शक्ति के रूप में भारत चीन के बाद दूसरे स्थान पर है।2011 की जनसंख्या के अनुसार भारत में15-29 वर्ष आयु के युवा27.5% हैं। नीति निर्माता यह आशा रखते हैं कि भारत वर्ष2025 तक अमेरिका, चीन जापान के बाद वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में लगभग5.5% से 6% तक योगदान करने वाली चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। जहाँ एक ओर इनमें से अधिक देशों में श्रम शक्ति के वृद्धि होने का खतरा मंडरा रहा है, वहीं दूसरी ओर भारत की जनसांख्यिकीय रूपरेखा बहुत ही अनुकूल होने की आशा रखते हैं। वर्ष 2020 तक भारत की जनसंख्या 1.3 बिलियन से अधिक हो जाने की संभावना है, जिसकी माध्यम आयु 28 वर्ष होगी, जो कि चीन और जापान की संभावित आयु से काफ़ी कम है। भारत की कामकाजी आबादी वर्ष 2020 तक बढ़कर 592 मिलियन होने की आशा की जा रही है, जो कि केवल चीन (776 मिलियन) कम होगी। इसका यह अर्थ लगाया जा रहा है कि युवा देशके आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान करेंगे। इस 'जनसांख्यिकीय लाभ' से भारत को बेहतर अवसर प्राप्त होंगे।

एनवायपी-2014 ने अपने विजन प्राप्ति के लिए पाँच प्रमुख उद्देश्य और इन उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए युवा विकास हेतु 11 प्राथमिकता वाले क्षेत्र चिन्हित किए है, यह निमन्वत है-

उद्देश्य

1. उत्पादक श्रमशक्ति तैयार करना,
2. मजबूत और स्वस्थ पीढ़ी का विकास,
3. सामाजिक मूल्यों की शिक्षा देकर सामुदायिक सेवा को बढ़ाना,
4. भागीदारी और सामाजिक विनियोजन को बढ़ावा देना,
5. जोखिमग्रस्त युवाओं की सहायता करके सभी को समान अवसर प्रदान करना।

प्राथमिकता वाले क्षेत्र

ज्ञान शांति मैत्री

1. **a**. शिक्षा,
   b. उद्यमशीलता,
   c. रोज़गार और कौशल।
2. **a**. स्वास्थ्य और स्वस्थ जीवन शैली,
   b. खेल।
3. **a.** सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा देना,
   b.सामुदायिक विनियोजन।
4. **a.** राजनीति और शासन में भागीदारी,
   b. युवा विनियोजन।
5. **a.** समावेशन,
   b. सामाजिक न्याय।

इस उद्देश्य के प्राप्ति के लिए प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में युवाओं के विकास हेतु स्टेकहोल्डरों(अंतरराष्ट्रीय संगठन, विभिन्न मंत्रालय तथा मीडिया आदि) के सहयोग से इसकी आवश्यकता पूर्ति की जरूरत को महसूस किया गया है। भारत सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास और नियोजन के क्षेत्रों में युवा विकास पर लक्षित योजनाओं पर लगभग37,000 करोड़ रुपये तथा आबादी के विभिन्न वर्गों के लिए बनाई गई उन योजनाओं पर लगभग55,000 करोड़ रुपए व्यय करती है, जिनका मुख्य लक्ष्य युवा न होते हुए भी, इसके लाभार्थियों में काफ़ी युवा होते हैं। यह व्यय कुल मिलाकर लगभग, 2710 रुपए प्रति युवा है, जिसमें से 1,100 रुपए लक्षित व्यय है।

नीति के अंतर्गत युवा विकास की पहल सराहनीय है। बावजूद इसके इस उद्देश्य प्राप्ति के लिए काफ़ी चुनौतियों का सामना भी करना पड़ेगा। भावी कार्ययोजना के विषय में कुछ सिफ़ारिशों पर भी हमें गौर करना चाहिए। युवा विकास की चुनौतियों की व्यापकता को देखते हुए सभी स्टेकहोल्डरों द्वारा समेकित प्रयास किए जाने की अत्यावश्यकता को रेखांकित किया गया है। साथ ही इस बात की आवश्यकता को भी महसूस किया गया है कि युवा विकास और उनकी भागीदारी के लिए निर्धारित उद्देश्यों के संबंध में स्टेकहोल्डरों के बीच तालमेल हो और युवाओं के समग्र विकास में मदद करने के लिए ऐसे नवीन समाधानों को खोजा जाए, जिनमें उपलब्ध संसाधनों और साधनों का इस्तेमाल हो। सिफ़ारिशों को निम्न बिंदुओं के आधार पर रेखांकित किया गया,हैजैसे-

1. जनसंख्या से लाभ प्राप्त करने के लिए भारत सरकार को युवा विकास के क्षेत्र में अधिक निवेश करने की जरूरत है;
2. युवाओं से जुड़े मुद्दों को विकास प्रक्रिया की मुख्यधारा में शामिल किया जाना चाहिए।इसके लिए

- आरएफडी (परिणाम फ्रेमवर्क दस्तावेज़) में युवा विकास को शामिल करना तथा

- प्रमुख मंत्रालयों को 'यूथ कनेक्ट' कार्यक्रम बनाना चाहिए।

3. सभी स्टेकहोल्डरों की भूमिका तय करना और इन पर चर्चा करना
4. युवाओं के प्रभावी विनियोजन और भागीदारी के लिए विभिन्न माध्यमों का उपयोग करना, जैसे –

- युवाओं से काम लेने के लिए आईसीटी(सूचना और संचारप्रौद्योगिकी)का इस्तेमाल तथा
- मौजूदा संगठनों के ज़रिए युवा विकास को बढ़ावा देना।

वर्तमान समय की माँग के अनुरूप युवा विकास को राष्ट्र के आर्थिक ढाँचे को मजबूती प्रदान करने हेतु युवा नीति को बनाया गया है, जिसमें युवकों के विकास के साथ-साथ राष्ट्र निर्माण पर ज़ोर दिया गया है। कुछ समय पहले जनसंख्या वृद्धि को समस्या के रूप में रेखांकित किया जा रहा था उसी समस्या को सकारात्मक नज़रिए से देखते हुए संभावनासम (Probartunity) बनाने का प्रयास इस नीति के अंतर्गत किया जा रहा है।

इस नीति के अनुरूप देश में विभिन्न मंत्रालयोंद्वारा अनेकों कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। युवा कार्य और खेल मंत्रालय जैसा एक खास विभाग युवा विकास को लेकर विभिन्न कार्यक्रम आयोजन एवं क्रियान्वयन कर रहा है साथ ही नेहरू युवा केंद्र, राष्ट्रीय सेवा योजना जैसे कार्यक्रम आज भी युवा विकास में अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी दर्ज कर रहें है। इसमें से कुछ कार्यक्रमों को संक्षेप में समझेंगे।

5.5.1 युवा कार्य और खेल मंत्रालय

युवा कार्य और खेल मंत्रालय की स्थापना नई दिल्ली में 9 वें एशियाई खेलों के आयोजन के समय 1982 में खेल विभाग के रूप में की गई थी। इसका नाम अंतरराष्ट्रीय युवा वर्ष, 1985 के आयोजन के दौरान युवा कार्य और खेल विभाग रखा गया था। यह 27 मई 2000 को एक मंत्रालय बनाया गया। तत्पश्चात मंत्रालय को युवा कार्य विभाग और खेल विभाग नामक 2 विभागों में 30 अप्रैल 2008 को विभाजित किया गया जिनके दो अलग अलग सचिव थे। इन दोनों विभागों द्वारा निर्वाह किए जाने वाले विशिष्ट विषय भारत सरकार के आदेश (कार्य का आबंटन नियम, 1961) में निहित हैं।

युवा अर्थात 15 से 35 वर्ष के आयु समूह में आने वाले व्यक्ति भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 40 प्रतिशत भाग हैं। यह समूह देश की जनसंख्या का सर्वाधिक विविध और गतिशील खंड है, जो मानव संसाधन का सबसे अधिक मूल्यवान भाग है। इनकी रचनात्मक और सृजनशील ऊर्जा का अनुकूलतम दोहन करने के लिए विभाग द्वारा युवा जनों के व्यक्तित्व और राष्ट्र निर्माण के दोहरे उद्देश्यों को पूरा किया जाता है, अर्थात युवा जनों के व्यक्तित्व का विकास और उन्हें राष्ट्र निर्माण की विभिन्न गतिविधियों में शामिल करना। युवा जनों से संबंधित अधिकांश मुद्दे अन्य मंत्रालयों/विभागों अर्थात शिक्षा, रोज़गार और प्रशिक्षण, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण आदि के लिए युवा कार्य और खेल मंत्रालय की भूमिका एक

सुविधा प्रदान कर्ता तथा उत्प्रेरक की है। (अधिक जानकार्य के लिए देखें : http://yas.nic.in/hi/youthaffairs/)

5.5.2 नेहरू युवा केंद्र

ग्रामीण युवाओं को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में भाग लेने और इसके साथसाथ उनके व्यक्तित्व एवं कौशल विकास के सुअवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से नेहरू युवा केंद्रो की स्थापना1972 की गई थी। इन केंद्रो के कार्य को देखने के लिए वर्ष 1987-88 में नेहरू युवा केंद्र संगठन(नेयुकेसं) की स्थापना युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय के अंतर्गत स्वायत्तशासी संस्था के रूप में की गई थी। नेयुकेसं विश्व में अपने प्रकार की जमीनी स्तरीय सबसे बडी स्वयंसेवीसंस्था है। यह स्वैच्छिकता, स्व-सहायता और सामुदायिक प्रतिभागिता के सिद्धांतों के आधार पर 13-35 वर्ष के युवाओं की शक्ति को सही दिशा देता है।

इन वर्षों में नेहरू युवा केंद्र संगठन ने, जहाँ इसके नेहरू युवा केंद्र स्थापित हैं वहाँ गाँवों में युवा मंडलों का नेटवर्क स्थापित किया है। युवा मंडलों के गठन द्वारा विकास हेतु युवा शक्ति का उपयोग करने के लिए क्षेत्रों की पहचान करना नेहरू युवा केंद्र संगठन का मुख्य लक्ष्य है। यह युवा मंडल जमीनी स्तर पर ग्राम स्तरीय युवाओं के स्वैच्छिक कार्य समूह होते हैंजो कि युवाओं कोराष्ट्र निर्माण की गतिविधियों में शामिल करते हैं। युवा मंडलों के इस नेटवर्क में ही नेहरू युवा केंद्र संगठन की मुख्य शक्ति निहित है। युवा मंडल ग्राम आधारित संस्थाएँ हैं जो कि सामुदायिक विकास और युवा सशक्तिकरण के लिए निरंतर कार्यरत हैं।

युवा मंडलों का गठनयुवा सदस्यों द्वारा किया जाता है, जोकि 15-35 वर्ष की आयु के होते हैं। युवा मंडलों के सृजन का मुख्य उद्देश्य युवा सशक्तिकरण पर ध्यान केंद्रित करते हुए विकासात्मक पहलों की गतिविधियों के माध्यम से समाज को सहयोग करना है। युवा मंडलों की गतिविधियाँ एवं कार्यक्रम स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित होते हैं जिनका कार्यान्वयन विभिन्न स्थानीय विभागों एवं एजेंसियों, जिसमें राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय तथा बहुआयामी संस्थान शामिल हैं इनके द्वारा स्थानीय संसाधन एकत्रित करके किया जाता है। युवा मंडल एवं इसके सदस्य नेहरू युवा केंद्रों के विशाल राष्ट्रीय ग्रामीण नेटवर्क के आधार को तैयार करते हैं।

उद्देश्य

नेहरू युवा केंद्र संगठन के उद्देश्य दो प्रकार के है-

ग्रामीण युवाओं को राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों में शामिल करना।

उनमें ऐसे कौशल एवं मूल्यों को विकसित करना, जिससे कि वे आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष तथा तकनीकी राष्ट्र के उत्तरदायी एवं सृजनकारी नागरिक बन सकें।

नेहरू युवा केंद्र संगठन, युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय के युवा विकास संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों तथा कुछ अन्य मंत्रालयों के सहयोग एवं समन्वय द्वारा कुछ विशेष कार्यक्रमों के कार्यान्वयन का कार्य कर रहा है। इन कार्यक्रमों में विशेष रूप से अच्छी नागरिकता के मूल्यों को विकासित करना, धर्मनिरपेक्ष रूप से

सोच और व्यवहार को विकसित करना, कौशल विकास करना और युवाओं को सृजनकार्य एवं संगठनात्मक व्यवहार को अपनाने में सहायता करने पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है।

दृष्टिकोण

संगठन के दृष्टिकोण में जमीनी स्तर पर अच्छे नागरिक और युवा नेतृत्व के लिए दीर्घ आवधिक विकासात्मक गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। युवा मंडलों का गठन किया जाता है और उन्हें खेल, सांस्कृतिक और स्थानीय गतिविधियों में प्रतिभागिताओं के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। युवा मंडलों के गठन एवं निरंतरता के लिए युवा नेतृत्व का विकास किया जाता है। यह नेतृत्व निम्नलिखित सृजनात्मक कार्यों के लिए अत्यंत लाभदायक है-

स्वयं सेवा के नेटवर्क

मूलभूत लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग लेने के सुअवसर उपलब्ध कराना और विकास करना

युवाओं के सशक्तिकरण में सहायता करना जैसे कौशल उत्पत्ति स्वास्थ्य एवं जीवन कौशल के प्रति जागरूकता लाना एवं स्वरोज़गार।

भारत की जनसंख्या का लगभग तीन चैथाई हिस्सा ग्रामीणों का है। इसलिए संपूर्ण राष्ट्र का वास्तविक विकास उनकी प्रगति एवं विकास पर निर्भर है। इसके अलावा जनसांख्यिकीय लाभांश जो इस देश को मिलता है वह युवाओं की जनसंख्या अधिक होने के कारण है। इसलिए नेयुकेसं जैसी सबसे बडी युवा संस्थाओं के लिए आवश्यक है कि वह अधिक से अधिक इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करें क्योंकि हमने युवाओं को सशक्त करने का बीड़ा उठाया है।

नेहरू युवा केंद्र के बुनियादी कार्यक्रम- 2015-16

1. एक जिले में कार्यक्रम

युवा मंडल विकास कार्यक्रम (YCDP) यह समाज के सभी वर्गों से प्रतिनिधित्व के साथ युवा मंडल के मौजूदा नेटवर्क को मजबूत करने के लिए है।

युवा नेतृत्व और सामुदायिक विकास (TYLCD) पर प्रशिक्षण यह एक सार्थक जीवन जीने के लिए और राष्ट्र निर्माण की दिशा में योगदान करने के लिए नेतृत्व हेतु युवाओं में क्षमता वृद्धि करता है।

विषय परक जागरूकता और शिक्षा कार्यक्रम (TBAEP) कार्यक्रम ग्रामीण युवाओं केजीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों और चिंताओं के समाधान में क्षमता वृद्धि करेगा।

खेल (युवा मंडलो को खेल सामग्री) प्रोत्साहन यह ग्रामीण युवाओं में खेल संस्कृति तथा खेल भावना को प्रोत्साहित करता है।

महिलाओं के लिए कौशल उन्नयन प्रशिक्षण कार्यक्रम (SUTP) ग्रामीण युवा महिलाओं में व्यावसायिक कौशल विकसित करने और उनके परिवार की आय की वृद्धि करने के साथ ही दैनिक जीवन में उनके सामने आने वाली समस्याओं को दूर करने के लिए उन्हें सशक्त बनाना है।

लोक कला और संस्कृति के प्रोत्साहन यह ग्रामीण युवाओं को अपने लोक सांस्कृतिक प्रतिभा को प्रदर्शित करने और बढ़ावा देने और साथ ही उसे संरक्षित करने के अवसर प्रदान करेगा।

राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय महत्व के दिन का आयोजन राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय महत्व के एक विशेष दिन के पीछे उद्देश्य, विषय और महत्व के बारे में जागरूकता उत्पन्न करना इसका उद्देश्य है।

जिला युवा सम्मेलन और युवा कृति यह ग्रामीण युवाओं को अपने उत्पादों को प्रदर्शित करने और स्वयं को अभिव्यक्त करने तथा अनुभवों को साझा करने और युवा सशक्तिकरण के लिए सुझाव देने के लिए मंच प्रदान करेगा।

जिला राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर उत्कृष्ट युवा मंडलों को पुरस्कार(AOYC) स्वैच्छिक सेवाओं की पहचान और सामुदायिक विकास और कल्याण गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु प्रदान किए जाते है।

युवा कार्यक्रम (DACYP) पर जिला सलाहकार समिति की बैठक, यह जिले मे नेयुके के प्रभावी संचालन के लिए उचित कार्यक्रम नियोजन, समन्वय, कार्यान्वयन, पारदर्शिता और प्रबोधन के साथ निगरानी सुनिश्चित करने के लिए गठित की जाती है।

2. एक राज्य में कार्यक्रम

युवा कार्यक्रम (SACYP) पर राज्य सलाहकार समिति की बैठक यह राज्य में नेयुके के प्रभावी संचालन के लिए उचित कार्यक्रम नियोजन, समन्वय, कार्यान्वयन, पारदर्शिता और प्रबोधन के साथ निगरानी सुनिश्चित करने के लिए गठित की जाती है।

योजना, समीक्षा, बैठक की अनुवर्ती कार्यवाही चल रहे कार्यक्रमों और नेयुकेसं की गतिविधियों की प्रगति की समीक्षा करने और रचनात्मक उपायों का सुझाव दे।

3. राष्ट्रीय स्तरीय कार्यक्रम

राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय दिवसों का आयोजन

योजना, समीक्षा एवं अनुवर्ती बैठक

(अधिक जानकार्य के लिए देखें- http://www.nyks.org/hindi/aboutus/About-nyks.html)

5.5.3 राष्ट्रीय सेवा योजना :

युवा कार्य और खेल मंत्रालय के अंतर्गत राष्ट्रीय सेवा योजना कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया जाता है। गांधीजी के जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में वर्ष 1969 में इसकी शुरुआत हुई। आज 37 विश्वविद्यालयों के 40,000 विद्यार्थी इसमें शामिल हुए हैं। इसका प्राथमिक उद्देश्य सामुदायिक सेवा द्वारा विद्यार्थियों का व्यक्तित्व विकास है। वर्तमान में संपूर्ण भारत के298 विश्वविद्यालय, 42(+2) सीनियर सेकंडरी कौंसिल्स एवं डायरेक्टोरेट ऑफ वोकेशनल एजुकेशन के3.2 मिलियन विद्यार्थी स्वयंसेवकों तक इसकी पहुँच है। वे सभी इस राष्ट्री सेवा योजना के गतिविधियों का लाभ प्राप्त कर रहें है।

गतिविधियाँ

राष्ट्रीय एकता शिविर,

रक्त दान,
वृक्षारोपन,
प्रतिरक्षण (Immunization),
श्रमदान,
आपदा प्रबंधन,
साहस कार्यक्रम।
(अधिक जानकार्य के लिए देखें-http://nss.nic.in/)

5.5.4 कौशल निर्माण संबंधी कार्यक्रम

भारत में काफ़ी बड़ा कार्य बल मौजूद है और भारत में विश्वकी मानव संसाधन राजधानी बनने की पूरी क्षमता है। आज भारत में 14 से 40 वर्ष के युवा बड़ी संख्यामें मौजूद हैं। भारत की65 प्रतिशत आबादी इस समय 35 साल से कम उम्र की है। यह एक ऐसा वर्ग है, जो शारीरिक एवं मानसिक रूप से सबसे ज़्यादा ताकतवर है, जो देश और अपने परिवार के विकास के लिए हर संभव प्रयत्नकरते हैं। युवा शक्ति से भरपूर इस देश में शिक्षित युवाओं की संख्याभी अच्छी-खासी है, लेकिन स्किल या हुनर की बात आने पर तस्वीर बदल जाती है। आज अधिकांश बेरोज़गार युवकयुवतियाँ निरंतर शोषण, गरीबी और बाज़ारीकरण का दंश झेल रहे हैं।

फरवरी 2015 को संसद में प्रस्तुत आर्थिक सर्वे में कहा गया कि देश वर्कफोर्स का केवल दो प्रतिशत हिस्सा ही स्किल्ड (हुनरमंद) है। सीआईआई की इंडिया स्किल रिपोर्ट 2015 के अनुसार, भारत में हर साल सवा करोड़ शिक्षित युवा रोज़गार की तलाश में इंडस्ट्रीके दरवाजे खटखटाते हैं, लेकिन उनमें से 37 प्रतिशत रोज़गार के काबिल होते हैं। नेशनल स्किल डेवलपमेंट ऑपरेशन के ताजा आँकड़ों में साल 2022 तक भारत को 24 विभिन्न सेक्टरों में करीब 12 करोड़ स्किल्ड लोगों की जरूरत होगी। नेशनल सैंपल सर्वे के एक अध्ययन के अनुसार, कंप्यूटर प्रशिक्षण प्राप्त करीब 44 प्रतिशत और टैक्सटाइल प्रशिक्षण प्राप्त लगभग 60 प्रतिशत लोग स्किल्ड होने के बाद भी खाली बैठे हैं।

इस तसवीर को बदलने के लिए राष्ट्रीय कौशल नीति-2009 बनाई गई बाद में इसमें कुछ बदलाव कर नए रूप में 2015 में नई राष्ट्रीय युवा नीति का निर्माण किया गया। इसके लिए कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय के अंतर्गत युवाओं के लिए कौशल निर्माण के कार्यक्रम एवं विभिन्न छात्रवृत्ति को उपलब्ध कराया जाना निश्चित किया गया है। इस पूरे कार्यक्रम में एजेंसी के रूप में कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय अपनी भूमिका निभाएगा।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना

हाल में ही मंजूर की गई प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना(पीएमकेवीवाई) युवाओं के कौशल प्रशिक्षण के लिए एक प्रमुख योजना है। इसके तहत पाठ्यक्रमों में सुधार, बेहतर शिक्षण और प्रशिक्षित शिक्षकों पर

विशेष ज़ोर दिया गया है। प्रशिक्षण में अन्य पहलुओं के साथ व्यवहार कुशलता और व्यवहार में परिवर्तन भी शामिल है।

नवगठित कौशल विकास और उद्यम मंत्रालय राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी) के माध्यम से इस कार्यक्रम को क्रियान्वित कर रहा है। इसके तहत 24 लाख युवाओं को प्रशिक्षण के दायरे में लाया जाएगा। कौशल प्रशिक्षण नेशनल स्किल क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क (एनएसक्यूएफ) और उद्योग द्वारा तय मानदंडों पर आधारित होगा। कार्यक्रम के तहत तृतीय पक्ष आकलन संस्थाओं द्वारा मूल्यांकन और प्रमाण पत्र के आधार पर प्रशिक्षुओं को नकद पारितोषिक दी जाएगी। नकद पारितोषिक औसतन 8,000 रूपए प्रति प्रशिक्षु होगी।

कौशल प्रशिक्षण एनएसडीसी द्वारा हाल ही में संचालित कौशल अंतर अध्ययनों के जरिए माँग के आकलन के आधार पर दिया जाएगा।

केंद्र और राज्य सरकारों, उद्योग और व्यावसायिक घरानों से विचार विमर्श कर भविष्य की माँग का आकलन किया जाएगा। इसके लिए एक माँग समूहक मंच भी शुरू किया जा रहा है।

कौशल विकास के लक्ष्य निर्धारित करते समय हाल में ही लागू किए गए प्रमुख कार्यक्रम जैसे कि 'मेक इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, राष्ट्रीय सौर ऊर्जा मिशन और स्वच्छ भारत अभियान के माँगों को भी ध्यान में रखा जाएगा।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत मुख्यरूप से श्रम बाजार में पहली बार प्रवेश कर रहे लोगों पर ज़ोर होगा और विशेषकर कक्षा 10 व 12 के दौरान स्कूल छोड़ गए छात्रों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। योजना का क्रियान्वयन एनएसडीसी के प्रशिक्षण साझेदारों द्वारा किया जाएगा। वर्तमान में लगभग 2,300 केंद्रों के एनएसडीसी के 187 प्रशिक्षण साझेदार हैं। इनके अलावा केंद्र व राज्य सरकारों से संबंधित प्रशिक्षण प्रदाता संस्थाओं को भी इस योजना के तहत प्रशिक्षण के लिए जोड़ा जाएगा। सभी प्रशिक्षण प्रदाताओं को इस योजना के लिए योग्यहोने के लिए एक जाँच प्रक्रिया से गुजरना होगा। पीएमकेवीवाई के तहत सेक्टर कौशल परिषद व राज्य सरकारें भी कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों की निगरानी करेंगे।

योजना के तहत एक कौशल विकास प्रबंधन प्रणाली (एसडीएमएस) भी तैयार की जाएगी, जो सभी प्रशिक्षण केंद्रों के विवरणों और प्रशिक्षण व पाठ्यक्रम की गुणवत्ता की जाँच करेगी और उन्हें दर्ज भी करेगी। जहाँ तक संभव होगा प्रशिक्षण प्रक्रिया में बायोमिट्रिक सिस्टम व वीडियो रिकार्डिंग भी शामिल की जाएगी, जो पीएमकेवीआई से जानकारी ली जाएगी, जो पीएमकेवीआई की प्रभावशीलता का मूल्यांकन का मुख्य आधार होंगे। शिकायतों के निपटान के लिए एक प्रभावी शिकायत निवारण तंत्र भी शुरू किया जाएगा। इसके अलावा कार्यक्रम के प्रचार-प्रसार के लिए एक ऑनलाइन नागरिक पोर्टल भी शुरू की जाएगी।

कुल 1120 करोड़ रुपए के परिव्यय से 14 लाख युवाओं को प्रशिक्षित किया जाएगा और इसमें पूर्व शिक्षा-प्रशिक्षण को चिह्नित करने पर विशेष ज़ोर दिया जा रहा है। इस मद में 220 करोड़ रुपए का

प्रावधान किया गया है। युवाओं को जुटाने तथा जागुरुकता फैलाने के लिए67 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है। युवाओं को कौशल मेलों के ज़रिए जुटाया जाएगा और इसके लिए स्थानीय स्तर पर राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों, पंचायती राज संस्थाओं और समुदाय आधारित संस्थाओं का सहयोग लिया जाएगा।

कौशल व उद्यम विकास वर्तमान सरकार की उच्च प्राथमिकताओं में शामिल है। नवगठित कौशल व उद्यम विकास मंत्रालय की "मेक इन इंडिया" अभियान के लक्ष्यों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। यह अभियान भारत को एक विनिर्माण केंद्र के रूप में परिवर्तित करने के लिए अहम पहल है। विकासशील अर्थव्यवस्था के विनिर्माण क्षेत्र समेत सभी क्षेत्रों की माँग के अनुसार प्रशिक्षित कार्यबल तैयार करने में इस मंत्रालय की अहम भूमिका है।

इस दिशा में उठाए गए सभी उपायों को शामिल करने के लिए एक नई राष्ट्रीय कौशल व उद्यम विकास नीति भी तैयार की गई है। इस नीति के ज़रिए उच्च गुणवत्ता वाले कार्यबल के साथ विकास को बढ़ावा देने की रूपरेखा तैयार की जा रही है। वर्ष 2022 तक 50 करोड़ लोगों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य रखा गया है।

इस दिशा में प्रयास मिशन के तौर पर किया जा रहा है। राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन के तहत तीन संस्थान कार्य कर रहे हैं। राष्ट्रीय कौशल विकास परिषद प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कौशल विकास प्रयासों को नीतिगत दिशा दे रही है और इनकी समीक्षा भी कर रही है। नीति आयोग के उपाध्यक्ष की अध्यक्षता में राष्ट्रीय कौशल विकास समन्वय प्रधानमंत्री की परिषद के नियमों को लागू करने के लिए रणनीतियों पर कार्य कर रहा है। एनएसडीसी एक गैर-लाभ कंपनी है और गैर संगठित क्षेत्र समेत श्रम बाज़ार के लिए कौशल प्रशिक्षण की ज़रुरतों को पूरा कर रही है।

(अधिक जानकार्य के लिए देखें-http://msde.gov.in/)

5.6 सारांश

युवा कल्याण से लेकर युवा विकास का रास्ता हमने स्वतंत्रता के बाद तय किया है। साथ ही लगातार विभिन्न मंत्रालयों द्वारा शहरी, ग्रामीण, अनुसूचित जाती एवं जनजाति के युवाओं को सक्षम बनाने के प्रयास जारी है। समाज कार्य में युवा कल्याण से संबंध रखने वाले भारतीय विद्वान हरीशंकर श्रीवास्तव कहते हैं कि *प्राय: ऐसा होती है कि नवयुवकों में सहयोगी जीवन और जनतांत्रिक मूल्यों का विकास नहीं हो पाता है। वे स्वयं अपने कार्यक्रमों का निर्धारण एवं संचालन नहीं कर पाते। इसके अतिरिक्तविभिन्न परिस्थितियों, कारणों के परिणामस्वरूप वे स्वयं को अनेक शारीरिक, मानसिक व्याधियों से ग्रस्त बना लेते हैं, जिसके फलस्वरूप उनका स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो जाता है।* वे असमायोजित हो जाते हैं, जिसके कारण विभिन्न समस्याओं में वे स्वयं को घिरे पाते हैं। ऐसेमें उनको उचित मार्गदर्शन एवं परामर्शन की आवश्यकता होती। शारीरिक बदलाओं के प्रति समझ बनाने हेतु उन्हें लैंगिक शिक्षा की आवश्यकता होती है। आपराधिक गतिविधियों में फंसे युवाओं के लिए उपचार एवं सुधार की आवश्यकता होती है।

साथ ही मनोदशा में आने वाले तीव्र बदलाओं को समझाने के लिए एक परामर्शदाता की आवश्यकता होती है। युवा विकास के सरकारी-गैरसरकारी प्रयासों का उचित क्रियान्वयन हेतु प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता की आवश्यकता होती है। ऐसे में समाज कार्य युवा विकास की ज़िम्मेदारी का बखूबी भार वहन करने में समर्थ होता है।

समाज कार्य से संबंध रखने वाले विद्वानों का मानना है कि युवा कल्याण के कार्यक्रमों को ऐसा मोड देने की आवश्यकता है, जो युवाओं के सर्वांगीण विकास को अधिकाधिक सरल बना सके। यह कार्य अन्य उपायों, अभिकरणों के अतिरिक्त बहुत से संदर्भों में प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की सेवाओं को उपक्रम बनाकर किया जा सकता है। वर्तमान में युवा विकास के विभिन्न कार्यक्रमों का संचालन, परामर्श प्रकोष्ठ, करियर मार्गदर्शक, प्रशिक्षक आदि के रूप में विभिन्न एजेंसियों के अंतर्गत सामाजिक कार्यकर्ता अपने वैज्ञानिक ज्ञान और कुशलताओं के आधार पर युवा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें हैं।

युवा विकास आज के लिए एक महत्वपूर्ण विषयों में से एक हैं। जैसे कि नीति में बताया गया है, युवा विकास को राष्ट्र निर्माण के साथ जोड़ना है। ऐसे में एक लोकतांत्रिक समाज निर्मिति के लिए युवको में लोकतांत्रिक मूल्यों केविकास हेतु समाज कार्य बहतेरी से कार्य कर सकता है।

5.7 बोध प्रश्न

1. युवा को परिभाषित करते हुए उसकी अवधारणा को स्पष्ट करें।
2. युवाओं की प्रमुख समस्याओं पर प्रकाश डालें।
3. युवा कल्याण संबंधी भारतीय प्रयासों का विवरण प्रदान करें।
4. युवा विकास की राष्ट्रीय नीति 2014 का विश्लेषण करें।
5. युवा विकास समाज कार्य के लिए एक बेहतर क्षेत्र है, स्पष्ट कीजिए।
6. वर्तमान में भारतीय परिदृश्य में युवाओं के विकास के लिए चलाए जाने वाले कार्यक्रमों पर चर्चा करें।

5.8 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तके

Elizabeth B. Hurlock. (1955). *Adolescent Development*. NewYork: McGraw Hill.

Kuriakose, P. T. (1987). Youth Welfare. In *Encyclopedia of Social Work in India* (pp. 404-421). New Delhi: Ministry of Welfare, Gov. of India.

John W. Santrock. (1997). *Life Span Development*. NewYork: McGraw Hill.

त्रिपाठी, आ. त्रिपाठी म. (2014). *विकासात्मक मनोविज्ञान* . नई दिल्ली : ओमेगा पब्लिकेशन्स .

आर. एन. सिंह. (2010). *आधुनिक सामान्य विज्ञान* . आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन्स .

एलिजाबेथ बी. हरलॉक. (1990). *विकास मनोविज्ञान* . दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय .

जानकी मुरजानी, ममता गारयानी. (2012). *किशोर मनोविज्ञान*. जयपुर: आविष्कार पब्लिशर्स.

राजाराम शास्त्री. (2015). *समाज कार्य*. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

(2014). *राष्ट्रीय युवा नीति*-2014. भारत सरकार, युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय.

-*वार्षिक रिपोर्ट* 2013-14. भारत सरकार, युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय.

-*वार्षिक रिपोर्ट* 2014-15. भारत सरकार, युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय.

हरीशंकर श्रीवास्तव. (2013). युवा कल्याण. गिरीश कुमार (सं.) में, *समाज कार्य के क्षेत्र* (3rd सं., पृ. 424-444). लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

ज्ञान शांति मैत्री